वल्लभाचार्य जी विरचित—

षोडशग्रन्थ

श्री श्रीनाथजी महाराज

❋ श्रीकृष्णाय नमः ❋

❋ श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ❋

Shri KESH...
Mathura (U.P.)

षोडशग्रन्थ

[श्रीनृसिंहलालजी महाराज कृत षोडश-ग्रन्थ टीका]

प्रकाशक—

प० भा० मोतीलाल अग्रवाल

३८, अग्रवाल साईकल स्टोर, श्रीराम रोड, लखनऊ

सन् १९८६ | श्रीसम्वत् २०४३ | न्योछावर १५)रु०

पुस्तक प्राप्ति स्थान—

अग्रवाल साईकल स्टोर

३८, अमीनाबाद, श्रीराम रोड, लखनऊ (उ० प्र०)

★

प्रकाशन—

वैशाख शुक्ल एकादशी

महाप्रभु वल्लभाचार्य जयन्ती

सन् १९८६

★

पौछावर १५)रु० मात्र

★

मुद्रक—

श्रीरङ्गनाथ प्रेस

रङ्गजी का पश्चिम कटरा, वृन्दावन-२८११२१

(मथुरा) उ० प्र०

दो शब्द

★★

अखण्ड भूमण्डलाचार्य **श्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्य** विरचित षोडश-ग्रन्थ जतीपुरा; वृन्दावनस्थ **श्रीसुरेश आचार्य** की शुभ प्रेरणानुसार एवं शास्त्रीजी **श्री केशवदेवजी** के निर्देशन सम्पादन में श्री श्री १०८ श्री नृसिंहलालजी महाराज द्वारा की गई टीका सुस्पष्ट ब्रजभाषान्तर्गत ८६ वर्ष बाद परमभगवदीय ब्रज गोवर्धन कन्दरा लीला सनेही लखनऊ निवासी श्रीमती पद्मा अग्रवाल पत्नी श्रीमोतीलाल अग्रवाल के द्रव्य सहयोग सों या ग्रन्थ को पुर्नजीवन प्राप्त भयो है। ग्रन्थ की आत्मा पुर्नजीवन प्राप्त होय द्रव्य सहयोगी कूँ आशीर्वाद देय है। अनन्त विद्या विलासी **श्रीनृसिंहलालजी** महाराज ने लौकिक जीवन पे परम अनुग्रह कियो है। प्रमावागीश्वर श्रीमहाप्रभुजी ने पुष्टिमार्गीय भक्तिमार्ग को रस निचोड़ या ग्रन्थ द्वारा भक्त वैष्णवन के हृदय में श्रीगोवर्धननाथजी के चरित्र सेवा दर्शनार्थ— परम उद्दीपनभाव को उदय कियो है।

आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि यह ग्रन्थ भगवदीय जनन कूँ परमसन्तोषप्रद होयगो।

किमधिकं विज्ञेषु—
पण्डित [redacted] शास्त्री
जतीपुरा

षोडशग्रन्थानां विषयानुक्रमणिका

★★

विषय		पृष्ठ सं०
१—श्रीयमुनाष्टकं-श्रीयमुनाजीको स्वरूप वर्णन	....	१
२—बालबोधः-चतुर्विधपुरुषार्थनिरूपण	....	९
३—सिद्धान्तमुक्तावली-सेवास्वरूपनिरूपणपूर्वक ब्रह्म तथा जगत्के स्वरूपको निरूपण तथा ताके अधिकारीनके भेद	....	२०
४—पुष्टिप्रवाहमर्यादा-शास्त्रसिद्ध पुष्टि, प्रवाह, और मर्यादामार्गके जीवनकी सृष्टि तथा फलप्राप्तिको निरूपण	....	३१
५—सिद्धान्तरहस्यं-श्रीठाकुरजीकी जीवनकों ब्रह्मसम्बन्ध करावेकी श्रीअचार्यजीकूँ आज्ञा भई सो निरूपण	....	४७
६—नवरत्नं-ब्रह्मसम्बन्ध भये पीछे जीवनकों चिन्ता कर्तव्य नहीं ताको निरूपण	....	५६
७—अन्तःकरणप्रबोधः-अन्तकरणकूँ बोध दियो है	....	६५
८—विवेकधैर्याश्रयः-यामें विवेक, धैर्य, और आश्रयको निरूपण कियो है	....	७३
९—श्रीकृष्णाश्रयः-कलिकालमें श्रीकृष्णको आश्रयही कर्तव्य है		८१
१०—चतुःश्लोकी-भक्तिमार्गीय चतुर्विध पुरुषार्थ निरूपण	....	९८
११—भक्तिवर्धिनी-भक्तिकी वृद्धिकी के उपाय	....	१०२
१२—जलभेदःजलके [२०] भेदके दृष्टान्तसूँ वक्ताको निरूपण		१०९
१३—पञ्चपद्य-श्रीतानके भेदको निरूपण		१२४
१४—संन्यासनिर्णयः-गृहत्याग भक्तिमार्गकी रीतिसूँ करे तबहि फल होय यह निरूपण	....	१३१
१५—निरोधलक्षणं-प्रपञ्चकी विस्मृतिपूर्वक भगवदीय भक्तिको निरूपण	....	१४९
१६—सेवाफलं-सेवाके तीन फल हैं तथा तीन प्रतिबन्धक हैं ताको निरूपण	....	१६५

* श्रीकृष्णाय नमः *
* श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः *

अथ श्रीयमुनाष्टककी संक्षेपसूँ भावार्थटीका लिखी हे ॥

नमामि यमुनामहं सकलसिद्धिहेतुं मुदा
मुरारिपदपंकजस्फुरदमन्दरेणूत्कटाम्
तटस्थनवकाननप्रकटमोदपुष्पांबुना
सुरासुरसुपूजितस्मरपितुः श्रियं विभ्रतीम् ॥ १ ॥

भावार्थ--श्रीयमुनाजीकूँ में नमन करूं हूँ, श्रीयमुनाजी केसें हें सो प्रणाम करतहें, सब सिद्धीनके कारणहें तामें भगवद्भावकी वृद्धि रहे, भगवानको सम्बन्ध होयवेमें जो-जो प्रतिबन्ध होय तिन सबकूँ मिटायकें भगवान को अनुभव करिवेमें जितनी शुद्धिकी आवश्यकताहे तितनी शुद्धि करे हें, विनाहिश्रम भगवानको सम्बन्ध करावेहें, भगवानको प्रियपनो सिद्ध करेहें, कलिकी निवृत्ति करे किसी भगबदीयनकी बड़ाई धारण करेहें, नवीन (प्रभु-सेवोपयोगी) कह सम्पादन करेहें इत्यादिक अष्टविध ऐश्वर्यकी सिद्धि हे और प्रभुकी लीलाको दर्शन करावेहें प्रभुकी लीलाके आनन्दको अनुभव करावेहें, सर्वात्मभावकी सिद्धि करेहें, भगवानके वियोगमेंहूँ भगवानके आवेशवारो देह सिद्धकरेहें, जिनकी लौकिक सब विषयनमें दृष्टि न होय ओर भीतर दृष्टि होय तिनकूँ प्रभुकी लीला आदि दर्शनकी सिद्धि करावे हें, प्रभुको विरह होय तब जैसो सर्वात्मभाव चहियें तैसो सर्वात्मभाव सिद्ध करे हें, इत्यादिक अनेक सिद्धि हें इन सब सिद्धीनकी कारण श्रीयमुनाजी हें। मुरारि जो श्री-कृष्ण तिनके चरणारविन्दकी रज, जलक्षेपसूँ अधिक जामें स्फुरायमान हें, प्रभुके बहोत नाम हें तिनमें मुरारि नाम लिखिवेको अभिप्राय एसो हे जो जैसें भौमासुरने सोरह हजार राजकन्यानकूँ रोकी हती तिनकूँ भगवानकी

प्राप्ति होयवेमें प्रतिबन्ध रूप जलके दोषात्मक मुरदैत्य हतो ताकूँ मारिकें भगवान नें सबनकूँ अंगीकार कीनी तैसेंही प्रभु की प्राप्ति में प्रतिबन्धरूप जो दोष होय ताकूँ मिटायकें प्रभु आप भक्तनकों अंगीकर करे हैं, ऐसे प्रभु के चरणारविन्द की रज श्रीयमुनाजी में स्फुरायमान हैं ये जतायवेके लिये मुरारिनाम कह्यो है, तट में जो नये बन हैं तिनको सुगन्ध जिनके पुष्पन में प्रकट होय रह्यो है तासूँ सुगन्धयुक्त जल करिके सुरभाव ओर असुरभाव-वारे भक्तनकूँ प्रभु को स्मरण* होय ऐसो शोभा कूँ धारण करे हैं, तामें दैन्यभाव वारे भक्त हैं सो सुरभावकी ओर मानभाव वारे भक्त हैं सौ आसुर-भाव वारे भक्त हैं सो आसुरभाव वारे हैं ऐसे दोउ प्रकार के भक्त, भगवान की प्राप्ति के लिये श्रीयमुनाजी को पूजन करत हैं।

अब श्रीयमुनाजी के आविर्भाव को प्रकार कहत हैं—

कलिन्दगिरिमस्तके पतदमन्दपूरोज्वला
विलासगमनोल्लसत्प्रकटगण्डशैलोन्नता ।
सघोषगतिदन्तुरा समधिरूढदोलोत्तमा
मुकुन्दरतिवर्द्धिनी जयति पद्मबन्धोः सुता ॥ २॥

भावार्थ—सूर्यमण्डल में जो नारायण हैं तिनके आनन्दात्मक हृदयसूँ द्रवीभूत रसात्मक प्रकट होयकें सूर्यमण्डल तें कलिन्दपर्वत के ऊपर गिरे हैं तहाँ कलिन्दी कूँ अपने में मिलावे हैं ओर अत्यन्त ऊँचे ते गिरवे सूँ फेन बहोत होय हैं तासूँ पूर बहोत आवे है ता करिकें उज्ज्वल है, ऊँचे-नीचे पर्वत पे चड़नों-उतरनों हैं सो विलासगतिरूप है तामें सुशोभित और प्रवाह को वेग पाषाण कूँ ऊँचे फेंके है तासूँ वे पाषाण प्रकट दीखे है ता करिकें श्रीयमुनाजी को प्रवाह ऊँचो दीखवे में आवे है, शब्द सहित प्रवाह की गति सूँ विकारयुक्त दीखे हैं अथवा सब व्रजवासी जहाँ जाय हैं वहाँ व्रज कूँ संग लेकें जाय हैं ऐसे व्रजसहित व्रजवासीनकी गति करिकें विकारयुक्त हैं, हिंडोला में नहिं बिराजे हैं तथापि ऊँचे-नीचे स्थल पे जो प्रवाह चले है ताकरिकें उत्तम हिंडोला में बिराजते होंय ऐसें जानपरत हैं, यहाँ उत्तमदोला कहैवेको यह है जो दोलाको स्वभाव आयवे-जायवे को है और श्रीयमुनाजी को प्रवाह भगवान के दर्शन की आतुरता होय तैसें सन्मुख ही जाय हैं तासूँ

* छान्दोग्य उपनिषद् में स्मरण को अर्थ स्मरण लिख्यो है तैसें यहाँ हूं समझनो।

उत्तम दोला में अधिरूढ हैं ऐसें कह्यो है, मुकुन्द जो मोक्ष देनेवारे श्रीकृष्ण तिनकी प्रीति भक्तन में बढ़ावे हैं और भक्तन की प्रीति भगवान में बढ़ावे हैं। आप कमल के बन्धुरूप सूर्य की पुत्री हैं ऐसे श्रीयमुनाजो सबनतें ताईसूँ विराजित हैं ॥ २ ॥

श्रीयमुनाजी भूमि में पधारें ता पीछे के धर्म को निरूपण करत हैं—

भुवं भुवनपावनीमधिगतामनेकस्वनैः
प्रियाभिरिव सेवितां शुकमयूरहंसादिभिः ।
तरंगभुजकंकणप्रकटमुक्तिकावालुका
नितम्बतटसुन्दरीं नमत कृष्णतूर्यप्रियाम् ॥ ३ ॥

भावार्थ—श्रीयमुनाजी पृथ्वी पर पधारे हैं सो भक्तन कूँ भगवद्भाव सम्पादन करिकें अन्य भाव सूँ रहित करै हैं और भगवत्सेवा में भोग्य शरीर की शुद्धि करे हैं ऐसे लोक कूँ पवित्र करै हैं, श्रीगोपीजन सब जैसें श्रीयमुनाजी को सेवन करैं हैं तैसें अनेक शब्दवारे शुक, मयूर और हंसप्रभृति सब पक्षीन करिकेंहू श्रीयमुनाजी सेवित हैं। तरंग, तीर पै आवे हैं तब पसरी जाय हैं, ता विरियाँ वालुका प्रकाशित होय हैं। सो वालुका नहीं है किन्तु तरंग हैं सो श्रीयमुनाजी के श्रोहस्त है तिनमें जो कंकण धारण किये हैं तिन कंकणन में मुक्ताफल लगें हैं सो प्रकाशित दीखे हैं और ऊँचे तट हैं सो नितम्बरूप हैं तिनमें तरंग के बलसूँ बालुका लगें हैं सो श्रीहस्त नितम्ब में लगाये होय ऐसें शोभेहैं तिनमें बालुका प्रकाशे हैं सो कंकणन के मुक्ताफल हैं, भक्तन के चार यूथ मुख्य हैं तिनमें चतुर्थयूथ में मुख्य श्रीयमुनाजी हैं, ऐसे कंनमन सिवाय और जीव कहा करि सके? तासूँ श्रीआचार्यजी सब सेवकन कूँ आज्ञा करैं हैं जो ऐसे श्रीयमुनाजी कूँ तुम सब नमन करो ॥ ३ ॥

श्रीयमुनाजी में भगवान के समान धर्म हैं ऐसें जतायवे के लिये दोऊ को समान धर्मपनो निरूपण करत हैं—

अनन्तगुणभूषिते शिवविरञ्चिदेवस्तुते
घनाघननिभे रादा ध्रुवपराशराभीष्टदे ।
विशुद्धमथुरातटे सकलगोपगोपीवृते
कृपालजधिसंश्रिते मम मनः सुखं भावय ॥ ४ ॥

आवार्थ—यामें षट्धर्मयुक्त सप्तम धर्मिको निरूपण है ऐसे जतायवे के लिये सात विशेषण हैं तामें भगवान में विशेषण लगावनें तब सप्तमी विभक्ति को अर्थ करनो और श्रीयमुनाजी में लगावनें तब सब विशेषणन में सम्बोधन को अर्थ करनों, श्रीठाकुरजी असंख्यगुणन करिके अलंकृत हैं और श्रीयमुनाजी, रासोत्सवादिकन में अनन्तरूप धरिवेवारे भगवान के गुणन-करिकें अलंकृत हैं शिव[1] और ब्रह्माप्रभृति सब भगवान की तथा यमुनाजीकी स्तुति करैं हैं, मन्द[2]मन्दवर्षायुक्त श्याममेघ जेसी शोभायुक्त दोऊ हैं, ध्रुव[3] ओर पराशर कूँ सदा सब प्रकारको इच्छित देवेवारे भगवान् तथा श्रीयमु-नाजी हैं, श्री[4]ठाकुरजी के निकट में अत्यन्त शुद्ध श्रीमथुराजी हैं और श्री-यमुनाजी के तट पे श्रीमथुराजी है, श्री[5]ठाकुरजी, समग्र गोप ओर श्रीगोपी-जनन[6] करिकें आवृत है ओर श्रीयमुनाजी के तीर पे पहलें गोपगोपीनकों श्रीठाकुरजी[7] के सम्बन्धको अनुभव भयो है तासूँ समग्र गोप और श्रीगोपी-जननकरिकें श्रीयमुनाजीहू आवृत हैं श्रीठाकुरजी कृपारूप समुद्रके आश्रयको सुन्दर स्थान है इतने कृपारूप समुद्र श्रीठाकुरजी को आश्रय करिकें रहे है ओर श्रीयमुनाजी कृपाके समुद्ररूप श्रीठाकुरजी को आश्रय करिकें रहे हैं ऐसे षट्धर्मयुक्त हे श्रीयमुनाजी ! आप अपार करुणासागर श्रीठाकुरजी में मिले हो सो आपमें जो मिले सो आपके बलसूँ ही श्रीठाकुरजी में मिलें हैं, तासूँ ऐसे षट्धर्मयुक्त ओर कृपाको समुद्र जामें रहे हैं ऐसे श्रीठाकुरजी में मेरो मन भाव करिकें आनन्दको अनुभव कैसें करे ? सो आप विचारो अथवा भगवत्स्वरूपके अनुभवको मेरे मनमें जो सुख होय ताकी भावना आपके मनमें करो उतने आपके मनमें ये विचार होयगो तब ये सुख मिलेगो ॥४॥

अब भगवदीयनकीहू बड़ाई करिवेवारें श्रीयमुनाजी हैं तिनकी बड़ाई कहिवेकूँ कोंन समर्थ है ? सो निरूपण करत हैं—

यया चरणपद्मजा मुररिपोः प्रियंभावुका
समागमनतोऽभवत्सकलसिद्धिदा सेवताम् ।
तया सदृशतामियात्कमलजा सपत्नीव-
यद्धरिप्रियकालिंदजा मनसि मे सदा स्थीयताम् ॥५॥

१- यह ऐश्वर्य को निरूपण है, २- यह वीर्य को निरूपण है, ३- यह वेश को निरूपण है; ४- यह श्री को निरूपण है, ५- यह ज्ञान को निरूपण है; ६- यह वैराग्यको निरूपण हैं, ७- यह धर्मी को निरूपण है ।

भावार्थ—गङ्गाजी भगवानके चरणकमलतें प्रकट भई हैं तासूँ भक्तिमार्गीय ओर निर्दोषगुणपूर्ण है सोहू जा श्रीयमुनाजी संगम (प्रयाग में) मिलेहै तापेंसूँ मुररिपु जो भक्तन के प्रतिबन्ध दूर करिवेवारे हरि भगवान हैं तिनकों अत्यन्त प्रिय भई है और सेवन करिवेवारेनकूँ समग्र सिद्धि देवेवारी भई है, ऐसे श्रीयमुनाजी की बराबरीकू कोऊ प्राप्त होय है कहा ? कदाचित् प्राप्त होय तो श्रीलक्ष्मीजी होय, क्यों जो श्रीलक्ष्मीजीहू भगवानकी स्त्री हैं तासूँ श्रीयमुनाजी की सपत्नी (सोति) होय हैं, यहाँ श्रीलक्ष्मीजी श्रीयमुनाजी सपत्नी (सोति) हैं ऐसें कह्यो हैं ताको अभिप्राय एसो है जो जाकी जो सपत्नी (सोति) होय सो ताके स्वभावसूँ विरुद्ध स्वभाववारी होय है तैसें श्रीलक्ष्मीजी श्रीयमुनाजी के स्वभावतें विरुद्ध स्वभाववारी है ऐसो सूचन कियो हैं तासूँ कहै हैं जो भक्तन के दुःख तथा पापकूँ हरिवेवारे भगवान के भक्तनके कलिके दोषनकूँ खण्डन करिवेवारे श्रीयमुनाजी हैं तिनकी मेरे मनमें स्थिति होऊ इतने श्रीलक्ष्मोजी भक्तनके अनुकुल नहीं हैं ओर श्रीयमुनाजी भक्तनकों अनुकूल हें ॥ ५ ॥

एसें भक्तनकों अनुकूल श्रीयमुनाजी, भगवानकूँ अत्यन्त प्रिय हैं तिनकों नमन सिवाय और कछु होयसके नहीं एसे अभिप्रायसूँ कहत हें—

नमोऽस्तु यमुने ! सदा तव चरित्रमत्यद्भुतं
न जातु यमयातना भवति ते पयः पानतः ।
यमोऽपि भगिनीसुतान्कथमु हन्ति दुष्टानपि
प्रियो भवति सेवनात्तव हरेर्यथा गोपिकाः ॥ ६ ॥

भावार्थ—भगवानको माहात्म्य तो सब शास्त्रन में अति प्रसिद्ध है तासूँ भगवानकूँ नमन होयसकें है और श्रीयमुनाजीको माहात्म्य तो लीलासृष्टि में प्रवेश भये पीछें तैसो भाव प्राप्त होय तब जान्यो जाय ता पीछें नमन होय, तासूँ नमन होयवेकी प्रार्थना करत हैं जो हे श्रीयमुनाजी ! आपकूँ सदा नमन होऊ, आपके पयःपानसूँ कोऊबिरियां यमयातना होय नहिं, यह आपको चरित्र अति अद्भुत है, जैसें भगवान अद्भुत कर्मवारे हैं सो काम, भय, द्वेष प्रभृति जो भगवानकूँ मिलवेके साधन नहिं हैं, किन्तु उत्तम गतिके प्रतिबन्धक हैं, तथापि श्रीगोपीजन कामतें, कंस भयतें ओर शिशुपालादिक द्वेषतें भगवानकूँ प्राप्त भये हैं तहाँ प्रामादिक असाधन हैं तिनकूँ भगवाननें साधनरूप किये हैं तेसें दोषोंकी निवृत्तिके लिए श्रीयमुनाजीको पयःपान करे सो कछू उत्तमगति मिलवेको अथवा यमयातना मिटवेको

साधन भयो नहिं तथापि यमयातना मिटे है। ये श्रीयमुनाजीको अद्भुत चरित्र है। श्रीयमुनाजीके 'पयःपानतें' यमयातना मिटे है तामें युक्ति कहत हैं जो यमहू बहिनिके पुत्र कदाचित् दुष्ट होय तोहू विनकूँ डण्ड कैसें देय ? क्यों जो बहिनिको पुत्र तो सर्वदा मान्य है, ओर यम उत्पन्न भये पीछें वाके दोषकी निवृत्तिके लिये श्रीयमुनाजी प्रकट भयें हैं तासूँ यमकूँ अतिमान्य हैं, ओर पयःशब्दको अर्थ पय तथा जल दोऊ प्रकारको होय है, तासूँ श्रीयमुनाजीको पयःपान करिवेवारे विनके पुत्रभये ओर यमके भानेज भये तिनकूँ यम दण्ड कैसें देय ? ऐसें दोषनिवारक अद्भुत चरित्रको निरूपण करिकें फलसम्पादक अद्भुत चरित्रको निरूपण करें हैं, जो जैसें श्रीगोपीजन हरिकूँ प्रिय भये हैं तैसें तुम्हारे सेवनतें जीव हरिकूँ प्रिय होय हैं। लोकमेंहू अन्यके सेवनसूँ अन्य प्रसन्न होय ऐसो देख्यो नहि है और यहाँ तो श्रीयमुनाजीके सेवनसूँ प्रभु प्रसन्न होय हैं, जैसें कात्यायनीव्रतके प्रसंगमें कुमारिनकूँ श्रीयमुनाजीके सेवनतें प्रभु प्रसन्न भयें हैं यह श्रीयमुनाजीको अद्भुत चरित्र है ॥ ६ ॥

देहको अवश्य धर्म यह है जो जैसो कर्म करे तैसो दूसरो देह प्राप्त होय ऐसे आवश्यक दैहिक धर्ममेंहू जहाँ तुम्हारो सम्बन्ध भयो इतने पीछें मुक्तितें अधिक भक्तिकी प्राप्ति होय है तहाँ यमयातनाको अभाव होय तामें कहा शंका है ? यह निरूपण करत हैं—

ममास्तु तव सन्निधौ तनुनवत्वमेतावता
न दुर्लभतमा रतिर्मुररिपौ मुकुन्दप्रिये ।
अतोऽस्तु तव लालना सुरधुनी परं संगमा-
त्तवैव भुवि कीर्त्तिता न तु कदापि पुष्टिस्थितैः ॥ ७ ॥

भावार्थ—मोकूँ तुम्हारे सन्निधानमें लीलोपयोगी नवीन देहसम्पत्ति होऊ, लौकिक देह मिटिकें अलौकि देह भयेसूँहि मुरारि (भगवान्) में प्रीति अत्यन्न दुर्लभ नहीं है कदाचित् प्रतिवन्धक होयँगे तोहू तुम्हारे सम्बन्धतें भगवान् आपतें दूर करि घरमेंहि मोक्षसुख प्राप्त होय तैसें चतुर्विध पुरुषार्थ के सुखको अनुभव होयगो यह जतायवेके लिये मुरारिपुपद कह्यो है तथा मुकुन्दप्रिये ऐसो सम्बोधन दियो है और तुम्हारे सन्निधानमें अलौकिक देह को प्राप्ति होयवेको कह्यो है तासूँ जहाँ दुष्टनके सन्निधानतें श्रीयमुनाजीको तिरोभाव है तहाँ अलौकिक देहकी प्राप्ति नहिं होय ऐसो सूचन कियो है तुम्हारे सन्निधानमेंहि जहाँ अलौकिक देहकी प्राप्ति होय तहाँ यमयातनाको

अभाव होयवेमें शंका कहा है ? ऐसें जतायो है; तासूँ जबताँई आधुनिक शरीरकी निवृत्ति होय तबताँई, जैसें माता बालककूँ लाड करतीबिरियाँ बालककी प्रशंसा (स्तुति) करै है सो गुणवर्णन नहिं है तैसें तुम्हारी यह स्तुतिहू लालनरूप होऊ, जिनकी बहोत बडाई है ऐसी गङ्गाजीको कीर्तन, जो निःसाधन अनुग्रहमार्गवारे पृथ्वी पर करैं हैं सो तुम्हारेहि सङ्गततें करैं हैं क्यों जो गीताजीमें विभूतिके अध्यायमें गङ्गाजी भगवानकी विभूति है ऐसें लिख्यो है ताको ज्ञान न होय अथवा जो विभूतिके उपासक होय सो तो कदाचित् विभूतिरूप गङ्गाजीकी स्तुति की, परन्तु पुष्टिमार्गीय भक्त तो पूर्ण पुरुषोत्तमके उपासकहैं सो विभूतिरूप केवल गङ्गाजीकी स्तुति करैहि नहिं, तुम्हारे (श्रीयमुनाजीके) पामतें ही गङ्गाजीकी स्तुति करैं हैं ॥ ७ ॥

सबनकूँ वन्दनकरिवेयोग्य गंगीजीकी स्तुतिहू तुम्हारे सम्बन्धतें होय है तहाँ तुम्हारी स्तुति करिवेकूँ कोन समर्थ है ? ऐसे अभिप्रायसूँ कहत हैं ।

स्तुतिं तव करोति कः कमलजासपत्नि ! प्रिये !
हरेर्यदनुसेवया भवति सौख्यमामोक्षतः ।
इयं तव कथाऽधिका सकलगोपिकासंगम–
स्मरश्रमजलाणुभिः सकलगात्रजैः संगमः ॥८॥

भावार्थ--लक्ष्मीजीके सपत्नि (सोति) हरिको प्रिय है, श्रीयमुनाजी ! आपकी स्तुति कोन करसके ? कोऊ कर सके नहिं यों जो आप लक्ष्मीजीके समानसौभाग्यवारे हो तथापि हरिकों विशेष प्रिय हो ओर मुख्यतासूँ हरिको सेवन करिकें ताकी अनुकूलतासूँ जब गौणभावसूँ लक्ष्मीजीको सेवन करै तब मोक्ष पर्यन्त सुख मिलै है केवल (विभूतिरूप) लक्ष्मीजी तो धनादि-सम्पत्तिद्वारा विषयासक्ति करायकें मोक्षको विघान करै है, तुम्हारी तो यह कथा अधिक है जो आप मोक्ष सुखको अनुभव करावो हौ ओर समग्र श्री गोपीजननके संगम करिकें स्मरसम्बन्धी श्रम होय है ता करिकें जो स्वेद-जलके बिन्दु सकल शरीरमेंतें उत्पन्न होय है, तिनको संगम जिनकों है ताको सम्बन्ध भक्तनकूँ कराओ हो, ऐसें तुम्हारी (श्रीयमुनाजीकी) कथा अधिक है, तासूँ लक्ष्मीजीकी स्तुति होय परन्तु आपकी स्तुति कोन कर सके ? ॥८॥

ऐसें श्रीयमुनाजीकी स्तुति करिकें या स्तोत्रको पाठ करिवेको फल कहत हैं--

तवाष्टकमिदं मुदा पठति सूरसूते ! सदा
समस्तदुरितक्षयो भवति वै मुकुन्दे रतिः ।
तया सकलसिद्धयो मुररिपुश्च संतुष्यति
स्वभावविजयो भवेद्वदति वल्लभः श्रीहरेः ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितं श्रीयमुनाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

भावार्थ--हे सूर्यपुत्रि श्रीयमुनाजी ! तुम्हारे या अष्टकको आस्वाद करिकें जो सदा पाठ करै है ताकूँ समस्त दुरितको क्षय होय । मोक्षदेवेवारे भगवानमें निश्चय प्रीति होय, ता करिकें पहिचान बताई हैं सो सब सिद्धि प्राप्त होय, प्रतिबन्ध निवृत्त करिवेवारे प्रसन्न-प्रसन्न होय, अन्तःकरणकी वासनासहित स्वभाव फिरजाय ओर भगवानको स्वभाव है जो व्रज भक्तनकों देवेको आनन्द और नहिं देयँ है सो स्वभाव फिरजाय है; इतनें या स्तोत्रको पाठ करिवे वारेकूँ यह आनन्दको दान करत है; ऐसें, भक्तनके दुःख तथा पापकूँ हरिवेवारे प्रभुकों श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहत हैं, यद्यपि श्रीयमुनाजीके अन्यस्तोत्र हैं तथापि या स्तोत्रके पाठसूँही सब फल मिलें हैं अन्यस्तोत्रके पाठसूँ नहिं मिले हैं, क्यों जो अन्यस्तोत्रमें ऐसो स्वरूपनिरूपण नहिं है, तैसें आनन्द करिकें सदा पाठ करै तब फल मिलै, क्यों जो अर्थको ज्ञान होय तब आनन्द प्राप्त होय ओर सदा पाठ करे तब आसुरावेश न होय, तैसें श्रीयमुनाजीके स्तोत्रसूही यह फल मिले हैं ओरके स्तोत्रसूँ नहिं मिले हैं, क्यों जो भगवाननें अष्टविध ऐश्वर्य श्रीयमुनाजीकों दियो है, यासूँ श्रीयमुनाजीके या अष्टकको अर्थानुसन्धानपूर्वक आनन्दसूँ सदा पाठ करै तो सब फल प्राप्त होय ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीयमुनाष्टककी टीका व्रजभाषामें गोस्वामि
श्रीनृसिंहलालजी महाराज कृत सम्पूर्ण भई ॥

* श्रीकृष्णाय नमः *

* श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः *

अथ श्रीबालबोधकी व्रजभाषा में भावार्थटीका लिखी है

दूसरे मतमें धर्म, अर्थ, काम ओर मोक्ष ये चारो पुरुषार्थ ही फलरूप है ऐसें कहैं हैं; तासूँ जीवनकी प्रवृत्ति पुरुषार्थ सिद्धकरिवेमें होयहै; परन्तु भक्तिमें जो बडाई है, जीव नहिं जानें हैं सो जतायवेके लिये पुरुषार्थके स्वरूपनि-रूपणपूर्वक अपने सिद्धान्तरूप मङ्गलाचरण करत हैं।

नत्वा हरिं सदानन्दं सर्वसिद्धान्तसंग्रहम् ।
बालप्रबोधनार्थाय वदामि सुविनिश्चितम् ॥ १ ॥

भावार्थ – भक्तनके दुःख तथा पापकूँ हरिवेवारे सदानन्द (श्रीकृष्ण) भगवानकूँ नमन करिकें बालकनकों आछीतरेहसूँ बोध होयवेकेलिये सब प्रमाणनसूँ निश्चित कियोभयो सर्वसिद्धान्तको संग्रह कहूँगो, भगवान् हरि हैं तासूँ दुःखकी निवृत्ति करैं हैं और सदानन्द हैं तासूँ सुखकी प्राप्ति करैं हैं तिनकूँ श्रीआचार्यजीनें नमन करिके ऐसें जतायो जो जीवनकूँ दुःखकी निवृत्ति तथा सुखकी प्राप्तिकी इच्छा होय तो दीनतापूर्वक भगवानको नमन करनों सो करिकें सर्वसिद्धान्तको संग्रह कहूँगो ऐसें कह्यो, है इतने पुरुषार्थको प्रतिपादन करिवेवारें जो शास्त्र हैं तिनको जामें सिद्धान्त है ऐसो ग्रन्थ कहूँ हूँ, ये ग्रन्थ बालककूँ बोध करिवेकेलिये है। इतने अपनो हित कहा तथा अहित कहा ? ऐसें नहिं जानें हैं ओर भाव शुद्ध है तासूँ दयाके पात्र हैं सो बालक कहेजाय हैं तिनकों दूसरे फलसाधनविषयक उपाय ग्रहण करिवेको

भ्रम मिटायकें जैसो अधिकार ता प्रमाण भक्तिमें अथवा शरणागति में प्रवेश होयवेको सामर्थ्य होय ऐसो बोध उत्पन्न करिवेकेलिये यह ग्रन्थ है ॥ १ ॥

ऐसेंप्रकार और फलको सम्बन्ध बतायकें पहिलेंसूँ पुरुषार्थनके विषय सन्देह मिटायवेकेलिए संक्षेपसूँ तिनको निश्चय कहत हैं—

धर्मार्थकाममोक्षाख्याश्चत्वारोऽर्था मनीषिणाम् ।
जीवेश्वरविचारेण द्विधा ते हि विचारिताः ॥ २ ॥

भावार्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ऐसे नामके चारचों अर्थ बुद्धिमाननके हैं (इतनें साधारणकूँ प्राप्त होय ऐसें नहिं हैं) सो वेहि अर्थ जीवविचारित और ईश्वरविचारित ऐसें दोय प्रकारके हैं, तिनमें वेदादिकनमें करिवे[1]की अथवा नहिक[2]रिवेकी आज्ञा है सो धर्म कह्योजाय। माला चन्दन, स्त्री, पुत्र, देह, प्राण, आभरण, गृह, धनप्रभृति सब अर्थ कहेजाय, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धप्रभृति विषयनमें इन्द्रियनकी अनुकूलतासूँ प्रवृत्ति होय सो काम और अहंता ममतात्मक संसारकी निवृत्ति होयकें अपने स्वरूपमें जो स्थिति सो मोक्ष ये चारो नामसूँहि अर्थ कहेजाय हैं; वस्तुतासूँ तो भक्तिहि मुख्यपुरुषार्थ है तासूँहि मूलमें पुरुषार्थ हैं ऐसें नहिं कहैतें अर्थ हैं ऐसेंहि कह्यो है, ओर इनपुरुषार्थनको जीवनने विचार कियो है तथा ईश्वरने विचार कियो है, एसें दोप्रकारसूँ से विचारित हैं ॥ २ ॥

एसें पुरुषार्थनके दोय प्रकार प्रतिपादनकरिकें ईश्वरविचारित पुरुषार्थनको स्वरूप कहत हैं—

अलौकिकास्तु वेदोक्ताः साध्यसाधनसंयुताः ।
लौकिका ऋषिभिः प्रोक्तास्थैवेश्वरशिक्षया ॥ ३ ॥

भावार्थ—साध्य और साधनकरिकें युक्त अलौकिक पुरुषार्थ तो वेदमें कहैं हैं, जेसें अमुकसाधनकरिकें अमुकयज्ञादिक धर्म सिद्ध होय है, अमुकसाधनकरिकें अमुक अर्थ सिद्ध होय है, अमुकसाधनकरिकें अमुक काम सिद्ध होय है ओर अमुकसाधनकरिकें मोक्ष सिद्ध होय है एसें वेदमें निरूपण कियो है ओर वेद ईश्वरप्रोक्त है तासूँ वेदमें कहैं हैं सो ईश्वरविचारित पुरुषार्थ हैं और ऋषीननें कहे हैं सो लौकिक (जीवविचारित) पुरुषार्थ है, यद्यपि सब

१- स्वर्गकी कामनावारो ज्योतिष्टोमयज्ञसूँ यजन करे इत्यादिक करिवेकी आज्ञा है ।
२- ब्राह्मण मारिवेयोग्य नहीं है इत्यादिक नहिं करिवेकी आज्ञा है ।

ऋषि वेदकूँ जानिवेवारे हैं तथापि तेसेंहि निरूपण करिवेकी ईश्वरकी आज्ञा है, तासूँ भिन्न निरूपण कियो है ॥ ३ ॥

लौकिकांस्तु प्रवक्ष्यामि वेदादाद्या यतः स्थिताः ।
धर्मशास्त्राणि नीतिश्च कामशास्त्राणि च क्रमात् ॥ ४ ॥
त्रिवर्गसाधकानीति न तन्निर्णय उच्यते ॥

भावार्थ—अलौकिक पुरुषार्थ तो वेदसूँ स्थित हैं तिनको विचार करिवेकी आवश्यकता नहीं है क्यों जो जिनको अलौकिक पुरुषार्थ सिद्ध-करिवेकी इच्छा होय वे वेदमें लिखेप्रमाण करें परन्तु ये होयसके एसे नहि हैं ये जतायवेके लिये स्थित हैं एसें कह्यो है इतने प्रचलित नहि हैं ? तासूँ लौकिकपुरुषार्थनकूँ तो कहूँगो, तिनमें धर्मशास्त्र धर्मकूँ सिद्धकरिवेवारे हैं, नीतिशास्त्र अर्थकूँ सिद्धकरिवेवारे हैं ओर कामशास्त्र कामकूँ सिद्धकरि-वारे हैं ये धर्म, अर्थ ओर काम तीनो त्रिवर्ग कहैं जायँ हैं सो शुद्धभाववारे अनन्यभक्तनकों तो प्रभुहि सिद्ध करैं हैं ओर साधारणभक्तनकों सिद्ध करैं तो इतनेहीमें अटकजाय तासूँ तिनमें श्रमको प्रभु नाश करैं हैं, तासूँ तिनको निर्णय (यहाँ) नहि कह्यो जाय है ॥ ४ ॥

एसें त्रिवर्गकी व्यवस्थाको सूचनकरिकें मोक्षरूप फल एक है किंवा अनेक हैं ? एसै जानिवेकी इच्छा होय तहाँ कहत हैं—

मोक्षे चत्वारि शास्त्राणि लौकिके परतः स्वतः ।
द्विधा द्वे द्वे स्वतस्तत्र सांख्ययोगौ प्रकीर्त्तितौ ॥
त्यागात्यागविभागेन सांख्ये त्यागः प्रकीर्त्तितः ॥ ६ ॥

भावार्थ—लौकिकमोक्षमें दोय शास्त्र परतः मोक्ष सिद्धकरिवेवारे हैं ओर दोय शास्त्र स्वतः मोक्ष सिद्धकरिवेवारे हैं एसें स्मार्त्तमोक्षविषयक चारों शास्त्र हैं, जामें शास्त्रमें कहीरीतिप्रमाण साधनकरिवेतें जीव कृतार्थ होय सो स्वतःमोक्षसाधक शास्त्र ओर जामें शास्त्रमें कही रीतिप्रमाण साधन-करिवेतें कोउके प्रसादसूँ जीव कृतार्थ होय सो परतःमोक्षसाधक शास्त्र हैं, तामें स्वतः (जीवके स्वाधीन) मोक्षमें त्याग ओर अत्यागके भेदसूँ सांख्य ओर योगशास्त्र कहैं हैं इतने त्याग करिवेसूँ मोक्ष सिद्ध होय एसो प्रतिपादन करिवेवारो एक शास्त्र है ओर त्याग कियेविना मोक्ष सिद्ध होय एसो प्रति-पादन करिवेवारो एक शास्त्र है, तामें सांख्यशास्त्रमें त्याग कह्यो है; इतने

नित्यानित्यवस्तुको विवेक होय तब वैराग्य भयेसूँ त्याग करे, तब मोक्ष होय; एसें त्यागकरिकें मोक्ष जीवके स्वाधीन है एसो बतायवेवारो सांख्यशास्त्र है ॥ ५ ॥ ६ ॥

देहादिक संघात विद्यमान है तब त्यागमात्रतें केसे मुक्ति होय ? एसी शंकाकरिकें मुक्तिको प्रकार कहत हैं--

अहन्ताममतानाशे सर्वथा निरहंकृतौ ।
स्वरूपस्थो यदा जीवः कृतार्थः स निगद्यते ॥ ७ ॥

भावार्थ--अहंताममताको नाश भयेतें सर्वथा अहंकारशून्य होयवेसूँ जब जीव अपने स्वरूपमें रहे तब सो जीव कृतार्थ कह्योजाय है इतने स्थूल शरीर तथा लिंगशरीरकी अहंता ओर इनके परिकर जो गृहादिक तथा प्राण इन्द्रिय प्रभृति हैं तिनमें ममताको त्याग होय तब बुद्धितत्त्वमें जो प्रतिबिंब रह्यो है तामें अभिमान मिटजाय तब कर्त्तापनो तथा भोक्तापनोहू मिटजाय तब जीव अपने स्वरूपमेंही प्रकाशमान होय सो जीव मुक्त भयो एसें सांख्याचार्यनने कह्यो है ॥ ७ ॥

गौतमादिकनके मतमें जेसें वेदविरुद्ध अंश है तेसें सांख्यमेंहु वेदविरुद्ध अंश है तब सांख्यमें जो मोक्षको प्रतिपादन कियो है तामें शिष्टनकों आदर केसें है ? ओर गौतमादिकननें जो मोक्षको प्रतिपादन कियो है तामें शिष्टनकों अनादर क्यों है ? एसें जानिवेकी इच्छा होय तहाँ कहत हैं--

तदर्थं प्रक्रिया काचित् पुराणेऽपि निरूपिता ।
ऋषिभिर्बहुधा प्रोक्ता फलमेकमबाह्यतः ॥ ८ ॥

भावार्थ – अन्यथारूपको त्यागकरिकें अपने स्वरूपसूँ जो स्थिति है सो मुक्ति है ऐसे मोक्षके लिये कोऊ प्रक्रियाको पुराणमेंहू निरूपण कियो है और पुराण वेदके अर्थकी वृद्धिकरिकें स्पष्ट निर्णय करिवेवारो है ताके अनुकूल सांख्यको मोक्ष है तासूँ तामें शिष्टनकों आदर है और गौतमादिकनने मोक्षको प्रतिपादन कियो है सो पुराणसूँ अनुकूल नहीं है तासूँ तामें शिष्टनकों आदर नहीं है, यद्यपि ऋषीननें बहोतप्रकारकी सांख्यकी प्रक्रिया कही है तथापि निरीश्वरसांख्य शिवाय और सबनमें आत्मव्यतिरिक्तसबनको त्याग करनो ये अन्तरंग साधन एक है तथा अपने स्वरूपमें स्थितिरूप मोक्षफलहू एक है तासूँ बाह्यसांख्यशिवाय सब सांख्य शिष्टनकों आदर करिवेयोग्य है, अथवा

पुराणोक्त सांख्यमें आत्मदर्शनरूप प्रथम एक फल होय है और पीछें ज्ञानद्वारा मोक्षरूप दूसरो फल होय है, तामें ऋषीननें जो विचार कियो है वाको आत्मदर्शनरूप एक फल होय है सोहू निरीश्वरसांख्यशिवायके सांख्यको फल है, निरीश्वर सांख्यको फल तो नरक प्राप्तिरूपही है ॥ ८ ॥

ऐसें स्वतः (स्वाधीन) मोक्षके साधक एक शास्त्रको निरूपण करिकें दूसरे शास्त्रको निरूपण करत हैं—

अत्यागे योगमार्गो हि त्यागोऽपि मनसैव हि ।
यमादयस्तु कर्त्तव्याः सिद्धे योगे कृतार्थता ॥ ९ ॥

भावार्थ—त्याग नहि करनो ऐसो साधन करनो होय तो तामें योग-मार्ग है, इतनें चित्तवृत्तिको निरोध करकें आत्माको बोधक मार्ग है सो पूराणसूँ अनुकूल है; तामें त्यागहू मनसूँ ही है, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधिरूप साधन तो करने तब योग सिद्ध भयेसूँ आत्माके स्वरूपमें स्थितिरूप मोक्ष सिद्ध होय ॥ ९ ॥

ऐसें स्वतः (जीवके स्वाधीन) मोक्ष में दूसरे शास्त्रको निर्णय कियो, अब परतः (पराधीन) मोक्षके दोय शास्त्रको निर्णय करिवेके लिये तामें मोक्षको जो स्वरूप है ताके निरूपणपूर्वक बिस्तार बतावत हैं—

पराश्रयेण मोक्षस्तु द्विधा सोऽपि निरूप्यते ।
ब्रह्मा ब्राह्मणतां यातस्तद्रूपेण सुसेव्यते ॥१०॥

भावार्थ—पराश्रयकरिकें मोक्षतो शिव तथा विष्णुके आश्रयसूँ होय है सोहू दोयप्रकारको निरूपित कियो जाय है, यद्यपि गुणावतारनमें ब्रह्माहू है और गुणाभिमानिपनेसूँ तीनो समान हैं तथापि सरस्वतीके शापादिकसूँ ब्रह्माको पूज्यपनो मिटगयो है तासूँ वेद के जानिवेपनेकूँ अथवा परब्रह्म जानिवेपनेकूँ अथवा ब्राह्मणकी जातिके अभिमानवारी देवतापनेकूँ प्राप्त भयें हैं तिनकी सेवा ब्राह्मणरूपसूँ होय है, इतने वेदादिक जानिवेके लिए किंवा ब्रह्मज्ञान केलिए किंवा ब्रह्मतेजकी प्राप्तिके लिये ब्रह्माजीकी सेवा ब्राह्मणरूपसूँ होय है। मोक्षके लिये ब्रह्माजीको सेवन नही है, क्यों जो ब्रह्माजीको कार्य सृष्टि करिवेको है और मोक्ष है सो सृष्टिकार्यसूँ विरुद्ध है; तासूँ ब्रह्माजी मोक्षकूँ नहीं देयँ हैं ॥ १० ॥

ब्रह्माजी मोक्षकूँ नही देत हैं तामें प्रमाण कहत हैं—

ते सर्वार्था न चाद्येन शास्त्रं किंचिदुदीरितम् ।
अतः शिवश्च विष्णुश्च जगतो हितकारकौ ॥११॥
वस्तुनः स्थितिसंहारौ कार्यौ शास्त्रप्रवर्त्तकौ ।

भावार्थ—ये (धर्म अर्थ, काम, मोक्षरूप) सब अर्थ ब्रह्माजीसूँ प्राप्त नहीं होय, अर्थात् दोय तीन अर्थ प्राप्त होय, अथवा ब्रह्माजीकूँ सेववेवारे सब अर्थवारें नहीं होय है, किन्तु यत्किंचत् अर्थवारें होयँ हैं और विननें वैखानसमन्त्ररूप शास्त्र कछुक कह्यो है; तासूँ शिव और विष्णु जगत्को हितकरिवेवारें हैं और वस्तुको पालन विष्णुकों अवश्य कर्त्तव्य है तथा वस्तुको संहार शिवजीकों अवश्य कर्त्तव्य है, तेसें चतुर्वर्गविषयक शास्त्रके प्रवर्त्तक ये दोऊ हैं, तामें जैसो जाको अधिकार है ता प्रमाण प्रवृत्ति होय ऐसे शास्त्र करिवेवारे दोऊ हैं ॥ ११ ॥

शिवजीके शास्त्रमें शिवजीको सर्वात्मकपनो कह्यो है और विष्णुके शास्त्रमें विष्णुको सर्वात्मकपनो कह्यो है तब विष्णुको पालनरूप एक कार्य है और शिवजीको संहाररूप एक कार्य है ऐसें कैसें सम्भवे ? ऐसी शंका होय तहाँ कहत हैं—

ब्रह्मैव तादृशं यस्मात्सर्वात्मकतयोदितौ ॥ १२ ॥

भावार्थ—अथर्वशिरश्वेताश्वतर प्रभृति उपनिषदनमें शिवरूपसूँ और महानारायणोपनिषद्नारायणोपनिषत्प्रभृति उपनिषदनमें विष्णुरूपसूँ ब्रह्मकोही प्रतिपादन है तिनसू अविरुद्धतासूँ पाशुपत तथा पंचरात्रादिकनमें, जासूँ सर्वात्मकपनेसूँ दोऊको निरूपण है तासूँ ब्रह्मही तेसो है ॥ १२ ॥

निर्दोषपूर्णगुणता तत्तच्छास्त्रे तयोः कृता ।
भोगमोक्षफले दातुं शक्तौ द्वावपि यद्यपि ॥१३॥
भोगः शिवेन मोक्षस्तु विष्णुनेति विनिश्चयः ॥

भावार्थ—शिवजीके (पाशुपतादिक) शास्त्रमें शिवजी, निर्दोषपूर्णगुण हैं ऐसें निरूपण कियो है और विष्णुके (पांचरात्रादिक) शास्त्रमें विष्णु निर्दोषपूर्णगुण हैं ऐसें निरूपण कियो है सोहू शिवरूपसूँ परब्रह्मकोहि निरूपण है गुणावतारनके अभिप्रायसूँ नहिं हैं; तासूँहि महाभारतमें मोक्षधर्ममें कह्यो है जो सांख्य, योग, पंचरात्र, वेद तथा पाशुपत ये पाँचोकी निष्ठा अन्ते नारायण प्रभु हैं; परन्तु या अभिप्रायकूँ नहिं जानिवेवारे अज्ञानी हैं

तासूँ तिनमें जा जा देवताको प्रतिपादन है सो सो देवताहि अन्ते निष्ठारूप है ऐसें माने हैं तासूँ विनकूँ फलहू तिन तिन देवतानमें सायुज्यादिक होय है परन्तु भगवानको आनन्द अथवा भजनानन्द नहिं मिले है, यह जीव-विचारित लौकिक मोक्षको निरूपण कियो तामें शिव तथा विष्णुके भजनको फल एक है किंवा भिन्न-भिन्न है ऐसें जानिवेकी इच्छा होय तहाँ कहत हैं जो भोग तथा मोक्ष देवेमें यद्यपि दोऊ समर्थ हैं तथापि शिवजीके भजनतें भोग और विष्णुके भजनतें मोक्ष मिले हैं; ऐसें विशेष निश्चय है, सो श्री-भागवतदशमस्कन्धके ८८ वें अध्यायमें कह्यो है जो शिवजी शक्तियुक्त हैं और गुणनकरिके आवृत हैं तासूँ शिवजीके भजनतें गुणनकी विभूतीनको भोग मिले है और हरि साक्षात् निर्गुण मायातें परे हैं तिनके भजनतें निर्गुण होय अर्थात् मोक्ष मिले है; तासूँ श्रुतीनमें तथा पुराणादिकनमें कोउ स्थलमें शिवजी मोक्ष देय हैं तथा विष्णु भोग देय हैं ऐसें लिख्यो है सो ऐसो सामर्थ्य बतायवेके लिये है देवेके अभिप्रायसूँ नहिं है ॥१३॥

शिवजी भोग देयँ हैं और विष्णु मोक्ष देयँ हैं, तामें बालकननेहु समझिवेमें आवे ऐसी युक्ति कहत हैं—

लोकेऽपि यत्प्रभुर्भुंक्ते तन्न यच्छति कर्हिचित् ॥ १४ ॥

भावार्थ—लोकमेंहू ऐसी रीति है जो स्वामी होय सो अपने भोगवेकी जो वस्तु होय सो औरकूँ नहिं देयँ है तेसें शिवजी सदा वैराग्ययुक्त रहिकें मोक्षकूँ भोगवे हैं और विष्णु सर्वदा लक्ष्मीजी के संग भोग भोगवे हैं तासूँ शिवजीकूँ भोग्य मोक्ष है सो औरकूँ देयँ नहिं और विष्णुकूँ भोग्य भोग है सो औरकूँ देयँ नहिं ये लौकिक युक्ति बताई परन्तु वास्तविक अभिप्राय ऐसो है जो शिवजी घोरशक्तिसहित फिरें हैं तथा विनके उपासक तामस होय हैं तासूँ शिवजी मोक्ष नहिं देयँ हैं और भगवद्भक्त निर्गुण हैं तिनकों लौकिक समृद्धि देवेतें विनको पात होय ऐसें जिनकूँ जाने तिनकों भगवान् भोग नहिं देयँ हैं, और जिनकों समृद्धिको मद होय नहीं ऐसें जाने तिनकों (श्रीदामाकी नाँई) भोगहू देयँ हैं सो अगाडी आवेगो जो अतिप्रियकों देत हैं अथवा वैष्णवनकों मोक्षकी इच्छा तो है नहीं तासूँ वे विष्णुको भजन नहीं करेंगें और भगवत्सेवामें भोग सिद्ध होय ऐसी समृद्धिकी इच्छा है तासूँ शिवजीको भजन करेंगे ऐसी शंका होय तहाँ कहत हैं जो लोकमेंहू प्रभु (सेवकके पति) श्रीकृष्ण, भक्त सम्बन्धी जो वस्तुको अङ्गीकार करें हैं सो

वस्तु कोउविरियाँ शिवजी नहीं देय हैं; क्यों जो भगवान् भक्तकामपूरक हैं और तिनकी भक्ति कल्पवृक्षसदृश है सो सबइच्छा पूर्ण करत हैं तेसें प्रभुकी भक्तिसूँ जो प्राप्त होय है ताकूँ अलौकिकपनो है और अलौकिककोही प्रभु अंगीकार करें हैं। तासूँ लोकमेंहू प्रभुकों अंगीकार करिवेकी वस्तु अलौकिक है सो शिवजी नहिं देत हैं प्रभुहि देत हैं॥ १४॥

शिवजी मोक्षकूँ नहिं देतें होंय तो पाशुपत शास्त्रको मोक्षशास्त्रपनो मिटजायगो और विष्णु, भोग नहिं देतें होय तो 'पुत्र धन, स्त्री. हार, मेहेल, घोड़ा, हाथी. सुख, स्वर्ग और मोक्ष हरिभक्तितें दूर नहीं है" इत्यादिक वाक्यनमें भगवद्भक्तितें ऐहिक पारलौकिक सब सुख मिलवेको लिख्यो है है तामें बाध आवेगो ऐसी शंका होय ताकी निवृत्तिके लिये कहत हैं—

अतिप्रियाय तदपि दीयते क्वचिदेव हि।
नियतार्थप्रदानेन तदीयत्वं तदाश्रयः॥१५॥
प्रत्येकं साधनं चैतद्द्वितीयार्थे महान् श्रमः।

भावार्थ--शिवजीकूँ जो अत्यन्त प्रिय होय ताकूँ शिवजी कोऊ समय मोक्ष देत हैं और विष्णुकूँ जो अत्यन्त प्रिय होय ताकूँ विष्णु भोग देत हैं ये ये बातहू लोकसिद्ध है, तासूँ शिव और विष्णुमें भोग तथा मोक्ष दोय देवेकी शक्ति है। क्यों जो तिनके भक्त होय और तिनको आश्रय करिकें अति प्रिय जब होय तब शिवजी तथा विष्णु दोऊ वा भक्तको जैसो अधिकार होय ताके अनुसार भोग और मोक्ष देत हैं, अथवा शिवजी भोगकूँहि देते होय तब विष्णुके भक्तनकूँहू भोगके लिये शिवजीकी भक्ति तथा आश्रय करनो पडे और शिवजीके भक्तनकों मोक्षके लिये विष्णुको आश्रय करनो पडे; तासूँ जो अत्यन्त प्रिय होय ताकूँ दोय पदार्थ दोऊ देत हैं. भगवद्भक्त न होय सो भोगकी इच्छा होय तो शिवजीको भजन करे तथा मोक्षकी इच्छा होय तो विष्णुको भजन करे और जो भगवद्भक्त होय ताकूँ तो सब पदार्थ भगवानसूँही सिद्ध होय तासूँ प्रत्येककों अतिप्रियपनो होय तैसें तदीयपनो तथा तिनको आश्रय करनो येही साधन है; वाही साधनसूँ सब सिद्ध होय परन्तु शिवजीकों मोक्ष देवेमें तथा विष्णुकों भोग देवेंमें बडो श्रम होय है, अथवा शिवभजन भोगकूँ सिद्ध करे है और विष्णुभजन मोक्षकूँ सिद्ध करे है ये प्रत्येक साधन है ऐसें लौकिक मोक्षको व्यवस्था कही और अलौकिक मोक्ष भक्तिमार्गीय है ताके लिये जो श्रम है सो साधनसूँ, फलसूँ, तथा स्वरूपसूँ अति उत्तम है॥ १५॥

शिवजीकों मोक्ष देवेमें तथा विष्णुकों भोग देवेमें बडो श्रम है ऐसें कह्यो ताको कारण कहत हैं--

जीवाः स्वभावतो दुष्टा दोषाभावाय सर्वदा ॥१६॥
श्रवणादि ततः प्रेम्णा सर्वं कार्यं हि सिध्यति ।

भावार्थ--जीव भगवानके अंश हैं तासूँ स्वरूपसूँ दुष्ट नहिंहैं परन्तु स्वभावसूँ दुष्ट भयें हैं; वादोषकी निवृत्तिके लिये सर्वदा श्रवणादिक करनों ता करिकें प्रेम होय और प्रेमसूँ सब कार्य सिद्ध होय है, इतने श्रुतिमें लिख्यो है "जो स्वभावसूँ देव, मनुष्य और असुर ऐसें तीन प्रकारके जीव हैं" तेसें मत्स्यपुराणमें संकीर्ण, सात्विक, राजस और तामस ऐसें चारप्रकारके कल्प बतायकें "अग्नि तथा शिवको माहात्म्य तामसमें कधिक कह्यो है, ब्रह्माको माहात्म्य राजसमें अधिक कहयो है, सरस्वती तथा पितृको माहात्म्य संकीर्णमें अधिक कहयो है और सात्विकमें हरिको माहात्म्य अधिक कह्यो है" ऐसें चारचोके लक्षण बतायकें सात्विकनमें मोक्षफल सहजमें होय है ऐसें लिख्यो है, तेसें विष्णुभक्तिकरिवेवारे सात्विक हैं और शिवभक्तिकरिवेवारे तामस हैं ऐसें वामनपुराणमें दशमाध्यायमें लिख्यो है तासूँ विष्णुभक्ति करिवेवारे सात्विक होयँ हैं तिनकों सत्वगुणकी निवृत्ति होयकें शीघ्रही गुणातीतपनो होयवेसूँ मोक्ष होय तामें विष्णुकों श्रम न होय और भोग देवेमें तो विनको शांत स्वभाव होय सो फिरावनो पडे तामेंहू भोगमें आसक्ति होयकें दोष उत्पन्न न होय ऐसो स्वभाव करिवेमेंहू विष्णुको श्रम होय तेसें शिवजीके भक्त तामस होय हैं तिनकों तो तमोगुणके, रजोगुणके और सत्वगुणके धर्म मिटावे तब गुणातीतपनो होय तब मोक्षहोय तामें शिवजीकों श्रम होय और तामस स्वभाववारेनकों भोग देवेंमें भक्तनको स्वभाव फिरावनो नहिं पडे है तासूँ शिवजीकों श्रम न होय, तासूँ जीवनकों दोषकी निवृत्तिके लिये श्रवणादिक सर्वदा करनों तासूँ प्रेम होय ता करिकें तदीयत्व और तदाश्रयत्व सिद्ध होय, अथवा जीव भगवानके दास हैं तिनकों भगवत्सेवा करनी ये स्वधर्म है सो नहिं करत हैं तासूँ दोषयुक्त भयें हैं वा दोषकी निवृत्तिके लिये श्रवणादिक करनों तासूँ भगवानमें प्रेम होय और प्रेम करिकें सबकार्य सिद्ध होय है ॥ १६ ॥

ऐसें सामर्थ्य तथा साधनकी व्यवस्था बतायकें ता करिकें जो सिद्ध भयो सो कहत हैं--

मोक्षस्तु सुलभो विष्णोर्भोगश्च शिवतस्तथा ।
समर्पणेनात्मनो हि तदीयत्वं भवेद् ध्रुवम् ॥१७॥

भावार्थ--ऊपर द्वितीय अर्थमें श्रम बतायो है तासूँ मोक्ष तो विष्णुसूँ सुलभ है और भोग शिवसूँ सुलभ है और अतिप्रियत्व होयवेके लिये आत्मा को समर्पण करे ता करिकें निश्चित तदीयपनो होय, क्यों जो मेरो और मेरे ममताविषयक जितने हैं तिनको, प्रभु इच्छाप्रमाण विनियोग करो ऐसी बुद्धि आत्मसमर्पणमें कारण है सो जब भई तब तदीयपनो निश्चित होय ॥१७

आत्मसमर्पण कियेतें तदीयपनो होय ऐसें कह्यो तब आत्मसमर्पण नहिं कियो होय और केवल आश्रयमात्र होय तामें ऊपरबताई ऐसी बुद्धि जाकी भई न होय तासूँ तदीयपनोहू भयो न होय ताकूँ फलसिद्धि कैसें होय ? ऐसें जानिवेकी इच्छा होय तहाँ कहत हैं--

अतदीयतया चापि केवलश्चेत्समाश्रितः ।
तदाश्रयतदीयत्वबुद्धयै किंचित्समाचरेत् ॥
स्वधर्ममनुतिष्ठन्वै भारवैगुण्यमन्यथा ॥१९॥

भावार्थ--तदीयपनो भयो न होय और केवल (प्रभु मेरे रक्षक हैं ऐसें अनुसन्धानवारो) आश्रित होय तोहू अपने वर्णाश्रम के धर्मको आचरण करे और आश्रय तथा तदीयपनेकी बुद्धि होय वेके लिये कछूक श्रवणादिक करे; क्यों जो वर्णाश्रमधर्म करे नहिं ताके अधर्मको दोष, तथा उपर बताये-प्रमाण जीव स्वभावतें दुष्ट हैं सो स्वभावकृत दोष मिलकें द्विगुण (दुगुणो) दोष होय तब ताको उद्धार करिवेवारे (प्रभु) कों श्रम अतिबडो होय, अथवा "वर्णाश्रमधर्म छोडिकें प्रभुके चरणको भजन करतो होय सो अपूर्ण रहे तोहू ताको अकल्याण न होय ओर भगवच्चरणको भजन करते न होय तिनको वर्णाश्रमके धर्मसूँ कहा अर्थ प्राप्त होय है ? कछू नही" ऐसें प्रथमस्कन्धमें नारदजीको वाक्य है तासूँ वर्णाश्रमके धर्म करतें-करतें हू आश्रय तथा तदीयपनेकी बुद्धिके लिये श्रवणादिक करनों, तेसें करे नहिं और केवल वर्णाश्रमधर्म करे तो तासूँ कछू फल न होय और आश्रय तथा तदीयपनेकी बुद्धिकेलिये श्रवणादिक करे नहिं इतने प्रभूहूँ उद्धार न करें ऐसें गुदुणो भार होय, अथवा भक्तिमार्ग में श्रीआचार्यजी द्वारा प्रभुकी शरणागति करनी येही जीवको स्वधर्म है सो स्वधर्म करे और आश्रय तथा तदीयपनेकी बुद्धिके लिये श्रवणादिक करे तो फलसिद्धि होय ऐसें न करे तो दुगुणो भार

होय इतने श्रवणादिक साधन करे ताको फल न होय और भक्तिमार्गीय धर्मको आचरण नहिं करिवेसूँ प्रत्यवाय होय ॥ १९ ॥

ऐसें बालकनकों बोध होयवेकेलिए संक्षेपमें निरूपण करिकें उपसंहार करत हैं—

इत्येवं कथितं सर्वं नैतज्ज्ञाने श्रमः पुनः ।
इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितो बालबोधः समाप्तः ॥

भावार्थ—ऐसें पूर्वोक्तप्रकारसूँ अपने और दूसरेनके सिद्धान्तके संग्रहरूप सब कह्यो है ताको ज्ञान होय तो पुरुषार्थनके स्वरूप समझिवेमें अन्यथाज्ञान फिर न होय इतने प्रथम जो अन्यथाज्ञान होय सो यामें लिखेप्रमाण समझे तो पीछें अन्यथाज्ञान न रहे।

इति श्रीमद्गोस्वामिनृसिंहलालजीमहाराज
विरचित बालबोधकी व्रजभाषामें
संक्षेपभावार्थटीका
सम्पूर्ण भई।

—०—

※ श्रीकृष्णाय नमः ※
※ श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ※

अथ सिद्धान्तमुक्तावलीकी व्रजभाषामें संक्षेपसूँ भावार्थटीका लिखी है

निबन्धमें भगवानकी प्राप्तिकेलिये वदिकमार्ग तथा भक्तिमार्गको निरूपण कियो है और दशमस्कन्धके श्रीसुबोधिनीजीमें स्वतन्त्रभक्तिमार्गको निरूपण कियो है, सो भगवत्प्राप्तिकेलिये तीनोमार्गनमेंसूँ अमुककूँ अमुक-मार्ग मुख्य है ऐसें बतायवेकेलिये है किंवा तीनोंनमें अमुकमार्ग मुख्य है ऐसें बतायवेके लिये है ? ऐसो सन्देह अपने भक्तनकूँ होय, तैसें वाके प्रसङ्गमें सेवाको स्वरूप कहा है ? और वाके अधिकारी कोन हैं ? इत्यादिकहू सन्देह होय ताकी निवृत्तिके लिये यह (सिद्धान्तमुक्तावली) ग्रन्थ श्रीआचार्य जी महाप्रभुजी करत हैं—

नत्वा हरिं प्रवक्ष्यामि स्वसिद्धान्तविनिश्चयम् ।
कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता ॥ १ ॥

भावार्थ—भक्तनके दुःख तथा पापकूँ हरिवेवारे प्रभूनकों नमन करिकें अपने सिद्धान्तको विशेषकरिकें जो निश्चय कियो है सो कहूँगो, यहाँ विशेषकरिके निश्चय कियो है ऐसें कह्यो है ताको अभिप्राय ऐसो है जो श्रीभागवतद्वितीयस्कन्धमें कह्यो है जो "भगवानमें तीनबिरियाँ वेद देखिकें यह निश्चय कियो जो आत्मारूप भगवानमें प्रीति होय ऐसो साधन करनों येहि समग्रवेदको अभिप्राय है", सो निश्चय जतावत हैं जा श्रीकृष्णकी सेवा सदा करनी सो तनुजा, वित्तजा तथा मानसी ऐसें तीनप्रकारकी है तामें मानसी फलरूप मानी है, श्रीकृष्ण फलात्मक है तिनकी सेवा सदा करनी ऐसें कह्यो है ताको अभिप्राय ऐसो है जो सेवाकरिकें और फलकी इच्छा नहीं राखनी सोत्रही स्वतः फलरूप है, सदा सेवाकरिवेकों लिख्यो है ताको

अभिप्राय ऐसो है जो अपनमें दासपनेको अनुसन्धान करिकें, सेवा है सो स्वतन्त्र फलरूप है और जीवनकों अवश्य कर्त्तव्य है। ऐसें समझकें सर्वकाल सेवा करनी ॥ १ ॥

सदा सेवा करनी ऐसें लिख्यो है सो राजाकी अथवा गुरूनकी सेवा शरीरसूँ मनुष्य करत हैं तैसेहि प्रभूनकी सेवाहू शरीरसूं ही करिबेको सिद्ध होय है सो सर्वकाल कैसें बनें ? ऐसी शंका होय तहाँ कहत हैं—

चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्धयै तनुवित्तजा ।
ततः संसारदुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्मबोधनम् ॥ २ ॥

भावार्थ—श्रीकृष्णमें चित्त, प्रथम कछुक लग्न होय, पीछें श्रीकृष्णके आधीन होय और ता पीछें श्रीकृष्णमें एकतानरूपकूँ प्राप्त होय (इतने तल्लीन होय सो सेवा कहियें, ऐसी सेवा सिद्धहोयवेके लिये तनुवित्तजा सेवा है अर्थात् श्रीकृष्णमें चित्तकी एकतानता होयवेके लिये तनुजा (शरीरसूँ) तथा वित्तजा (धनसूँ) सेवा है, यहाँ तनुजा तथा वित्तजा ऐसें भिन्न-भिन्न पद नहीं कहेतं तनुवित्तजा ऐसें समस्तपद कह्यो है ताको अभिप्राय ऐसो है जो अन्यकूँ मूल्यरूप धन देकें सेवा करावे सो वित्तजा सेवा भई परन्तु ताकरिके राजस आयजाय तासूँ मानसी सेवा सिद्ध न होय और मूल्यरूप धन लेकें शरीरसूँ सेवा करे सो तनुजा सेवा भई परन्तु सोहू मानसी सेवाकूँ सिद्ध नहिं करे है, जैसें यज्ञ में जितने ब्राह्मणनको वरण होय तिनकों यज्ञको फल नहीं होय है तैसें ही मूल्य लेकें सेवा करे ताको तनुजासेवाको फल (मानसी) सिद्ध न होय, तासूँ भगवानमें निष्काम स्नेह होय और शरीरसूँ तथा धनसूँ संजहि जो सेवा करे ताकूँ मानसी सिद्ध होय;तासूँ अहंता ममतात्मक संसारके दुःखकी निवृत्ति और अपनो आत्मा तथा ये प्रपंच सब अक्षरब्रह्मात्मक है ऐसो ज्ञान होय, यद्यपि भगवत्सेवामें जाको अभिनिवेश है ताकूँ इनफलनकी इच्छा नहीं है तथापि मानसी सेवाही ऐसी है जो संसारके दुःख की निवृत्ति तथा सर्व अक्षरब्रह्मरूप है ऐसो ज्ञान ये दोय याके अवान्तर फल हैं तिनकूँ तो सिद्ध करेही है ॥ २ ॥

अक्षर ब्रह्म है सोही परब्रह्म है ऐसें कोउके मनमें आवे तासूँ कहत हैं—

परं ब्रह्म तु कृष्णो हि सच्चिदानन्दकं बृहत् ।
द्विरूपं तद्धि सर्वं स्यादेकं तस्माद्विलक्षणम् ॥ ३ ॥

भावार्थ--श्रीयशोदोत्संगलालित श्रीकृष्णही परब्रह्म है क्यों जो आपतो पूर्णानन्द हैं और अक्षरब्रह्मके आनन्द गिनतीमें आवे है सो तैतरीय-उपनिषद्में आनन्दकी गिनती करी है तामें मनुष्यके आनन्दसूँ लेकें अक्षर-ब्रह्मताँई सोगुने-सोगुने आनन्द गिनें हैं सो अक्षरब्रह्मतांई गिने है तापीछें मन और वाणीमें आवे नहीं ऐसो (अगणित) आनन्द लिख्यो है, तासूँ श्रीकृष्णमें अगणित आनन्द है और अक्षरब्रह्ममें गिनतीमें आवे तितनो आनन्द है, सो अक्षरब्रह्म दोयरूपवारो है तामें सर्व प्रपञ्चात्मक इतने जगतमें जितने नाम-रूप हैं सो अक्षरब्रह्मकोही एकरूप है और दूसरो रूप प्रपञ्चसूँ विलक्षण है अर्थात् श्रुतीनमें जाको प्रतिपादन है, ज्ञानी जाकी उपासना करें हैं, ज्ञानीन की मुक्तिको जो स्थान है और श्रीपुरुषोत्तमके रहिवेको जो स्थान है सो अक्षरब्रह्मको दूसरो स्वरूप है ॥ ३ ॥

विरोध मिटायवेके अर्थ अपनो सिद्धान्त कहिवेकूँ औरनके मतनको स्वरूप बतावत हैं--

अपरं तत्र पूर्वस्मिन् वादिनो बहुधा जगुः ।
मायिकं सगुणं कार्यं स्वतन्त्रं चेति नैकधा ॥ ४ ॥

भावार्थ--अक्षरब्रह्म जगतके रूपसूँ प्रकट भयो है तामें बहोत वादी-लोग वेदमतसूँ भिन्न मत कहत हैं। रस्सीमें सर्पकी भ्रांति होय है, अथवा शुक्तिका (सींप) में रजत (चाँदी) की भ्रांति होय है तेसें निर्गुणब्रह्ममें जगत्की भ्रांति भई है, अथवा मायायुक्त ईश्वरनें जगत् बनायो है, ऐसें मायावादी मानें हैं, और साँख्यमतवारे ऐसें मानें हैं जो सत्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण, इन तीन गुणनसूँ जगत् भयो है, सांख्यमत कहिबेसूँ पांतजल (योगशास्त्र) मतहू यामें आयगयो और तर्कशास्त्रवारे ऐसें कहैं हैं जो पृथिवी, जल, तेज तथा वायु, इनसबनके परमाणु (अत्यन्त झीणे-२ कण) को संयोग ईश्वरकी इच्छासूँ इनमें क्रिया उत्पन्न होयकें होय है तब आपसमें मिलवेसूँ कार्यरूप ये जगत् भयो है, तार्किकमत कहिवेसूँ जो जगत्में सोरह ही पदार्थ हैं ऐसो प्रतिपादन करें हैं। जाके प्रवर्त्तक गौतम ऋषि हैं ऐसो न्यायमत तथा जगत्में सातही पदार्थ हैं ऐसो जो प्रतिपादन करें हैं जाके प्रवर्तक कणाद मुनि हैं ऐसो वैशेषिकमतहू यामें आयगयो, और कर्ममार्गवारे मीमांसक ऐसें कहे हैं जो ये जगत् जेसो दीखे है तेसोहि जगत् सर्वदासूँ चल्योही आवे है याको कोउ कर्त्ता होइ नहीं, मूलमें चकार है तासूँ बौद्ध, आर्हत, लोकायतिकप्रभृतिनास्तिकमत तथा वाम शाक्तादि मत आयगये, ऐसें अनेकप्रकारसूँ कहत हैं ॥ ४ ॥

परन्तु ये मत सब वेदसूँ भिन्न हैं तासूँ ऐसें वेदमतसूँ भिन्नमतको निरूपण जो करें हैं तिनको खण्डन तो वेदके बलसूँही होयजाय है तासूँ जूदो खण्डन करिवेको प्रयोजन नहीं है ऐसे अभिप्रायसूँ वेदके सिद्धान्तरूप स्वसिद्धान्तको निरूपण करत हैं—

तदेवैतत्प्रकारेण भवतीति श्रुतेर्मतम् ।
द्विरूपं चापि गङ्गावज्ज्ञेयं सा जलरूपिणी ॥ ५ ॥
माहात्म्यसंयुता नृणां सेवतां भुक्तिमुक्तिदा ।
मर्यादामार्गविधिना तथा ब्रह्मापि बुद्धयताम् ॥६॥

भावार्थ—जाको वेदमें प्रतिपादन है सोहि अक्षरब्रह्म नामरूपात्मक जगत्के प्रकारसूँ होय है अर्थात् प्रपञ्चसूँ भिन्न जो अक्षरब्रह्मको स्वरूप ऊपर कह्यो है सोही अक्षरब्रह्म या जगत्के रूपसू होय है जैसें गङ्गाजीके आधिभौतिक और आध्यात्मिक दोय रूप हैं तामे जो वृष्टिसू बढ़े है और धूपसूँ घटे है सो जलरूप है सो गङ्गाजीको आधिभौतिकरूप है और जो तीर्थरूप है जाके माहात्म्यको निरूपण है सो गङ्गाजीको आध्यात्मिकरूप है जो मर्यादामार्गके विधिसूँ सेवन करिवेवारेनकों भोग और मोक्ष देत हैं, इतने तीर्थरूप जो आध्यात्मिक स्वरूप है सो प्रवाहमें ही रहत है; तासूँ प्रवाहमेंतें जल भरिकें दूसरे देशमें लेजाय सो जलमें तारतम्य नहीं है जलतो वोको वोही है तथापि वहाँ वा जलके स्नानादिकसूँ तीर्थस्नानादिकको फल होय ऐसो कोउ ग्रन्थमें दीखवेमें नहीं आवे है तेसें वा जलसूँ तेसोही फल होतो तो राजा तथा और द्रव्यपात्रप्रभृतीनकों वहाँ जायवेको प्रयोजनही नहीं रहतो; तासूँ प्रवाहमेंही तीर्थस्नानफल लिख्यो है सो तीर्थरूप गंगाजी जलरूपसूँ भिन्न है, तेसें अक्षरब्रह्म जगद्रूप है ओर जगतसूँ भिन्नहू है, ऐसें जाननो ॥ ५ ॥ ६ ॥

अब आधिदैविकरूपको निरूपण करत हैं—

तत्रैव देवता मूर्तिर्भक्त्या या दृश्यते क्वचित् ।
गङ्गायां च विशेषेण प्रवाहाभेदबुद्धये ॥ ७ ॥
प्रत्यक्षा सा न सर्वेषां प्राकाम्यं स्यात्तया जले ।
विहिताच्च फलात्तद्धि प्रतीत्याऽपि विशिष्यते ॥ ८ ॥

भावार्थ—ऊपर गङ्गाजीको जो आधिभौतिक और आध्यात्मिक रूप

कह्यो तामेंही देवतारूप गङ्गाजी भिन्न हैं सो मूर्ति है इतने भीष्मपितामहकी माता जो भई हती और भगीरथराजाकों जाको दर्शन भयो हतो सो गंगाजी की आधिदैहिक मूर्ति है सो भक्तिकरिकें कोऊ गंगाद्वारप्रभृति स्थलमें अथवा गृहादिकमें भक्तिकी वृद्धि होय तब दोखवेंमें आवत है, सो देवतारूप गंगाजी प्रवाहसूँ भिन्न नहीं है ऐसी जाकी बुद्धि है ताकों प्रवाहमेंही देवतारूप गंगाजी प्रत्यक्ष होय हैं ता करिकें निषिद्ध नहीं ऐसो बहोत व्यवहार वा जलमें होय है ऐसें जगत्मेंही भगवानके स्वरूप तथा भगवद्भक्तमें विशेष स्नेह होय तब भगवानसूँ भिन्न नहिं है ऐसी जाकी बुद्धि भई होय ताके लिये भगवान् प्रकट होय है तब अपने इच्छित प्रभुको यह स्थान है ऐसो ज्ञान होय तब सर्वस्थलमें भगवद्भाव स्फुरायमान होय हैं; इतने तेसी भक्तिकरिकें गंगाजी को दर्शन भयो तापीछे स्वर्ग और मोक्षरूप फल शास्त्रमें कहे है तासूँहू और प्रतीतिकरिकेंहू प्रवाहरूपको दर्शन वाकों विशेष जानिवेमें आवत है, तेसें जगत्में भगवानको साक्षात्कार भये पीछें ज्ञानिकोफल मोक्ष है तासूँहू (जगत्में) सवत्र भगवानको यह अधिष्ठान है ऐसो ज्ञान विशेष है ऐसें जानिवेमें आवत है तब सर्वत्र अनिषिद्ध इच्छानुकूल व्यवहार होय है ॥७॥८॥

यथा जलं तथा सर्वं यथा शक्ता तथा बृहत् ।
यथा देवी तथा कृष्णस्तत्राप्येतदिहोच्यते ॥ ९ ॥
जगत्तु त्रिविधं प्रोक्तं ब्रह्मविष्णुशिवास्ततः ।
देवतारूपवत्प्रोक्ता ब्रह्मणीत्थं हरिर्मतः ॥१०॥

भावार्थ--जैसें गंगाजीको प्रवाहरूप जल है तेसें यह सब जगत् है, जैसें (पाप मिटायवेमें तथा फल देवेमें) समर्थ तीर्थरूप गङ्गाजी है तेसें अक्षरब्रह्म है और जेसें मूर्तिवारी गंगाजी देवी है तेसें श्रीकृष्ण हैं; इतने गङ्गाजीको दर्शन जिनकों भयो होय तिनकों जेसें जल, गंगाजीको स्थान है ऐसो ज्ञान होय तासूँ अनिषिद्ध इच्छानुसार व्यवहार होय है और तीर्थके दर्शनमें अन्यसूँ अधिकपनेको ज्ञान होय है तेसें भगवत्स्वरूप तथा गुरुप्रभृति करिकें जिनकों जगत्में भगवानके दर्शन भयें हैं, तिनकों सब जगतमें प्राणिमात्रमें भगवद्भावकी स्फूर्ति होय है और अक्षरब्रह्म करिकें ज्ञानीको मोक्ष-

---

* गंगाजीके दृष्टान्तसूँ ऐसो सिद्ध भयो जो तीर्थरूपकी उपासनासूँ जो फल होय है सो जलरूपकी उपासनासूँ नहीं होय है तेसें अक्षरब्रह्मकी उपासनासूँ जो फल होय है सो जगत्की उपासनासूँ नहीं होय है ।

सूँहू अधिक भगवद्भावपनेको ज्ञान होय गङ्गाजी में ये फल जिनकों गंगाजीको दर्शन नहीं भयो है और श्रद्धावारे हैं तिनकों जेसें जलमें श्रद्धासहित तीर्थ व्यवहार होय है और तीर्थकरिकें जलमें अन्यसूँ अधिकताको ज्ञानरूप फल क्रमसूँ होय है तैसेंहि जगत्में भगवानके दर्शन जिनकों नहीं भये हैं और आप श्रद्धावारे हैं तिनकों भगवानके स्वरूपादिकनमें श्रद्धापूर्वक सेवादि व्यवहार होय है और अक्षरब्रह्ममें ज्ञानीनके मोक्षसूँ अधिकपनेसूँ भगवानके धामपनेको परोक्षज्ञान होय है; तामें आधिदैविकके दृष्टान्तके विचारमेंहू या सिद्धान्तमें यह कह्यो जाय है जो जगत् तो त्रिगुणात्मक कह्यो क्यों है क्यों जोतीन स्वभाववारो प्रकट भयोहैतासूँअक्षरब्रह्मके अंशरूप ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीनों तीनगुणनके नियामक भगवाननें किये हैं सो कूर्मपुराणादिकनमें आधिदैविकपनेसूँ कहे हैं परन्तु भगवाननेही आधिदैविक जैसे किये हैं तासूँ भगवान् एकही नियामक हैं, त्रिगुणात्मक जगत्के नियामक जैसें त्रिगुणाभिमानी ब्रह्मादिक तीनोनकूँ भगवानने किये हैं तेसें अक्षरब्रह्म में नियामक भगवान्ही हैं ऐसें युक्तिकरिकें निश्चय कियो है ॥९॥१०॥

गंगाजीके दृष्टान्तसूँ ऐसो सिद्धभयो जो जलरूप तथा तीर्थरूपको मात्र नियामकपनो जैसें देवीरूप गंगाजीकूँ है परन्तु भक्तनकों आपतें फल देवेपनो नहीं है तेसेंही श्रीकृष्णसूँहू भयो तव विनकी सेवाको उपदेश क्यों करो हो ? ऐसें काहूकों शंका होय तहाँ कहत हैं—

कामचारस्तु लोकेऽस्मिन्ब्रह्मादिभ्यो न चान्यथा ।
परमानन्दरूपे तु कृष्णे स्वात्मनि निश्चयः ॥११॥
अतस्तु ब्रह्मवादेन कृष्णे बुद्धिर्विधीयताम् ।
आत्मनि ब्रह्मरूपे तु छिद्रा व्योम्नीव चेतनाः ॥१२॥

भावार्थ—या लोकमें इच्छानुकूल भोगादिकनकी प्राप्ति ब्रह्मादिकनसूँ होय है ब्रह्मादिक शिवाय नहीं होय है तेसें इच्छानुकूलहीं मिले है इच्छासूँ विरुद्ध नहीं मिले है और भक्तनकों तो अपने अर्थमें परमानन्दरूप श्रीकृष्णमें निश्चय कामचार है इतने भक्तनकों तो सब कामनाके समूहमेंतें निकसिकें केवल प्रभुविषयकही कामचार (इच्छानुकूल प्राप्ति तथा भोग) होय है, अथवा भक्तनकों प्रभूनमें अत्यन्त स्नेह होय है तासूँ भगवान् अपने आत्मा हैं ऐसी स्फुरणा होयवेसूँ सब रीतसूँ विनती प्रार्थना करिवेमें शंका नहीं होय है ॥ ११ ॥ तासूँ सब ब्रह्मरूप है ऐसे सिद्धान्तसूं परब्रह्मरूप श्रीकृष्णमें

बुद्धि करनी, आकाशमें चालिनीप्रभृतिसूँ छिद्रकी बुद्धि होय है तैसें ब्रह्मरूप आत्मामें दोषवारी बुद्धि होय है जासूँ जीव अपने आत्माकूँ ब्रह्मरूप नहीं जाने हैं संसारी जाने हैं। आकाशमें छिद्र नहीं है। आकाशतो सर्वत्र व्याप्त समान है, परन्तु चालिनीप्रभृति उपाधिसूँ आकाशमें छिद्र है ऐसी बुद्धि होय है, तैसें जीव अक्षरब्रह्मके अशरूप अणु है परन्तु अविद्याके अन्तरायसूँ अपनो अक्षरब्रह्मात्मकपनो नहीं जानें हैं, तासूँ अपनेमें क्षुद्रत्वादिक धर्म दीखवेमें आवत हैं। ब्रह्मधर्म नहीं दीखत हैं।।१२।।

ऐसें बन्धको निरूपण करिकें अब मोक्षको निरूपण करत हैं—

उपाधिनाशे विज्ञाने ब्रह्मात्मत्वावबोधने ।
गंगातीरस्थितो यद्वद्देवतां तत्र पश्यति ।।१३।।
तथा कृष्णं परं ब्रह्म स्वस्मिन् ज्ञानी प्रपश्यति ।।

भावार्थ – जितने जीव हैं तिनमेसूँ जाजीवकों जा प्रकारसूँ उद्धार करिवेकी प्रभूनकी इच्छा होय है वा प्रकारके गुरूनके उपदेशादिकनसूँ अविद्यारूप उपाधिको नाश होय तब नामरूप सहित (जडजीवात्मक) सब जगत् अक्षरब्रह्मरूप है ऐसो ज्ञान होय तब गंगाजीके तीरपें रहिवेवारो गंगाजीको भक्त भक्तिकी अधिकतासूँ जैसें प्रवाहमें मूर्त्तिरूप गंगाजीको दर्शन करे है तैसें जगत् तथा अपने आत्माकूँ अक्षरब्रह्मात्मक जानिवेवारो ज्ञानी अपनेमें परब्रह्मरूप श्रीकृष्णकूँ देखे है। क्यों जो अक्षरब्रह्म है सो पुरुषोत्तमको निवासस्थान है तासूँ निवासस्थानरूप अक्षरब्रह्मके ज्ञानसूँ तामें रहिवेवारे पुरुषोत्तमको दर्शन सहजमें होय है।। १३ ।।

अब हीनाधिकारीनकी व्यवस्था कहत हैं—

संसारी यस्तु भजते स दूरस्थो यथा तथा ।
अपेक्षितजलादीनामभावात्तत्र दुःखभाक् ।।१४।।

भावार्थ—संसारी इतने जाकी अहंताममता छूटी नहीं है ऐसो सतो जो भजन करे है सो जैसें गंगाजीतें दूर रह्यो होय ताकूँ इच्छित जलप्रभृतिको अभाव होय तासूँ दुःखहि भुगते है तेसें आप भक्तिमार्गमें रह्यो होय ताकूँ साक्षात् स्वरूप सम्बन्धि अर्थकी अपेक्षा होय और मिले नहीं तब क्लेश भुगते है। तथापि याकी सेवाको प्रभूनने अंगीकार कियो होय तासूँ भजनकूँ छोडे नहीं, और प्रभूनने सेवाको अंगीकार कियो न होय तो बीचमें

प्रतिबन्ध होय तोहूजो भजन कियो है सो तो व्यर्थ होय नहीं तासूँ जन्मान्तरमें फल होय है ॥ १४ ॥

तस्माच्छ्रीकृष्णमार्गस्थो विमुक्तः सर्वलोकतः ।
आत्मानन्दसमुद्रस्थं कृष्णमेव विचिंतयेत् ॥१५॥

भावार्थ—अहंताममतात्मक संसारयुक्त भजन करत हैं सो क्लेशभुगते हैं ऐसें ऊपर कह्यो है तासूँ श्रीकृष्णको मार्ग जो पुष्टिमार्ग है तामें जो रह्यो है और सर्वलोकसूँ विमुक्त है सो आत्माके आनन्दरूप समुद्रमें रहे ऐसे श्रीकृष्णको ही चिन्तन करे। यहाँ श्रीकृष्णको ही चिन्तन करिवेको लिख्यो है। ताको अभिप्राय ऐसो है जो पुष्टिमार्गीय भक्तनको निरवधि आनन्द जहाँ प्रकट होय है तहाँ विहार करिवेवारेको चिन्तन करनो व्रजभक्तनमें विहार करिवेवारे श्रीकृष्णको चिन्तन करिवेतें व्रजभक्तनकीसी नांई लौकिकमेंतें मनोवृत्ति निकसिकें श्री कृष्णमें ही लगे है ॥ १५ ॥

लोकार्थी चेद्भजेत्कृष्णं क्लिष्टो भवति सर्वथा ।

क्लिष्टोऽपि चेद्भजेत्कृष्णं लोको नश्यति सर्वथा ॥१६॥

भावार्थ—लौकिक अर्थकी इच्छा राखिकें जो भगवद्भजनमें प्रवृत्त होय है सो सर्वथा क्लेश पावे हैं[1]; इतने कछू लाभकेलिये पूजादिकमें प्रवृत्त होय सो तो पाखण्डी और देवलक कह्यो जाय है। तासूँ लाभपूजार्थयत्न-शिवाय जामें निषेध नहीं है ऐसी रीतसूँ मेरो लौकिक सिद्ध होय ऐसी इच्छासूँ जो भजनमें प्रवृत्त भयो होय सो लोकार्थी कह्यो जाय है, सो श्री कृष्णको भजन करे तब बाकी ऊपर प्रभूनको अनुग्रह होय, तासूँ लौकिकमेंतें आसक्ति छुडायवेके लिये प्रभु उपेक्षा करे, तब सब प्रकारसूँ क्लेशकूँ प्राप्त होय तोहू श्रीकृष्णकूँ जो भजे है ताको भीतरको तथा बाहिरको लौकिक आग्रह नष्ट होय जाय, संसारी जो भजे है ताकी व्यवस्था प्रथम लिखी है तामें तीन भेद है, एक - तीन प्रकारके संसारीकी निवृत्तिकी इच्छावारो, दूसरो-लौकिक इच्छायुक्त सेवाको आग्रही; और तीसरो-सेवाको अनाग्रही ऐसे तीननकें फल यहाँ ताँई कहे । १६ ॥

अपनो स्वरूप तथा भगवानको स्वरूप नहिंजानिबेवारे भक्तहू पुष्टि

१- ऊपर जो संसारी (अहंताममतायुक्त) की व्यवस्था लिखी है तामेंहू जो हीनाधिकारी है ताकी व्यवस्था या श्लोक में है ।

और मर्यादाके भेदसूँ दोय प्रकारके हैं बिनदोऊनको चित्त चञ्चल न होयवेके लिये कहत हैं—

ज्ञानाभावे पुष्टिमार्गी तिष्ठेत्पूजोत्सवादिषु ॥१७॥
मर्यादास्थस्तु गङ्गायां श्रीभागवततत्परः ।
अनुग्रहः पुष्टिमार्गे नियामक इति स्थितिः ॥१८॥

भावार्थ--अपने स्वरूपको तथा भगवानके स्वरूपको ज्ञान न होय तोहू पुष्टिमार्गीय भक्त है सो श्रीभागवतमें तत्पर होयकें पूजा तथा उत्सवादिकनमें रहे इतने श्रीभागवत एकादशस्कन्धके उनतीसमे अध्यायमें श्रीकृष्णने उद्धवजीकों अपने धर्म कहे हैं जो मेरो स्मरण करे, और सब कार्य मेरे लिये करे, मेरी अमृतरूप कथामें श्रद्धा राखे इत्यादिक धर्म कहे हैं, तिनमें रहे और मर्यादामार्गीय भक्त है सो तो भगवान्के चरणरजके सम्बन्धवारी गंगाजीमें श्रीभागवतमें तत्पर होयकें रहे। इतने जहाँ परीक्षितकूँ तथा विदुरजीकूँ श्रीभागवतें सिद्धि भई है, तहाँ रहे, और पुष्टीमार्गीय भक्तनकों रहिवेके देशको नियम नहीं है। जहाँ प्रभु अनुग्रह करिकें राखे तहाँ रहे इतने जहाँ रहिकें भगवद्भजनादिकनमें आछी रीतसूँ प्रवृत्ति रहे तामें प्रतिबन्धादिक कछु न आवे तहाँ रहे ॥ १७ ॥ १८ ॥

मर्यादामार्गीय ज्ञानी और भक्त होय तिनके ऊपर प्रभु विशेष अनुग्रह करे तो मर्यादामार्गीयज्ञानी तथा भक्त ये दोऊ पुष्टिमार्गकूँ प्राप्त होयकें पुष्टीमार्गीय भक्तिकूँ प्राप्त होय हैं सो कहत हैं--

उभयोस्तु क्रमेणैव पूर्वोक्तैव फलिष्यति ।
ज्ञानाधिको भक्तिमार्ग एवं तस्मान्निरूपितः ॥१९॥

भावार्थ--मर्यादामार्गीय ज्ञानी तथा मर्यादामार्गीय भक्त होय विनको पुष्टिमार्गमें अंगीकार होयगो तो क्रमसूँ मानसी सेवाको फल मिलेगो और जो मर्यादामें अगीकार होयगो तो सायुज्यमुक्ति मिलेगी, ऐसें भक्तिमार्ग है सो श्रीपुरुषोत्तमकी प्राप्ति करिवेवारो है तासूँ ज्ञानमार्गसूँ उत्तम है सो गंगाजीके दृष्टान्तसूँ निरूपण कियो है, इतने लोकमें कितनेक कहत हैं जो भक्तिसूँ ज्ञान मिले और ज्ञानसूँ मुक्ति मिले परन्तु आत्मा तथा अक्षरब्रह्मकी एकताको ज्ञान तथा सब जगत् अक्षरब्रह्मरूप है ऐसे जाननो सो ज्ञान कह्यो जाय है सो ज्ञान होय तोहु श्रीपुरुषोत्तमको सम्बन्ध तो अतिदूर रहे है क्यों जो श्रीपुरुषोत्तम तो अक्षरातीत है तासूँही गीताजीके बारमें अध्यायमें

लिख्यो है जो अक्षरकी उपासनावारेनकों क्लेश अधिक है और "जो सब कर्मनको मेरेमें अर्पण करिकें मेरे परायण होयकें मेरी उपासना करत हैं तिनको उद्धार में शीघ्रही करूँहूँ" ऐसें श्रीकृष्णनें कह्यो है तासूँ ज्ञानसूँ अधिक भक्तिमार्ग है ॥ १९ ॥

गङ्गाजीको दृष्टान्त दियो है ताको दूसरो तात्पर्य कहत हैं—

भक्त्यभावे तु तीरस्थो यथा दुष्टैः स्वकर्मभिः ।
अन्यथाभावमापन्नस्तस्मात्स्थानाच्च नश्यति ॥२०॥

भावार्थ--गङ्गाजोके तीरमें रह्यो होय और अपने दुष्टकर्मन करिकें विपरीतभावकूँ प्राप्त भयो होय सो जैसें वास्थानसूँ नष्ट होय है तेसें भक्तिको अभाव होय तो भगवानके संनिधानवारे देशमें रहत होय तोहु अपने दुष्टकर्मन करिकें पाषण्डिपनेकूँ प्राप्त भयो होय सो आरूढपतित होय है। इतने जैसें कोऊ ऊँचे स्थलपें चढिकें गिरे है तैसें भक्तिमार्गमें आयो होय और भक्ति न होय तासूँ दुष्टकर्मनसूँ पाषण्डी होयकें वामार्गतें भ्रष्ट होय है ॥२०॥

ऐसें भक्तिको अवश्यपनो निरूपण करिकें उपसंहार करत हैं—

एवं स्वशास्त्रसर्वस्वं मया गुप्तं निरूपितम् ।
एतद्बुध्वा विमुच्येत पुरुषः सर्वसंशयात् ॥२१॥

॥ इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचिता सिद्धान्तमुक्तावली समाप्ता ॥

भावार्थ--ऐसें अपने शास्त्रको सर्वस्व जो गुप्त हतो सो मेने निरूपित कियो है, ये जो निरूपित कियो है ताकूँ जानिकें पुरुष सब संशयनसूँ मुक्त होय है ॥ २१ ॥

या ग्रन्थमें इतनो सिद्धभयो जो तनुजा तथा वित्तजा सेवाही प्रथम साधन है सो यथार्थ बने तो प्रभुमें चित्त लीन होयजाय ऐसी मानसी सिद्ध होय तब प्रभु सम्बन्धीही सब कामना होय तासूँ सब ब्रह्मात्मक है ऐसे ज्ञानसूँ भगवानमें बुद्धि राखनी ये साधनकी प्रथम (मुख्य) कक्षा है। यामें अधिकार न होय तो ये मर्यादापुष्ट है ताकों अक्षरब्रह्मात्मक अपनो स्वरूप है और अक्षरब्रह्ममें श्रीकृष्ण विराजत हैं ऐसो ज्ञान जैसें होय तैसो यत्न करनो ये साधनकी द्वितीय (मध्यम) कक्षा है, यामेंहु जाको अधिकार नहीं है सो शरीर, पुत्र, धनादिकनमें अभिमानवारो संसारी कह्यो जाय है ऐसो पुरुष सेवाकरतो होय तामें भगवानको उपयोगी पदार्थ मिले नहीं तब दुःख

पावे तब सेवाहु आछी रीतसूँ न बने ऐसेकों संसारमेंतें आसक्ति छुटवेकेलिये लीलाविशिष्ट भगवानको चिन्तन करनो ये साधनकी तीसरी (हीन) कक्षा है, और जाकों लौकिककी इच्छा निवृत्त नहिं होय सो तनुजावित्तजा सेवा करतो होय तब वाकी परीक्षाके लिये अथवा प्रारब्धभोगके लिये प्रभु विलंब करे तब लौकिकतें क्लेश होय तोहु भगवत्सेवा छोडे नहीं तो लौकिकासक्ति छूट जाय, ऐसो जो पुष्टिमार्गीय होय तो श्रीभागवतके पाठ श्रवणादिकमें तत्पर होयकें इच्छानुकूल देशमें रहिकें पूजोत्सवादिक करनो और ऐसो जो मर्यादामार्गीय होय तो गङ्गाजीके तीरमें रहिकें श्रीभागवतको श्रवण अथवा पाठ बारम्बार करचो करे ये साधनकी चोथी (अतिहीन) कक्षा है, और जो तनुजावित्तजा सेवा करतो होय तामें भक्तिहु न होय सो पांचमों आरूढपतित कह्यो जाय है, सो बारम्बार जन्मकूँ प्राप्त होयकें संसारको अभिनिवेश शिथिल होय तब मुक्त होय और संसारको अत्यन्त अभिनिवेश होय तो मुक्तिहु न होय, तासूँ संसारावेश छोडिकें भक्तिके लिये तनुजा तथा वित्तजा-सेवामें यत्न करनों।

इति श्रीमद्गोस्वामिश्रीनृसिंहलालजीमहाराज-
विरचिता सिद्धान्तमुक्तावलीभावार्थ-
संक्षेपटीका सम्पूर्णा।

—०—

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥
॥ श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अथ पुष्टिप्रवाहमर्यादाकी व्रजभाषामें संक्षेपसूँ भावार्थटीका लिखी है

या जगत्में जितने जीव हैं तितने सब चिदंशरूप करिकें तथा भगवदंशपनेसूँ समान हैं तिनमें कितनेकनकों श्रीपुरुषोत्तमकी प्राप्ति होय है, कितनेकनकों अक्षरब्रह्मकी प्राप्ति होय है, कितनेकनकों स्वर्गादिकनकी प्राप्ति होय है और कितनेकनकों अन्धतमकी प्राप्ति होय है, ऐसें फलमें भेद क्यों होय है ? और स्वभावमें भेद क्यों है ! और कितनेकनके स्वभावतें विरुद्ध देह तथा क्रिया है, कितनेकनके स्वभावानुकूल देह तथा क्रिया है इत्यादिक भेद क्यों है ? ऐसें सन्देहवारेनको सन्देह मिटायवेके लिये विनके उपायभूत मार्ग तथा मार्गको सांकर्य निरूपण करिवेके लिये सबनको भेद जानिवेतें सब सन्देहनकी निवृत्ति होयगी ऐसें विचारिकें तीनमार्गके भेदको निरूपण करत हैं ।

पुष्टिप्रवाहमर्यादा विशेषेण पृथक् - पृथक् ।
जीवदेहक्रियाभेदैः प्रवाहेण फलेन च ॥ १ ॥
वक्ष्यामि सर्वसन्देहा न भविष्यन्ति यच्छ्रुतेः ।
भक्तिमार्गस्य कथनात् पुष्टिरस्तीति निश्चयः ॥ २ ॥

भावार्थ--पुष्टि, प्रवाह और मर्यादा ये तीनो जूदे जानिवेमें आवे ऐसे विनके धर्मकरिकें,जीवादिकनके भेदनसूँ सृष्टिकी, परम्परा अविच्छिन्न चली-आवे है ताकरिकें और विनकों फल मिले है, ता करिकें भिन्न-भिन्न समझिवेमें आवे तेसें कहूँगो जाके श्रवणतें सब सन्देह न होयँगे, इतने विनके धर्म,जीवको स्वरूप तथा देह तथा क्रियाके भेद, तथा सृष्टि तथा विनके फलको ज्ञान होयगो तब सब सन्देह निवृत्त होयँगें, या लोककी तथा परलोककी कामना छोडिकें प्रभुमें मन लगावनों सो भक्ति कहिजाय है सो भक्ति प्रभूनके अनु-

ग्रहसूँ मिले है। तासूँ ही पंचमस्कन्धमें ऋषभदेवजीके चरित्रकी समाप्तिमें कह्यो है जो "मोक्षदेवेवारे भगवान्, भजन करिवेवारेनकों मुक्ति देयँ हैं परन्तु काहुसमय भक्तियोग नहीं देयँ हैं" तेसें श्रीदेवकीजीने स्तुति करी तब प्रभूनके माहात्म्यको ज्ञान हतो तासूँ सब माहात्म्यको वर्णन कियो, ता पीछे सुदृढ़ स्नेह भयो तब माहात्म्यकूँ भूलिकें कह्यो जो आपके लिये मेरी बुद्धि में धैर्य नहीं रहे है मैं कंससूँ डरपूँहूँ, ऐसें कह्यो है सो सुदृढ स्नेहको स्वरूप है, तासूँ प्रभूनको जब अनुग्रह होय तब ऐसी भक्ति मिले है वा अनुग्रहको नाम पुष्टि है, जैसें कोऊने पाप कियो होय ताको निवारण (प्रायश्चित्त) कष्टसूँ बने, ऐसो होय परन्तु ताके लिये विद्याननकी सभा भरी होय सो अनुग्रहसूँ सुगम प्रायश्चित्त कहे तो होय सके है। जैसें कर्ममार्गमेंहु अनुग्रह की प्रार्थना होय है सो फल सिद्ध होयवेकेलिये है तेसें सुकर साधनरूप भक्ति-मार्ग, श्रीकृष्णभगवाननें उद्धवजीकेप्रति कह्यो है तासूँ ताके मूलभूत पुष्टि है ऐसो निश्चय है ॥ १ ॥ २ ॥

ऐसें पुष्टिकी विद्यमानताको निरूपण करिकें प्रवाह तथा मर्यादाकी विद्यमानताको निरूपण करत हैं--

"द्वौ भूतसर्गौ" वित्युक्तेः प्रवाहोऽपि व्यवस्थितः ।
वेदस्य विद्यमानत्वान्मर्यादाऽपि व्यवस्थिता ॥ ३ ॥

भावार्थ – गीताजीमें कह्यो है जो "दैव और आसुर ऐसें दोयप्रकारके भूतसर्ग है" तासूँ दैव और आसुर ऐसे विभागसूँ सृष्टिकी परम्परा अविच्छिन्न चलीआवे है ताको नाम प्रवाह है इतने नदीको प्रवाह जैसें आरम्भसूँ अन्ततांई चल्योजाय है तैसें दैव और आसुर ये दोयप्रकारकी सृष्टिको प्रवाह प्रलयपर्यन्त चल्योजाय, नहीं तो श्रीकृष्णने दोऊको विभाग कियो है सो व्यर्थ होयजाय, तासूँ प्रवाहहु रह्यो है और कर्म तथा ज्ञानादिकनके प्रकारको जो नियम है ताको नाम मर्यादा है सो पूर्वकांड तथा उत्तरकांडरूप वेद जगत्में विद्यमान है। तासूँ कर्म तथा ज्ञानादिकनके प्रकारको नियम रह्यो है. तासूँ मर्यादाहु रही है,यहाँ ऐसें समझनोंजोभगवानके अनुग्रहप्रयुक्त भक्तिमार्गजितने हैं तिन सबनको अन्तर्भाव पुष्टिमार्गमें है या लोक तथा परलोककी कामना वारे जो सृष्टिकी परम्पराकों नहीं तोडे है सो सब मार्ग प्रवाहमें अन्तर्भूत हैं और जितने मार्ग वेदकी मर्यादा को उल्लंघन नहीं करे हैं तितने सब मार्ग मर्यादामें अन्तर्भूत हैं। इतने जगत्में जितने मार्ग हैं तिन सबनको अन्तर्भाव इन तीनमार्गनमें है ॥ ३ ॥

ऊपर कहे ऐसे तीनों मार्ग विद्यमान हैं ऐसें कहिबेसूँ हु तीनों मार्गनको परस्पर भेद सिद्ध नहीं होयगो क्यों जो "सब फल भगवानसूँ ही होय है" ऐसें व्याससूत्रादिकनसूँ सिद्ध है; तामूँ दूसरे देवको भजन करिवेवारे प्रवाहमार्गी यहू फल प्राप्तिके लिये प्रभूनकोही भजन करे हैं; क्यों जो ब्रह्मवादकी रीतिसूँ चैतन्यमें भेद नहीं है और फल तो प्रभूनसूँही प्राप्त होय है; तासूँ प्रावाहिकहू भक्त है ऐसें कहेनो चाहियें और अनुग्रहप्रयुक्त सब भक्तिमार्ग पुष्टिमार्गमें अन्तर्भूत हैं, ऐसे ऊपर कह्यो है। सो अनुग्रह सबनकों समानहै; तासूँ प्रवाहसूँ पुष्टिमार्ग भिन्न नहीं होयगो और मर्यादा तो वेदोक्त नियमसूँ है तासूँ भिन्नही है इतने दोऊ मार्ग हैं ऐसें कहेनो चाहियें ऐसों कोऊ शंका करे तहाँ कहत हैं—

कश्चिदेव हि भक्तो हि 'योमद्भक्त' इतीरणात् ।
सर्वत्रोत्कर्षकथनात्पुष्टिरस्तीति निश्चयः ॥ ४ ॥

भावार्थ—"सन्तोषवारो, हमेशां प्रभुमें चित्त जानें जोड्यो है, मन जाके स्वाधीन है, प्रभु अपने स्वामी हैं ऐसो जाको दृढ निश्चय है और मेरेहैं जाने मन तथा बुद्धि अर्पणकरी है ऐसो जो मेरो भक्त है सो मोकूँ प्रिय है" ऐसें गीताजीमें कह्यो है। तामें जो मेरो भक्त है ऐसें कहिवेसूँ कोई एक भक्त है ऐसें जान्यो जाय है, जो बहोत भक्त होय तो जो मेरो भक्त है सो मोकूँ प्रिय है ऐसें नहीं कहते, और गीताजीमें "तपस्वी, ज्ञानी तथा कर्ममार्गीयनसूँ योगीकूँ अधिक लिखिकें सब योगिनमेंहू जो अन्तःकरणपूर्वक श्रद्धायुक्त होयकें मोकूँ भजे है सो अत्यन्तयुक्त मान्यो है" ऐसें श्रीकृष्णने कह्यो है, तेसें फिरहु पञ्चदशम अध्यायमें कह्यो है जो "आछी रीतिसूँ मोह रहित जो पुरुष, में पुरुषोत्तम हों ताकूँ जाने है सो सब जानिबेवारो है सो सर्वभाव करिकें मोकूँ भजे हैं" ऐसें हह्योके सो सर्वभावसूँ भजन पुष्टिमार्गमेंही है और ऐसे भजनकों सब स्थलमें उत्तम कह्यो है, तासू पुष्टि है, ऐसो निश्चय है ॥ ४ ॥

सब मार्गमें जूदे जूदे प्रकारसू भजन तो रह्योही है; तासूँ भजनको प्रकार भिन्न - भिन्न है, परन्तु सब भक्तिमार्गहो है ऐसें कोऊ कहे तहाँ कहत हैं—

न सर्वोऽतः प्रवाहाद्धि भिन्नो वेदाच्च भेदतः ।
'यदा यस्येति' वचनान्ना 'हंवेदै' रितीरणात् ॥ ५ ॥

भावार्थ--ऊपरके श्लोक में गीताजीको प्रमाण देकें बहोत भक्त नहींहै परन्तु कोई एक भक्त है ऐसें निरूपण कियो है तासूँ सब भक्त नहीं है; तब जा मार्गमें ये भक्त है सो पुष्टिमार्गहु प्रवाहसूँ भिन्न है, ऐसें अर्थात् सिद्ध होय है। तहाँ ऐसी शङ्का होय जो प्रवाहसूँ पुष्टिमार्ग भिन्न है, ऐसें सिद्ध भयो परन्तु पुष्टिमार्गप्रतिपादक जो-जो वाक्य हैं सो-सो वेद, स्मृति अथवा पुराणादिकनके हैं, सो वेदविधिमें ही आय जाय है, तासूँ मर्यादासूँ पुष्टिमार्ग भिन्न नहीं होय सकेहै। ऐसी शंकाकी निवृत्तिके लिये कहत हैं जो"आत्मासूँ जाकी भावना करी है ऐसे भगवान जाकी ऊपर अनुग्रह करत हैं सो लोकमें तथा वेदमें लागीरही ऐसी मतिकों छोडे है" ऐसें श्रीभागवतमें कह्यो है, तेसें वेदकरिकें, तपकरिकें, दानकरिकें और ज्ञानयज्ञकरिकेंहु मेरो दर्शन नहिं होय सके है और अनन्य भक्तिकरिकें मेरो दर्शन होय सके हैं" ऐसें गीताजीमें कह्यो हैं इतने सब स्थलमें पुष्टिमार्गको प्रतिपादन है तथापि जीवकृत विधिपूर्वक साधननमें पुष्टिमार्गको प्रवेश नहीं है किन्तु भगवानके अनुग्रहरूप है तासूँ वेदके नियमरूप मर्यादासूँहु पुष्टिमार्ग भिन्न है ॥ ५ ॥

जामें भगवद्भक्ति होय नहीं ऐसें धर्म, कर्म तथा ज्ञानकी निन्दा सर्वशास्त्रमें लिखी है, परन्तु भक्ति सहितकी निन्दा नहीं है तासूँ गीताजीमें "निबन्धायासुरी मता" इत्यादिक वाक्यनसूँ प्रावाहिक जीवनकी निन्दा लिखी है। सो भक्ति रहितकी है, भक्तिसहित प्रावाहिक तो दैवीमें गिनेजाय हैं। तासूँ सबमार्ग भक्तिमार्गके अङ्गभूत हैं। ऐसी मूलमेंही शंका करिकें समाधान करत है।

मार्गैक्त्वेऽपि चेदन्त्यौ तनू भक्त्यागमौ मतौ।
न तद्युक्तं सूत्रतो हि भिन्नो युक्त्या हि वैदिकः ॥ ६ ॥

भावार्थ—भक्तिमार्ग एकही है और प्रवाह तथा मर्यादा, भक्ति के अङ्गरूप हैं और भक्तिकी प्राप्तिके साधनरूप हैं ऐसें शास्त्रमें मान्यो है। ऐसें वादी कहे तहाँ कहत हैं जो ऐसें कहेनो युक्त नहीं है, क्यों जो "भक्तिमार्गमें प्राप्त होयवेयोग्य श्रीपुरुषोत्तममें निष्ठावारेकूँ अमृतपनो होय है, ऐसें श्रीभागवतादिकनमें कह्यो है" ऐसें भक्तिसूत्रम लिख्यो है, तेसें जैमिनीयसूत्रमें हु लिख्यो है जो ज्योतिष्टोमादिकयज्ञरूप कर्म, स्वर्गादिकफलनकूँ उत्पन्न करिकें निवृत्त होय है; तासूँ सो कर्म भक्तिके अङ्गभूत होयसके नहीं तेसें ज्ञानमार्गहु मोक्षरूपफलकूँ प्राप्त करे है। भक्तिकूँ प्राप्त नहीं करे है ऐसें व्याससूत्रमें लिख्यो है सो भक्तिके अङ्गभूत नहीं होयसके है; तासूँ वैदिकमार्ग भिन्न है।

और अनुग्रहप्रयुक्त मार्ग है, तेसें दैवसर्गरूप प्रवाहहु मोक्षफल देवेवारो है और आसुरसर्गरूप प्रवाह बन्धकव रिवेवारो है सो भक्तिके अंगरूप होयसके नहीं, तैसें प्रवाहमार्ग भक्तिके अंगरूप होय तो श्रीकृष्ण भगवाननें दैवी-सम्पत्तिको भाव कहिकें आसुरीसम्पत्तिको भाव कह्यो है सो नहीं कहते तैसें गीताजीमें द्वादशाध्यायमें कह्यो है जो अक्षरब्रह्मके उपासकनकों क्लेश अधिक है और पूर्णपुरुषोत्तमके उपासकनको उद्धार प्रभु शीघ्रही करे हैं, तैसें श्रीभागवत दशमस्कन्धमें कह्यो है जो "श्रीयशोदानन्दन श्रीकृष्ण भक्ति-वारेनकों सुखसूँ जसें प्राप्त होय है तैसें देहीनकों तथा आत्मारूप नाववारे ज्ञानीनकों सुखसूँ प्राप्त नहीं होय है" इत्यादिक युक्तीन करिकेंहु पुष्टिमार्गसूँ प्रवाहमार्ग तथा मर्यादामार्ग भिन्न हैं ॥ ६ ॥

ऐसें प्रवाह तथा मर्यादामार्गतें पुष्टिमार्ग भिन्न है सो सूत्र तथा युक्तिसूँ सिद्ध करिकें विनके जीव, देह तथा कृतिके भेद को निरूपण करत हैं—

जीवदेहकृतीनां च भिन्नत्वं नित्यता श्रुतेः ।
यथा तद्वत्पुष्टिमार्गे द्वयोरपि निषेधतः ॥ ७ ॥
प्रमाणभेदाद्भिन्नो हि पुष्टिमार्गो निरूपितः ।

भावार्थ—प्रवाहमागवारे जीव आसुर हैं, विनके देह भगवद्भजनसूँ प्रतिकूल हैं, विनकी क्रिया स्वार्थके लिये दूसरेकों दुःख देवेकी है. और मर्यादामार्गीय जीव दैव हैं, विनके देह वैदिकधर्म तथा भगवत्पूजादिक शास्त्रोक्त-धर्मनमें अनुकूल हैं, विनकी कृति अग्निहोत्रादिक श्रौतस्मार्त्तकर्मकरिवेकी तथा ज्ञानादिकके अनुकूल त्यागादिक करिवेकी है. और पुष्टिमार्गीय जीव हैं सो दैव* हैं तथापि भगवान्के अनुग्रहविशिष्ट हैं, विनके देह भगवत्सेवामें अनुकूल तथा भगवत्स्वरूपमेंही आसक्त, विनकी कृति लौकिकवैदिकफलनकी इच्छा रहित होयकें भगवत्सेवाकरिवेकी तथा साक्षात्पूर्णपुरुषोत्तम सम्बन्धि फल मिलवेको है, ऐसें तीनोनके जीव, देह तथा कृति जेसें भिन्न-भिन्न है तेसें श्रुतिके प्रमाणसूं ब्रह्मवादमें जीवनकी नित्यता है, विशिष्टाद्वैत तथा द्वैत-मार्गमें अनित्यता है और मायावादमें मायिकत्व है, यद्यपि ऐसें अपने-अपने

---

* मर्यादामार्गीय जीवहु दैव हैं परन्तु विधिके आधीन हैं और पुष्टिमार्गीय जीव हैं सो भगवानके अनुग्रहके आधीन हैं ।

मनके अनुसार सब जीवनकूँ सब समानही माने हैं तथापि "भगवानको कीर्तनकरिवेवारे जीव ध्रुव (नित्य) हैं" ऐसें श्रुतिमें लिख्यो है और जेसें भक्तिवारेनकों भगवान् सुखसूँ प्राप्त होय हैं, तेसें और देहीनकों तथा ज्ञानीनकों प्राप्त नहीं होय है ऐसें श्रीभागवतमें लिख्यो है, तासूँ प्रवाही तथा ज्ञानीनको निषेध करिकें जिनकों सुखसूँ प्राप्त होय है ऐसें लिख्यो है सो अनुग्रह विशिष्ट पुष्टिमार्गीय जीव भिन्न हैं, ऐसो सिद्ध होय है, ऐसें प्रमाणके भेदसूँ पुष्टिमार्ग भिन्न निरूपित कियो है। वाहि रीतिसूँ प्रवाह और मर्यादाकोहु भेद समझनो ॥ ७ ॥

अब प्रमाणबल करिकें तथा साधनके भेदकरिकें तीनो मार्गनको भेद सिद्धकरिवेके लिये ऊपर बताये ऐसे जीवादिकनके भेदयुक्त अविच्छिन्नसर्गको जो भेद है ता करिकें पुष्टिको भेद सिद्ध करिवेके लिये सामान्यसूँ सर्गके भेदको निरूपण करत हैं--

सर्गभेदं प्रवक्ष्यामि स्वरूपांगक्रियायुतम् ॥ ८ ॥
इच्छामात्रेण मनसा प्रवाहं सृष्टवान् हरिः ।
वचसा वेदमार्गं हि पुष्टिं कायेन निश्चयः ॥ ९ ॥

भावार्थ--स्वरूप, अंग और क्रियायुक्त सृष्टिको भेद कहूँगो। इतने जीव, देह और कृतिकरिकें युक्त सर्गको भेद कहूँगो। जिनको सर्वदा एकीभाव है ऐसें हरि जो भगवान् हैं सो इच्छामात्रसूँ मनकरिकें प्रवाहमार्गकूँ, वचनकरिकें वेदमार्ग (मर्यादामार्गकूँ) और कायाकरिकें पुष्टिमार्गकूँ सृजतभये; इतनें एकादश स्कन्धमें वैकारिक अहङ्कारके कार्यरूप मनसूँ सृष्टि भई है ऐसें लिख्यो है। तेसें वेदमेंहु मनसूँ सृष्टि भई है, ऐसें लिख्यो है सो प्रवाहसृष्टि है, तामें मायाहु संग कारणभूत है। सो आसुररूपमायिक सृष्टि है, वा सृष्टिके अभिप्रायसूँ ही जगत् मायिक है, ऐसें कितनेक माने हैं, वचनसूँ मर्यादासृष्टि भई है सो मांडूक्यउपनिषद्में लिख्यो है जो ऊंकारसूँ ही सबनकी उत्पत्ति है, भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान जो कछु है सो सब ऊंकारकोही उपाख्यान है", तेसें एकादशस्कन्धमेंहु परा, पश्यन्ती मध्यमा और वैखरी ये चारोंप्रकारकी वाणीकी उत्पत्ति लिखिकें वासूँहि जगतकी उत्पत्ति लिखी है, सो प्रभुकी वाणी वेदरूप है और वेद है सो साक्षात् नारायण है तासूँ वेदसूँ सृष्टि भई है, सो मर्यादामार्गकी सृष्टि है और पुरुषविधब्राह्मणकी श्रुतिमें 'एक आत्माके दो विभाग किये, तामेसूँ पति और पत्नी

भये[1] ऐसें लिख्यो है, तासूँ आनन्दात्मक स्वरूपसूँ ही अनेकप्रकारके भये सो कायासूँ सृष्टि भई है, सो पुष्टिसृष्टि है, इतने प्रभूनकों वीररसको अनुभव करिवेकी इच्छा भई तब अपनो अंश होय सो अपनी विरुद्ध होय नहीं तासूँ मायमेंसूँ आसुरजीव उत्पन्न किये, सो प्रवाहसृष्टि भई, तथा जीवनके दुःख की निवृत्तिके लिये वेदमार्ग प्रकट कियो तामें प्रीतिवारे जीव अक्षरब्रह्मसूँ भये सो मर्यादासृष्टि भई, और जीवनकों भजनानन्दको दानकरिवेके लिये अपने आनन्दात्मकस्वरूपसूँ जीव उत्पन्न किये सो पुष्टिसृष्टि भई; अर्थात् प्रावाहिकसृष्टि प्रभुके मनतें उत्पन्न भई है[2] तथा मर्यादासृष्टि प्रभुके मनःपूर्वक वचनतें अक्षरब्रह्मसूँ भई है और पुष्टिसृति प्रभुके मन तथा वचनपूर्वक स्वरूपसूँ भई है। ऐसें तीनोप्रकारकी सृष्टि प्रभूनने करी है ॥८॥९॥

प्रावाहिकसृष्टिको उदादानकारण माया है तथा मर्यादासृष्टिको उपादानकारण अक्षरब्रह्म है और पुष्टिसृष्टिको उपादानकारण प्रभुको स्वरूप है, ऐसें तीनों सृष्टिको उपादानकारण भिन्न-भिन्न है तथापि जैसें ताम्र, रूप्य और सुवर्णरूप भिन्न-भिन्न उपादानकारणसूँ तीन घट भये होय परन्तु जलल्यायवेरूप कार्य तो तीनो घटको समान होय है और व्रीहि तथा यवके पुरोडाशसूँ यज्ञ तथा फल समानही होय है तेसें तीनोसृष्टिकों फल समान ही होयगो,ऐसी कोउ शङ्का करे तहाँ कहत हैं।

मूलेच्छातः फलं लोके वेदोक्तं वैदिकेऽपि च।
कायेन तु फलं पुष्टौ भिन्नेच्छातोऽपि नैकधा ॥१०॥

अविच्छिन्न सृष्टि चलीजाय ऐसी मूलइच्छासूँ प्रावाहिक जीवनकों लौकिक फल होय है तामें सहजआसुरजीव हैं सो जन्ममरण लेतेलेतें छेवट अन्धतममें जाय हैं और आसुरावेशी हैं सो कामनामें आसक्त होयकें धूम-मार्गमें यज्ञादिक करिकें आवागमन करत-करत आसुरावेश मिटजाय तब मुक्त होय हैं, तथा मर्यादामार्गीय जीवनकों वेदमें कह्यो है सो फल मिले है। तामें निष्काम यज्ञादिक करिवेवारेनकों आत्मसुख मिले है और सकाम करिवेवारेनकों स्वर्गादिकलोकको सुख मिले है और पुष्टिमार्गीयजीवनकों

१- सहज आसुर तथा आसुरावेशी ऐसें दोय प्रकारके प्रावाहिक जीव हैं तिनमें आसुरावेशी मुक्त होय हैं और सहज आसुर हैं सो अन्धतममें जाय हैं।

२- संकर्षण हैं सो वेदरूप हैं और शब्दब्रह्म तथा अक्षरब्रह्म संकर्षणकोही स्वरूप है तासूँ अक्षरब्रह्मसूँसृष्टि है, सो वेदसूँही सृष्टि भई है ऐसें समझनो।

स्वर्गादिकलोकोंका सुख मिलेहै और पुष्टिमार्गीयजीवनकों प्रभूनकेस्वरूपकरिकें फल मिले है। इतने वेणुगीतमें श्रुतिरूपाश्रीगोपीजननें इन्द्रियवारेनकों भजनानन्दरूप जो उत्तम फल कह्यो है सो फल मिले है ऐसें भिन्न-भिन्न इच्छा है तथा फलकोहू भेद है तासूँ एक प्रकारकी सृष्टि तथा एकप्रकारके मार्ग नहीं है, मूलमें "नैकता" ऐसोहू पाठ है ताको अर्थ ऐसो है जो सर्ग तथा मार्गनकी एकता नहीं है ॥ १० ॥

तीनो मार्गनके जीवनकों चिद्रूपपनो समान है तथापि तीनोनके जूदे-जूदे धर्म है तासूँ फल में भेद है ऐसें सिद्ध करनो है तामें प्रावाहिक जीवनको धर्म अत्यन्त भिन्न है तासूँ प्रथम प्रावाहिकनको निरूपण करत हैं—

"तानहं द्विषतो" वाक्यादिभिन्ना जीवाः प्रवाहिणः ।
अत एवेतरौ भिन्नौ सांतौ मोक्षप्रवेशतः ॥११॥

भावार्थ—गीताजीमें कह्यो है जो "द्वेष करिवेवारे क्रूर वे प्रवाही हैं; मनुष्यनमें अधम, अशुभ तिन प्रवाहीनकों में ससारमें सर्वदा आसुरी योनिमें डारूँ हूँ" एसें कह्यो है तासूँ प्रावाहिक जीव मर्यादा मार्गीय तथा पुष्टिमार्गीय जीवनसूँ भिन्न हैं, इतनें भगवानको द्वेष करनो येही जिनको धर्म है सो आसुरजीव हैं तिनकों अन्तमें अन्धतममें प्रवेश है, एक मूलरूप तथा अवतारूपको द्वेष, दूसरो विभूति प्रभृतीनको द्वेष और तीसरो जगद् रूपको द्वेष एसें तीन प्रकारको भगवानक द्वेष है, तामें मूलरूप तथा अवतारूपको द्वेष करिवेवारेनकों बहोत करिकें भगवानही मारे हैं। तासूँ मुक्त होय हैं, तथा विभूत्यादिकके द्वेष करिवेवारे द्वेषको त्याग करे, तब मुक्त होय, ये दोय आसुरावेशी हैं, और जगद्रूपको द्वेष करिवेवारे सहजआसुर हैं सो कोउ दिन मुक्त न होय विनको अन्धतममें ही प्रवेश होय है क्यों जो जगत्के द्वेष करिवेमें भगवद्भक्तनकोहु द्वेष होय है; तासूँही दशमस्कन्धमें अक्रूरजीने धृतराष्ट्रकूँ कह्यो है जो "अधर्म करिकें जाको पोषण करे है सो पोषण करिवेवारेकों छोडत हैं" ताके श्रीसुबोधिनीजीमें निर्णय कियो है जो प्राण, स्त्री, पुत्रादिकको अधर्मसूँ पोषण कियो होय सो सब बाकों छोड देत हैं और केवल जीव अन्धतममें जाय है ऐसे द्वेष करिवेवारे प्रवाही जीव हैं, तासूँहो मर्यादामार्गीय तथा पुष्टिमार्गीय जीव हैं सो भिन्न हैं और मर्यादामार्गीय जीवनकों अक्षरब्रह्म प्राप्तिरूप मोक्ष होय है तथा पुष्टिमार्गीय जीवनकों पुरुषोत्तममें प्रवेश होय है। तासूँ ये अन्तसहित हैं; इतने विन दोऊनको जीवभाव निवृत्त होय है ॥ ११ ॥

ऐसें तीनोमार्गनके लक्षण तथा फलके भेदको निरूपण कियो ता करिकें जो सिद्ध भयो सो कहत हैं--

तस्माज्जीवाः पुष्टिमार्गे भिन्ना एव न संशयः ।
भगवद्रूपसेवार्थं तत्सृष्टिर्नान्यथा भवेत् ॥१२॥

भावार्थ—तासूँ पुष्टिमार्गीय जीव हैं सो दूसरे मार्गनके जीवसूँ भिन्न हैं वापें संशय नहीं है इतने वाराहपुराणमें कह्यो है जो "ब्रह्माजीकी सृष्टिसूँ जूदी ये सृष्टि कोउ अन्यही है" ऐसो वाक्य है तासूँ पुष्टिमार्गीय जीव सबनसूँ भिन्नही हैं, जो पुष्टिमार्गीय जीव भिन्न न होय तो भगवद्रूपकी सेवाके लिये पुष्टिमार्गीय जीवनकी सृष्टिहु न होय इतने "प्रभु अकेले आत्मरमणमें ही हते तब बाहिर कोऊ नहीं हतो तासूँ रमण नहीं करत भये। क्यों जो अकेले हते तब रमण नहीं करत हते सो (रमणकरिवेके लिये) दूसरेकी इच्छा करत भये" ऐसें श्रुतिमें कह्यो है; तासूँ इच्छा करिकें सब जगद्रूप भये हैं; सो न होते; अर्थात् नाम सेवा तो मर्यादासृष्टिहु करत है परन्तु रूप-सेवा वासूँ बराबर नहीं होय सके तासूँ रूपसेवाके लिये ही पुष्टिसृष्टि है सो प्रवाह और मर्यादासूँ भिन्न न होय तो पुष्टिसृष्टि करिवेको जो प्रयोजन हतो सो सिद्ध न भयो तब पुष्टिसृष्टिहू न होय तब रमण करिवेके लिये प्रभू जगद्रूप भयें हैं ऐसें श्रुतिमें कह्यो है, सो व्यर्थ होय; तासूँ प्रभूनके रमणार्थ या पुष्टिसृष्टि है सो सबनसूँ भिन्न है ॥१२॥

ऐसें सृष्टिके भेदसूँ सबनके साधन भिन्न-भिन्न हैं। तासूँ एक दूसरेके साधन मिल नहीं जाय हैं तोहु लीलासृष्टि में उत्पन्न भये ऐसे भक्तनके स्वरूप देह तथा क्रियामें कछु तारतम्य नहीं दीखवेमें आवत है; तब ऊपर जो सृष्टि प्रभृतीन को भेद सिद्ध कियो है सो व्यर्थ है ऐही काहुकों शंका होय ताकी निवृत्तिके लिये तारतम्य कहत हैं।

स्वरूपेणावतारेण लिंगेन च गणेन च ।
तारतम्यं न स्वरूपे देहे वा तत्क्रियासु वा ॥१३॥
तथाऽपि यावता कार्यं तावत्तस्य करोति हि ।

भावार्थ—भक्तनके स्वरूप, देह अथवा क्रियानमें स्वरूप करिकें, अवतार करिकें, चिह्न करिकें और गुणकरिकें भगवानसूँ यद्यपि तारतम्य नहीं है तथापि जितने तारतम्यसूँ रमणात्मक कार्य सिद्ध होय तितनो भक्तनमें तारतम्य भगवान् करें हैं, इतनें भगवान् जैसें आनन्दरूप रसघन हैं

हैं तेसें भक्तहु हैं, जेसें अलौकिक रीतिसूँ शुद्धसत्वमेंही भगवानको अवतार होय हैं तेसेंही भक्तनको अवतार है, जैसें ध्वजा, वज्र, यव, अंकुश, कमल-प्रभृति भगवानके चिह्न हैं तेसेंही भक्तनके हैं, जैसें भगवानके ऐश्वर्यादिक और सौकुमार्यादिक गुण हैं तेसेंही भक्तनके हैं; तासूँ इन सबन धर्म करिकें भगवानके स्वरूपसूँ भक्तनके स्वरूपमें तथा भगवानके देहसूँ भक्तनके देहमें तथा भगवानकी क्रियासूँ भक्तनकी क्रियामें तारतम्य नहीं हैं, अर्थात् भगवानके समानही हैं तथापि जितने तारतम्य करिकें सब प्रकारकी लीला सिद्ध होय तितनो तारतम्य भगवान् भक्तनमें करत हैं ॥ १३ ॥

एसें स्वभावके भेद प्रभृति सब सन्देहनकूँ दूरिकरिकें कितनेकनकों भगवाननें कहे भये भक्तिमार्गमें प्रवृत्ति होय हैं, कितनेंकनकों भगवाननें कहे भये ज्ञानमार्गमें प्रवृत्ति होय है और कितनेकनकों भगवाननें कहे भये कर्म-मार्गमें प्रवृत्ति तथा आसक्ति होय है। तामें हु कितनेकनकों शास्त्रमें करिवेको लिख्यो है तासूँ यामें अवश्य प्रवृत्ति करनी चहियें ऐसे शास्त्र विधिके बलसूँ प्रवृत्ति होय है और कितनेकनकों स्नेहसों प्रवृत्ति होय है तेसें कितनेंकनके स्वभावसूँ विरुद्ध देहादिक होय हैं और कितनेंकनकूँ स्वभावके अनुकूल देहादिक होय हैं, सो क्यों हैं ? इत्यादिक सन्देहनकूँ मिटायवेके लिये पुष्टि-जीवनको विभाग कहत हैं—

ते हि द्विधा शुद्धमिश्रभेदान्मिश्रास्त्रिधा पुनः ॥१४॥
प्रवाहादिविभेदेन भगवत्कार्यसिद्धये ।
पुष्ट्या विमिश्राः सर्वज्ञाः प्रवाहेण क्रियारताः ॥१५॥
मर्यादया गुणज्ञास्ते शुद्धाः प्रेम्णाऽतिदुर्लभाः ।

भावार्थ शुद्धपुष्ट और मिश्रपुष्ट ऐसे भेदसूँ वे पुष्टजीव दोयप्रकारके हैं तामें फिर भगवानके कार्यकी सिद्धिके लिये प्रवाहादिकनके भेदकरिकें मिश्र-पुष्ट तीन प्रकारके हैं तामें पुष्टिकरकें मिश्र जो पुष्टजीव हैं सो सर्वज्ञ हैं अर्थात् भगवानके अभिप्रायकूँ जानिवेवारे हैं तथा प्रवाह करिकें मिश्र पुष्टजीव हैं सो क्रियामें प्रीतिवारे हैं और मर्यादाकरिकें मिश्र जो पुष्टजीव हैं सो भगवान के गुणकूँ जानिवेवारे हैं अर्थात् भगवानके गुणनमेंही आसक्त रहे हैं, ऐसें मिश्रपुष्टके तीन भेद हैं। शुद्धपुष्ट हैं सो केवल प्रेम करिकें हैं; अर्थात् शुद्धपुष्ट जीवनकों भगवानमें अत्यन्त प्रेम होय है ऐसे भक्त अतिदुर्लभ हैं, इतने मिश्र-पुष्ट तथा शुद्धपुष्ट ऐसें दो प्रकारके पुष्टजीव हैं। तामें मिश्रपुष्टके मुख्य तीन

भेद हैं अर्थात् जिनके ऊपर अनुग्रह है ऐसे जीव ऊपर दूसरो अनुग्रह मिले तब ये पुष्टिमिश्र पुष्ट[1]जीव कहे जाय हैं, तथा अनुग्रह युक्त जो जीव होंय सो शास्त्रोक्तज्ञानादिक मर्यादामें प्रीतिवारे होंय सो मर्यादामिश्र पुष्ट कहे जाय हैं और प्रवाह करिकें मिश्रित जो पुष्टजीव हैं सो क्रियामेंही प्रीतिवारे होय हैं अर्थात् पञ्चरात्रादिक तन्त्रनमें जो पूजाको प्रवाह कह्यो है वाही प्रकारसूँ पूजादिक क्रिया करिवेमें प्रीतिवारे जो जीव हैं सो प्रवाहमिश्र पुष्ट कहे जाय हैं, इतनें प्रथमसूँसामान्यरीतिसूँ जिन जीवन[2] के ऊपर अनुग्रह होय है सो फिर विशेषानुग्रहकों प्राप्त होय हैं सो पुष्टिमिश्र पुष्टिजीव जाननें सो भगवानके अभिप्रायतांई जानिवेवारे होय हैं और पुष्टिजीव मर्यादामिश्रित होय सो भगवानके धर्म जानिवेवारे होय हैं तथा पुष्टिजीव प्रवाहमिश्रित होंय सो भगवद्धर्मकूँ कछूक जानिकें तीर्थाटन परायण होंय हैं, प्रवाहीजीव पुष्टिमिश्रित हैं, सो भगवानके भजनके अनुकूल क्रियाकूँ अनुसरिवेवारे होय हैं तथा प्रवाहीजीब मर्यादामिश्रित हैं, सो कर्मकरिवेवारे होय हैं और प्रवाहीजीव प्रवाहमिश्रित हैं, सो केवल लौकिक क्रियामें प्रीतिवारे होय हैं; वेही आसुरीजीव कहे जाय हैं और मर्यादामार्गीय जीव पुष्टिमिश्रित हैं, सो भगवानके माहात्म्यकूँ जानिकें भगवानकी प्रीतिके लिये कर्मकरिवेवारे होय हैं तथा मर्यादामार्गीय जीव मर्यादामिश्रित हैं सो स्वर्गादिक फलके लिये कर्मकरिवेवारे होय हैं और मर्यादामार्गीय जीव प्रवाहमिश्रित हैं, सो लौकिक फलके लिये कर्मकरिवेवारे होय है ऐसें मिश्रजीवके नव भेद हैं, और अत्यन्त प्रेम करिकें भगवान शिवाय अन्य स्फूर्ति रहित हैं सो शुद्धपुष्ट जीव है ऐसे भक्त अतिदुर्लभ हैं, भगवानके रमणको पात्र यह जगत् है तासूँ रमणरूप भगवानको कार्य सिद्ध होयवेके लिये ऐसे जूदे-जूदे प्रकार के जीवनकी सृष्टि है, क्यों जो विचित्रताविना रमण सिद्ध होय नहीं तासूँ विचित्र जीवनकी सृष्टि करी है ॥१४॥१५॥

ऐसें जीवनमें जूदे-जूदे भेद हैं तासूँ विनके देह तथा क्रियादिकनमें हू जूदो-जूदो भेद दीखवेमें आवे है तिनमें पुष्टिजीवनकों फल कायाकरिकें है ऐसें प्रथम निरूपण कियो है तामें कितनेक भक्तनकूँ भगवानकी बाल्यावस्थाको सुख मिले है, कितनेंकनकूँ पौगण्डावस्थाको सुख मिले है और

१- पुष्टिमिश्र पुष्टिजीवनकों तो भगवानको अनुग्रह मिले, ऐसे ही कार्यनमें प्रवृत्ति होय हैं।

२- इहाँसूँ श्रीकल्याणरायजी की टीकाके अनुसार जीवनके भेद लिखे हैं।

कितनेंकनकों किशोरादिक अवस्थाको सुख मिले है ऐसें शुद्धपुष्टनकों हू जूदे-जूदे प्रकारको फल दीखवेमें आवे है, सो शुद्धपुष्टि भक्तनकों जूदो-जूदो फल क्यों होय ? ऐसी शङ्का मिटायवेके लिये कहत हैं।

एवं सर्गस्तु तेषां हि फलं त्वत्र निरूप्यते ॥१६॥
भगवानेन हि फलं स यथाविर्भवेद्भुवि ।
गुणस्वरूपभेदेन तथा तेषां फलं भवेत् ॥१७॥

भावार्थ--ऐसें जीवनको सर्ग जूदो-जूदो है तामें पुष्टिमार्गीयके जीवनके फलको निरूपण करत हैं जो या पुष्टिमार्गीयमें गुण और स्वरूपके भेदकरिकें भगवान् जेसें प्रकट होय तेसें पुष्ट जीवनकों फल होय, इतने भगवानके स्वरूपहीमें आसक्तिवारे जो पुष्टजीव हैं तिनके हृदयमें अथवा गृहमें अथवा वृन्दावनादिक स्थाननमें इनकूँ अपने स्वरूपको आनन्द देवेके लिये बाल्य-कैशोरादिक अवस्थायुक्त स्वरूपकरिकें भगवान् जेसे प्रकट होय है तेसो सुख तिनकों प्राप्त होय है, परन्तु सब पुष्टिभक्तनकूँ भगवानके स्वरूपात्मक ही फल मिले है ॥१६॥१७॥

एसें पुष्टिमार्गको फल अन्य मार्गके फलमें नहिं मिले है एसें सिद्ध कियो; अब मिश्रपुष्ट जीवनमें कोउ स्थलमें शाप भयो होय ऐसो दीखवेमें आवे है सो गर्भस्तुति में कह्यो है जो "ज्ञानमार्गीय जीव जेसें उत्तमपदकूँ चढ़िकें फिर वहाँसूँ गिरत हैं तेसें आपके भक्त कबहू नहीं गिरत हैं" ऐसें लिख्यो है तब पुष्टिमार्गीय जीवनकों शाप होयकें गिरनों योग्य नहीं हैं तासूँ क्यों गिरत हैं ? ऐसी शङ्का होय, तहाँ कहत हैं--

आसक्तौ भगवानेव शापं दापयति क्वचित् ।
अहङ्कारेऽथवा लोके तन्मार्गस्थापनाय हि ॥१८॥

भावार्थ--मिश्र पुष्टजीवनकों अन्यमें आसक्ति होय अथवा अहङ्कार होय तो कोउ समय भगवानही शाप दिवावें हैं तेसें कोउ समय लोकमें मर्यादाको स्थापन करिवेके लिये हू भगवान् शाप दिवावें हैं, इतनें जेसें नलकूबर तथा मणिग्रीवकूँ अप्सरामें आसक्ति भई तब नारदद्वारा शाप दिवायो तेसें चित्रकेतुकूँ तथा परीक्षितकूँ अहङ्कार भयो तब त्रितकेतुकूँ पार्वती द्वारा तथा परीक्षितकूँ शमीकके पुत्र शृङ्गीद्वारा शाप दिवायो और इन्द्र प्रद्युम्न राजाने अगस्त्यमुनि आये तब अभ्युत्थानादिक कियो नहीं तब

लोकमें मर्यादाको स्थापन करवेके लिए अगस्त्य द्वारा शाप दिवायो ऐसें जहाँ मिश्रपुष्टजोवनकों शापादिक होय हैं तहाँ भगवानही तिनको दण्ड दिवायकें फिर पुष्टिमार्गहीमें स्थापन करे हैं अथवा लोक में मर्यादाको अतिक्रम न होय तासूँ हू शापदिवावे हैं ॥१८॥

मिश्रपुष्टनकों भगवानही शाप दिवावे हैं ऐसें क्यों जानियें ? ऐसी शङ्का होय, तहाँ कहत हैं--

न ते पाषण्डतां यांति नच रोगाद्युपद्रवाः ।
महानुभावाः प्रायेण शास्त्रं शुद्धत्वहेतवे ॥१९॥

भावार्थ--जिनकों शाप होय सो भक्त पाषण्डी नहीं होय हैं किन्तु अत्यन्त भक्त होय हैं तासूँही भगवाननेही दण्ड कियो है ऐसें जाननों तेसें विनकूँ रोगादिक उपद्रव नहीं होय हैं बहुतकरिकें महानुभाव होय हैं तासूँ अन्यके लिये भगवान् भक्तनकों दुःख देय हैं ये दोष हू नहीं है तथापि केवल अल्पकारणमें इतनो दण्ड देनो, सो प्रभु कृपालु हैं तासूँ विनकूँ योग्य नहीं हैं ऐसें कोऊ कहैं तहाँकहत हैजो भगवान् शाप दिवावे हैं सो मिश्र-पुष्टकों शुद्धपुष्ट करिवेके लिये दिवावे हैं, जो ऐसें भगवान् शाप दिवावें नहीं तो मिश्रपनेकी निवृत्ति होय नहीं तब शुद्धपुष्टपनो होय नहीं तासूँ शुद्धपुष्टपनो करवेके लिये शाप दिवावे हैं तामें विनकों फल देवेकी कृपाही कारण हैं ॥१९॥

मिश्रपुष्ट भक्तनमें जिनकों शुद्ध करिवेकी इच्छा है विनकों उत्तम कहने चहियें तब ऐसेकूँ ऐसो भाव क्यों भयो ? ऐसें कोऊ कहे, तहाँ कहत हैं--

भगवत्तारतम्येन तारतम्यं भजन्ति हि ।

भावार्थ--भगवान् अनन्तरूप हैं तासूँ जा भगवत्स्वरूपमें भक्तिवारे मिश्रपुष्ट होंय वा स्वरूपमें जितनों तारतम्य होय तितनो तारतम्य भुगतें इतनें व्यूहमें, कलामें, आवेशमें और पूर्णमें जिनमें विनकी भक्ति होय तिन सबनके तारतम्यसूँ मिश्रपुष्ट भक्तकोहू तारतम्य होय है, तासूँही सकर्षणके उपासक चित्रकेतु पार्वतीके शापसूँ वृत्रासुर होयकें इन्द्रसामें युद्ध करते हते तब वाने संकर्षणके चरणमेंही मनको निवेश कियो हतो, और इन्द्रद्युम्नराजा निर्गुणस्वरूपके उपासक हते, सो अगस्त्यमुनिके शापसूँ गजेन्द्र भये, तबहू स्तुतिमें निर्गुणकोहु वर्णन कियो है, तेसें भगवानको स्वरूप तथा विनके

भजनके प्रकारके तारतम्यसूँ भक्तनकों फलमेंहुँ तारतम्य होय है; इतनें जेसी भक्ति होय तेसो भगवत्स्वरूपको आविर्भाव होय हैं और वाहीप्रमाण फल होय है।

पुष्टभक्तनकों केवल भगवत्परायणपनोही जब है तब विनकों श्रौत-स्मार्तकर्माचरण कर्तव्य है, किंवा नहीं ? तेसें जो श्रोत्रस्मार्तकर्म करत हैं सो क्यों करत हैं ? ऐसी शंकाकी निवृत्तिके लिये अब जो पुष्टजीव हैं विनको स्वरूप जानवेमें आवे तेसें विनको लक्षण कहत हैं; तासूँ वाहीप्रसङ्गसों सबकोहु लक्षण कहत हैं--

वैदिकत्वं लौकिकत्वं कापट्याच्चेषु नान्यथा ॥२०॥
वैष्णवत्वं हि सहजं ततोऽन्यत्र विपर्ययः ।

भावार्थ--पुष्टभक्तनमें बैदिकक्रिया और लौकिकक्रिया है सो कपट-पनेसूँ है ,आसक्तिपनेसूँ नहीं है और वैष्णवपनो है सो विनको स्वभावही है सो गीताजीमें कह्यो है जो "कर्ममें आसक्तिवारे अज्ञानिजन जेसें कर्म करें हैं तेसें कर्म में आसक्त न होय सोहु लोककों शिक्षा करिवेके लिये करे" सो अपुनो भक्तपनो गुप्त राखिवेके लिए वैदिककर्म तथा लौकिककर्म करिकें अपनो वैदिकपनो तथा लौकिकपनो जतावे,तेसें ऐसे भक्तनकूँ वैदिकलौकिक-कर्म करवेको कछू प्रयोजन नहीं हैं, तथापि इनकूँ देखिकें दूसरे लोकहू वैदिक तथा लौकिकमर्यादामें रहे तासू करनों परन्तु आसक्तिसूँ करनो नहीं येही कपटपनेसूँ करनों ऐसें कह्यो है ताको अभिप्राय है तथा मर्यादा-मार्गीयजीवनकों वैष्णवपनो तथा लौकिकपनो कपटसूँही है और वैदिकपनो (मर्यादा मार्गीयपनो) स्वाभाविक है, और प्रवाही जीवनकूँ वैष्णवपनो तथा वैदिकपनो कपटपनेसूँ है और लौकिकपनो स्वाभाविक है ॥२०॥

पुष्टिप्रवाह और मर्यादा ऐसें तीनप्रकारके जब जीव हैं तब कितनेंक, सबनमें समान दृष्टिवारे और सब धर्मनमें अभिनिवेशवारे क्यों दीखवेमें आवत हैं ? ऐसें जानवेकी इच्छा होय तहाँ कहत हैं--

सम्बन्धिनस्तु ये जीवाः प्रवाहस्थास्तथाऽपरे ॥२१॥
चर्षणीशब्दवाच्यास्ते सर्वे सर्ववर्त्मसु ।
क्षणात्सर्वत्वमायांति रुचिस्तेषां न कुत्रचित् ॥२२॥
तेषां क्रियानुसारेण सर्वत्र सकलं फलं ।

भावार्थ—पुष्टि, प्रवाह और मर्यादा ये तीनो मार्गनके सम्बन्धवारे जो जीव हैं और इनसूँहु हीन दूसरे प्रवाही जीव हैं सो जीव सर्वमार्गमें क्षण-क्षणमें आय जाय हैं, परन्तु कोऊ मार्गमें विनकी रुचि होय नहीं है, विनकों जेसी क्रिया करे ता प्रमाण सबमार्गनमें किंचित् फल होय है; इतने पंचरात्रमें मध्यम और अधम जीव कहैं हैं सो ये चर्षणीजीव कहे जाँय हैं उनकी गति यमके आधीन है; तिनमें तीनोमार्गके सम्बन्धवारे जो जीव हैं सो जन्ममरणहि लियोकरत हैं और प्रवाहीमें तिनकी गति नरकमें है ॥२१॥२२॥

ऐसें प्रसङ्गसूँ आई भई सब हकीकत कहिकें प्रवाहको भेद क्रमसूँ प्राप्त भयो है ताको निरूपण करत हैं—

प्रवाहस्थान् प्रवक्ष्यामि स्वरूपांगक्रियायुतान् ॥२३॥
जीवास्ते ह्यासुरास्सर्वे प्रवृत्तिं चेति वर्णिताः ।
ते च द्विधा प्रकीर्त्यंते ह्यज्ञदुर्ज्ञविभेदतः ॥२४॥
दुर्ज्ञास्ते भगवत्प्रोक्ता ह्यज्ञास्ताननु ये पुनः ।

भावार्थ—स्वरूप, देह और क्रिया करकें युक्त, प्रवाही जीवनकी हकीकत लिखूँ हूँ, जो भगवाननें गीताजीके षोडशाध्यायमें "प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः" (आसुरो जीव प्रवृत्ति तथा निवृत्तिकूँ नहीं जाने हैं) इहाँसूँ आरम्भकरिकें "ततो यांत्यधमां गतिम्" (ता पीछे अधमगतिकूँ प्राप्त होय हैं), यहाँ-तांई निरूपण किये हैं सो तब आसुरीजीव हैं तिनमें सब लक्षण यद्यपि सबनमें न होय तथापि जितने लक्षण लिखे हैं, तिनमेंसूँ जो कछू लक्षणवारे जीव होय सो सब आसुरीजीव जाननें; सो जीव अज्ञ और दुर्ज्ञ ऐसे भेदसूँ दो प्रकारके हैं; तामें गीताजीमें भगवानने जिनको स्वरूप लिख्यो है सो दुर्ज्ञ जाननें और विनकूँ अनुसरिवेवारे जो जीव हैं सो अज्ञ जानने; सो अज्ञजीवनकूँ दुर्ज्ञनके संगसूँ भगवान् तथा भक्तनमें द्वेष भयो होय सो द्वेष जब छूटे, तब अपनो प्रकृतिमें आय जाय हैं, विनको भगवानके संग द्वेष होय और भगवान् मारे तो मुक्त होंय तासूँ भगवानने मारे, ऐसे जो-जो असुर मुक्त भये हैं सो सब अज्ञ जानने ॥२३-२४॥

ऊपरके निरूपणमें प्रावाहिक सर्ग आसुर और हीन कह्यो है, तब ऐसी आसुरसृष्टिमें तो आसुरजीवकी ही उत्पत्ति होनी चाहियें, परन्तु भगवानके अनुग्रहयोग्य जीवनकी उत्पत्ति नहीं होनी चहिये और बलीराजा

तथा प्रह्लादादिककी उत्पत्ति आसुरीमें दीखवेमें आवत है और विनके ऊपर भगवानको अनुग्रहहु दीखवेमें आवत है सो कैसें ? ऐसें जानवेकी कोऊकूँ इच्छा होय तहाँ कहत हैं—

प्रबाहेऽपि समागत्य पुष्टिस्थस्तैर्न युज्यते ॥२५॥
सोऽपि तैस्तत्कुले जातः कर्मणा जायते यतः ॥२६॥

॥ इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितः पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदः समाप्तः ॥

भावार्थ—**जो** पुष्टिमार्गीय जीव हैं सो भगवानको अथवा भक्तको अपराध करें तो आसुरकुलमें विनको जन्म होय है तथापि प्रवाहमें आयकेहु आसुरधर्ममें आसक्त नहीं होय हैं; इतने पुष्टिमार्गीय जीव प्रवाह में आवे हैं तासूँ प्रवाहीनमें आगमन भयेसूँ आसुरधर्म करिकें युक्त नहीं होय हैं और भगवदपराध अथवा भक्तनको अपराध कियो होय तो ऐसे कर्मकरिके आसुर-कुलमें जन्म होय है परन्तु आसुरधर्म विनमे नहीं आवे है और जन्म होनों सो तो कर्मसूँ होय है; येही निबन्धमें भक्ति प्रकरणमें कह्यो है जो "या भक्तिमार्गमेंहुँ वेदकी निन्दा करें अथवा अधर्म करें तो नरकमें तो पात न होय परन्तु हीन योनिमें जन्म होय" ॥२५-२६॥

इहाँसू अगाडी प्रवाहमार्गीय जीवनके प्रयोजन, स्वरूप, साधन, अङ्ग, क्रिया और फल तथा मर्यादामार्गीय जीवनके प्रयोजन, स्वरूप, अङ्ग, क्रिया, साधन और फल, जितने ग्रन्थसूँ जानवेमें आवे तितनों ग्रन्थ होनों चहिये परन्तु आधुनिक जीवनके प्रारब्धवशसूँ इहाँसूँ अगाडी ग्रन्थ मिले नहीं है यासू जितनो ग्रन्थ मिले है तितनेको व्याख्यान लिख्यो है ॥

॥ इति श्रीमद्गोस्वामि श्रीनृसिंहलालजी महाराज विरचित पुष्टिप्रवाह मर्यादाकी टीका ब्रजभाषामें सम्पूर्ण भई ॥

—०—

* श्रीकृष्णाय नमः *

* श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः *

अथ सिद्धान्तरहस्यकी व्रजभाषामें संक्षेपसूँ भावार्थटीका लिखी है

जब श्रीठाकुरजीनें अपने मनमें इच्छित प्रकारवारो शुद्ध पुष्टिमार्ग प्रकट करवेकी इच्छा करी तब अपने मुखारबिन्द रूप श्रीआचार्यजी श्रीमहाप्रभूजी कोही ऐसो भक्तिमार्ग प्रकट करिवेको सामर्थ्य जानिकें पृथ्वी ऊपर प्रकट होवेकी आज्ञा दीनी तब श्रीआचार्यजीहुँ भगवानको अभिप्राय जानिकें विनकी आज्ञाके अनुसार प्रकट होयकें भगवानकों इच्छित प्रकारवारो पुष्टिभक्तिमार्ग प्रकट करते भये,तामें अपने मार्गको भक्तिको स्वरूप तथा सेव्य प्रभूको स्वरूप तथा सेवाको प्रकार दूसरे मार्गमें नहीं मिलवेकेलिये प्रमाणपूर्वकविलक्षणतासूँ निरूपण कियो, ऐसें दूसरेहु धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ,तथा त्यागविवेकादि दूसरे मार्गसू भिन्न निरूपण किये हैं,तथापि पूजामार्गमें दोषनिवृत्तिके लिये भूतशुद्धि प्रभृति जेसें किये जाय हैं तेसें स्वमार्गमेंहु सर्वदोषकी निवृत्ति पूर्वक सेवाके प्रकारको विचार नहीं कियो है ऐसें चिन्ता करिकें विचारमें परायण जब श्रीआचार्यजी भये तब आनन्दमात्र कर पादमुखोदरादिरूप श्रीठाकुरजी प्रकट होयकें सेवामें प्रतिबन्ध करिवेवारे दोषनकी निवृत्तिको प्रकार यथार्थ जामें आय जाय हैं और जेसें अगाड़ी हु जीवित पर्यन्त हुँ सेवामें दोषको प्रवेश न होय तेसें उपदेश करत भये,वाही उपदेशकूँ अपने हृदयमें समझिकें जामासमें,जापक्षमें जातिथीमें और जा समयमें श्रीठाकुरजीनें उपदेश कियो है, सो सब अपने भक्तनकूँ जतायवे के लिये कहत हैं—

श्रावणास्यामले पक्षे एकदश्यां महानिशि ।
साक्षाद्भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते ॥ १ ॥

भावार्थ—श्रावण मासके शुक्लपक्षमें एकादशी तिथिमें मध्यरात्रिके समय साक्षात् भगवानने अपने अभिप्राय पूर्वक कह्यो है सो एक-एक अक्षर-मूँ या ग्रन्थमें कह्यो जाय है, श्रवण नक्षत्रके देवता विष्णु हैं, सो श्रावण पूर्णिमाके रोज अथवा पूर्णिमाकी सन्निहित तिथि में आवे है तासूँ श्रावण मास कह्यो जाय है; इतनें श्रवण नक्षत्र विष्णु सम्बन्धि है वाके सम्बन्धसूँही मासको नाम श्रावण भयो है तासूँ मासको भगवत्सम्बधिपनो जतायो है, और शुक्लपक्ष कहनों चहियें ताके बदले अमलपक्ष कहिवेको अभिप्राय ऐसो है जो भगवान्के पक्षवारे सब निर्दुष्ट हैं काहुप्रकारको दोष विनमें नहीं है और एकादश इन्द्रियनके दोषकी निवृत्ति करिवेवारी एकादशी तिथि है तासूँ वाही तिथिमें श्रीठाकुरजी ने उपदेश कियो है, और श्रीगोकुलके अन्तरङ्ग भक्तनकों सर्वपुरुषार्थकी सिद्धिके लिये जेसें मध्यरात्रिके समय प्रादुर्भाव हैं तेसें इहाँहू श्रीआचार्यजीके लियें प्रकट होयके विनद्वारा तदीयभक्तनकू सर्व पुरुषार्थ सिद्ध करिवेके लिये मध्यरात्रिके समय प्रकट भये हैं, श्रीगोकुलमें जेसें व्यूहरहित साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तमको ही प्राकटच होयकें भक्तनको अभिलषित कियो है तेसें इहाँहुँ भक्तनको अभिलषित सिद्ध होयवेके लिये पूर्ण पुरुषोत्तमको प्राकटच है ऐसें जतायवेके लिये "साक्षात्" पद कह्यो है और सेवक द्वारा; किंवा स्वप्नद्वारा, किंवा आकशवाणी द्वारा, उपदेश नहीं कियो है, किन्तु श्रीआचार्यजीकी प्रार्थना विनाहु साक्षात् पुरुषोत्तम प्रकट होयकें ब्रह्म सम्बन्धरूप साधनको उपदेश कियो है, और शुक्लपक्षमें दिन-दिन प्रति चन्द्रकी कला अधिक होय है तेसें ब्रह्म सम्बन्धसूँ देहके दोष इतने आधिभौतिक दोष निवृत्त होयकें दिन-दिन प्रति अधिक शुद्धता होयगी, तथा एकादशीके दिन उपवास होय है ता करिकें ज्ञानेन्द्रिय पाँच तथा पाँच कर्मेन्द्रिय और एक मन ऐसें एकादश इन्द्रियनके दोष निवृत्त होय हैं, ये आध्यात्मिक दोषकी निवृत्ति कही है, और अपने भक्तनकों स्वरूपानन्दको दान करिवेकेलिए तथा इनकी रक्षा करिवेके लिये मध्यरात्रिके समय प्रभु प्रकट भये है तासूँ मध्यरात्रिको समय आधिदैविक दोषकी निवृत्ति करिवेवारो है, ऐसें ब्रह्म सम्बन्ध करवेवारे जीवनमें तीन प्रकारके दोष सब निवृत्त होय है ऐसें जतायो है ।

श्रीठाकुरजीनें जो वाक्य कहे हैं विनके अभिप्रायरूप यह ग्रन्थ है ऐसें

प्राचीन टीकाकारनको अभिप्राय है, और श्रीपुरुषोत्तमजीको अभिप्राय एसो है जो एकादशस्कन्धमें द्वितीयाध्यायमें कवि योगेश्वरनें तथा तृतीयाध्यायमें प्रबुद्धयोगेश्वरनें सब भगवानकों अर्पण करिवेको लिख्यो है, तेसें ग्यारहमे अध्यायमें सदादृत[1] भक्तिको निरूपण है, तहाँ दासपनेसूँ आत्मनिवेदन करिवेको लिख्यो है, और उन्नीसमे अध्यायमें महा[2]द्विमृग्य भक्तियोगको निरूपण है, वहाँहुँ भगवद्धर्मके अधिकाररूप आत्मनिवेदन लिख्यो है; विनकोही अनुवाद याग्रन्थमें होयगो ऐसी शंकाकी निवृत्तिके लिये ब्रह्म सम्बन्ध की आज्ञाको मास, पक्ष, तिथि प्रभृतिकह्यो है, और श्रीठाकुरजीनें प्रकट होयकें पंचाक्षर मन्त्र, तथा वाकी टीकारूप गद्य तथा श्लोक रूप ये, वाक्य कहे हैं; तिनमेसूँ पंचाक्षर मन्त्र, तथा वाकी टीकारूप गद्यमन्त्र, मन्त्रकी रीतिके अनुसार गूढ़ राखनो चहियें तासूँ ये नहीं कहें हैं और सिद्धान्तरूप श्लोक जो श्रीठाकुरजीनें कहें हैं सो या ग्रन्थमें लिखे हैं ॥ १ ॥

ऐसें श्रीठाकुरजीनें जासमय उपदेश कियो है वा समयको निरूपण करिकें स्वमार्गीय सेवाके प्रतिबन्धरूप जो असाधारण दोष हैं तिनकी निवृत्ति को प्रकार जो भगवाननें कह्यो है सो कहत हैं—

ब्रह्मसम्बन्धकरणात्सर्वेषां देहजीवयोः ।
सर्वदोषनिवृत्तिर्हि दोषाः पञ्चविधाः स्मृता ॥ २ ॥
सहजा देशकालोत्था लोकवेदनिरूपिताः ।
संयोगजाः स्पर्शजाश्च न मन्तव्याः कथंचन ॥ ३ ॥

भावार्थ--ब्रह्मसम्बन्ध करिवेसूँ सबनके देह और जीवके सब दोषन की निवृत्ति होय हैं सो दोष पाँच प्रकारके प्रसिद्ध हैं ॥ २ ॥ सहज दोष, देशसूँ उत्पन्न भये दोष, कालसूँ उत्पन्न भये दोष, संयोगसूँ भये दोष और स्पर्शसूँ भये दोष, ऐसें पाँच प्रकारके दोष लोकमें तथा वेदमें निरूपण किये हैं अथवा सहज दोष, देशकालसूँ उत्पन्न भये दोष, लोक तथा वेदमें निरूपण किये ऐसे दोष, संयोगसूँ भये दोष और स्पर्शसूँ भये दोष ऐसें पाँच प्रकारके दोष हैं सो काहूरीतिसूँ नहीं मानने, यहाँ श्रीपुरुषोत्तमके संग बोहोत कालनसूँ तिरोहित भयो सम्बन्ध फिर प्रकट होय है तथापि वाको नाम ब्रह्मसंबंध है ताको अभिप्राय ऐसो है जो जेसें ब्रह्म निर्दोष और सर्वत्र समान है तेसें यह सम्बन्धहु निर्दोष तथा समान होय है देह पंचमहाभूतको है और पंचमहा-

---

१- सत्पुरुषननें जाको आदर कियो है सो, २- महत्पुरुषनकों ढुँढिवे योग्य ।

भूतनमें भगवानको सम्बन्ध न होयवेसूँ दोष होय है, जो पूजामार्गमें भूत-शुद्धयादिकनसूँ निवृत्त होय हैं सो सहज दोष हैं और पूजाके स्थानमें भूतादिकनको अपसरण करे हैं और आसनादिककी शुद्धि करें हैं सो देशदोष कहे जाय हैं, तेसें प्रातःकालको होम करिकें अथवा ब्रह्मयज्ञ करिकें अथवा माध्याह्निक कर्म करिकें पुरुषोत्तमको पूजन करनों, ऐसें मन्त्रराज अनुष्टुपके विधानको वाक्य है, तासूँ दूसरे कालमें पूजा करिवेमें कालदोष आवे हैं, और पूजादिक करिकें ब्रह्मलोक मिले हैं, ऐसो वाक्य है; तासूँ पूजासूँ ब्रह्मलोक प्राप्त होय फिर ब्रह्मलोक पर्यन्त पुनरावृत्ति होय हैं ऐसो गीताजीमें कह्यो है तासूँ पुनरावृत्तिरूप दोष कह्यो है और वैदिकमन्त्रनसूँ पूजादिक करिवेमें हू न्यूनातिरिक्त दोषकी सम्भावना है ताके लिये विष्णुस्मरण करनो परे है, ये वेदनिरूपित दोष है और पूजामें अभिषेकादिकके लिये वैदिकमन्त्र के सस्कारवारो शंशोदक होय तामें साधारण जलको संयोग होय सो संयोगजदोष है और मूल में चकार है तासूँ नवेद्यप्रभृतिमें और हूँ, जो सब आगन्तुक दोष हैं, सो सब कहिगये हैं और पूजादिकमें उपयुक्त पात्रादिक पदार्थ, पुष्प और चन्दनादिकनकों स्त्री शूद्रादिकको स्पर्श होय, सो स्पर्शदोष है, ऐसें पाँच प्रकारके दोष भक्तिमार्गमें नहीं माननें, ऐसें श्रीगोकुलनाथजी को अभिप्राय है और देहके संग उत्पन्न भये, ऐसे कुष्ट तथा अपस्मारादिक रोग हैं तेसें जीवके संग उत्पन्न भये, ऐसे कामक्रोधादिक हैं सो सहजदोष कहे जाय हैं, और मगधदेश तथा म्लेच्छादिकनके देशमें तीर्थयात्रा सिवाय जाँय तो फिर संस्कार करनों परे, ऐसें धर्मशास्त्रमें लिख्यो है,सो देशोत्थ कहे जाय हैं, और रौद्रकाल तथा कलिप्रभृति काल है तासूँ धर्मकी निवृत्तिरूप जो दोष है, सो कालोत्थदोष कहैं जाय हैं और पतितादिकनको संसर्ग होय सो संयोगजदोष कह्यो जाय है, और इन्द्रिय तथा पदार्थको संयोग होय सो स्पर्शज दोष कह्यो जाय है, मूलमें जो चकार लिख्यो है तासूँ कर्मसूँ जो दोष होय हैं, सो कर्मजदोषहु आय जाय हैं सो सबलोक तथा वेदमें कहे हैं, जेसें केश, भस्म, प्रभृतीनसूँ दूषित देशमें रहनों, अथवा सन्ध्या समय चोहटे में बेठनों अथवा म्लेच्छादिकनको स्पर्श करनों, मुखमें मैथुन करनो, द्वार सिवाय गृहमें प्रवेश करनों, इत्यादिक लोक-प्रसिद्ध हैं, और अग्निहोत्रवारो अपने लिये उषर भूमिमें न जाय, अमावास्या तथा पूर्णिमाप्रभृति तिथि में स्त्रीके पास न जाये, मलयुक्त होवे तब बोले नहीं, इत्यादिक वेदसिद्ध दोष हैं, ये सर्वसिद्ध दोष निवृत्त होंय, ऐसें नहीं हैं. तथापि काहू रीतिसूँ माननें नहीं, इतनें भगवानको सम्बन्ध सिद्ध होंय, तब ये दोष कहा कर सकें ?

कछूहु नहीं कर सकें, ऐसें श्रीरघुनाथजी को अभिप्राय है, और अविद्याको सम्बन्ध भयेसूँ अभिमानादिक होंय हैं, सो जीवके सहजदोष हैं, तथा कामक्रोधादिक लिंगदेहके सहजदोष है, और मातापितामें जो दोष तथा रोग रहें होंय सो संततिमें आवें सो स्थूल देहके सहजदोष हैं और देश तथा कालसूँ जो-जो दोष होंय हैं सो देह-हीकूँ हैं जीवकूँ नहीं हैं, जेसें मगध देशमें गयाजी प्रभृति पवित्रस्थल हैं और सब अपवित्र हैं जेसें मरुदेश सगरो अपवित्र है ऐसें अपवित्र देशमें जन्मभये-सूँ तथा विन देशनमें गमन करिवेसूँ दोष होंय हैं सो देशोस्थदोष कहे जाय हैं, और कलिकालसूँ तथा दुष्टमुहूर्तसूँ तथा अवस्थासूँ जो दोष होय हैं, सो कालोत्थदोष कहे जाँय हैं, और ज्ञानपूर्वक कामकी प्रवृत्तिसूँ मनको योग भयेसूँ जो दोष उत्पन्न होंय हैं सो संयोगजदोष कहे जाँय हैं, और काहूके स्पर्शसूँ जो दोष होंय हैं सो स्पर्शज दोष कहे जाँय हैं, सो सर्व लोकमें तथा वेदमें निरूपित हैं, तथापि भक्तिमार्गमें देह, इन्द्रिय, अन्तःकरण, और विनके धर्मसहित सबको अर्पण कियो है, तासूँ सब भगवानके भये हैं, सो भगवान की सेवामें प्रतिबन्ध नहीं करें हैं; तासूँ इन दोषनकी निवृत्तिमें प्रयत्न नहीं करनो, क्यों जो सब भगवदीय हैं ऐसो अनुसन्धान रहे, तब ये दोष बाधक नहीं होंय, ऐसो श्रीपुरुषोत्तमजी को अभिप्राय है, और प्रथम स्कन्धके सप्त-माध्यायमें अर्जुनकी स्तुतिमें श्रीसुबोधिनीजीमें कर्मज, कालज, स्वभावज, मायोद्भव और देशोद्भव, ऐसें पाँच दोष लिखे हैं, सोही यहाँ पाँच दोष समझने; तामे वहाँ स्वभाज लिखे है सो यहाँ सहजदोष लिखे हैं, और वहाँ कालज दोष लिखे हैं सो यहाँ कालोत्थदोष समझनें, और वहाँ देशोद्भवदोष लिखे हैं सो यहाँ देशोत्थदोष समझनें और वहाँ मायोद्भवदोष लिखे हैं सो अविद्याके संयोगसूँ स्वधर्म तथा भगवद्धर्मको अज्ञान होय है सो यहाँ संयोग-जदोष समझनें, और वहाँ कर्मजदोष लिखे हैं सो यहाँ स्पर्शजदोष समझनें, ऐसें लालूभट्टजीनें लिख्यो है, सो सब दोष दीखवेमें आवे तथापि दग्ध भये वस्त्र की-सी नाँई कछूँ कार्य कर सकें नहीं तासूँ ये दोष भगवत्सेवामें प्रतिबन्ध करेंगे ऐसें नहीं माननों क्यों जो भगवान् निर्दुष्ट हैं विनको सम्बन्ध भयेसूँ देह, इन्द्रिय, अन्तःकरण और विनके सर्व धर्म निर्दुष्ट होंय जाय हैं ॥ २ - ३ ॥

भगवान् निर्दुष्ट हैं तासूँ जो दोष रहित होय ताकोही सम्बन्ध भगवानसूँ होनो चहियें, परन्तु जबतांई देह तथा इन्द्रियादिकन के दोष निवृत्त नहीं भये हैं तबतांई विनको सम्बन्ध प्रभूनसें केसें होय सके ? तासूँ

प्रथम दोष रहित करिकें पीछें भगवानकों अर्पण करिवेमें कहा हरकत है ? ऐसें कोई कहे तहाँ कहत हैं—

अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्तिः कथंचन ।
असमर्पितवस्तूनां तस्माद्वर्जनमाचरेत् ॥ ४ ॥

भावार्थ--देह, इन्द्रिय, प्राण तथा अन्तःकरण ये सब भगवानको अर्पण किये बिना सब दोषन की निवृत्ति काहू प्रकारसूँ नहीं होय हैं, तासूँ भगवानकों जाको अर्पण नहीं भयो है सो वस्तु अपने उपयोगमें नहीं लेनो, असमर्पित वस्तुको त्यागही करनो;इतने श्रीमद्भागवत षष्टस्कन्धमें श्रीशुकदेव जी ने कह्यो है जो तप, ब्रह्मचर्य, शान्ति, इन्द्रियको निग्रह, दान, सत्य, पवित्रता, इन सबन करिकें धीर पुरुष, श्रद्धायुक्त होयकें देह, वाणी और बुद्धिसूँ उत्पन्न भयो, ऐसो बडो पाप होय ताकूँ हु अग्नि जेसें काष्ठकूँ दग्ध-करे है, तेसें दग्ध करे है, अर्थात् अग्नि काष्ठकूँ दग्ध करे है तामें भस्म-प्रभृति शेष रहे हैं तेसें तपआदिसूँ पाप दग्ध होय है तामें मलिनता करवेवारे कछुक दोष बाकी रहे है तासूँ वहाँ ही फिर कह्यो है जो वासुदेव भगवानके परामण कितनेक भक्त जेसें सूर्य, रात्रि में भये ओसके जलकों, निश्शेष नाश करे है, तेसें केवल भक्ति करिकें समग्र पापको नाश करे है, येसें कह्यो है तासूँ भक्तिसूँ पापको नाश होय है, ऐसो दूसरे साधनसूँ नहीं होय है, तासूँ असमर्पित वस्तुको त्यागही करनो ॥ ४ ॥

ऐसें असमर्पित वस्तुको त्याग करें तब लौकिकालौकिक व्यवहार केसें सिद्ध होय ? ऐसें जानवेकी इच्छा होय तहाँ कहत हैं—

निवेदिभिस्समप्यैव सर्वं कुर्यादिति स्थितिः ।
न मतं देवदेवस्य सामिभुक्तसमर्पणम् ॥ ५ ॥

भावार्थ--पुष्टिमार्गकी रीतिसूँ आचार्यद्वारा जा जीवकों निवेदन भयो है ता जीवकूँ भगवानको अर्पण करिकें ही सब कार्य करनों, ऐसी भक्तिमार्ग की दोष रहित मर्यादा है; तामें जो अर्द्धभुक्त पदार्थ हैं सो देवके देव प्रभूनकों समर्पण योग्य नहीं है; इतनें निवेदन, दान और अर्पण, ऐसें तीन प्रकार हैं, तामें वस्तुको नाम लेकें प्रभूकों जतायदेनों, सो निवेदन कह्यो जाय है, तथा विधिपूर्वक अपनी सत्ताको छोड़िकें द्रव्यादिकनमें दूसरेकी सत्ता उत्पन्न करनी सो दान कह्यो जाय है, और रसोई करवेवारो जेसें रसोई सिद्ध करिकें अपने मालिककों अर्पण करे हैं, तेसें स्वामिकों भोगवे-

योग्य पदार्थ स्वामीकों जतावनो सो अर्पण कह्यो जाय है, वाही रीतिसूँ प्रथम प्रभूकों निवेदित भई ऐसी वस्तु फिर अर्पण करिकें लौकिक तथा वेदिक सर्व कार्य करनो, ऐसी भक्तिमार्गकी मर्यादा है ताही रीतिसूँ करिवे में दोष नहीं आवे हैं; क्यों जो जाको दान कियो है सो वस्तु अपने उपयोगमें नहीं आय सके तेसें जो वस्तु प्रभूनकों भेंट करी है सो वस्तुहुँ अपने उपयोगमें नहीं आयसके परन्तु जाको अर्पण कियो है सो वस्तु अपने उपयोगमें लेवे में हरकत नहीं है; तामें एक पदार्थमें सूँ थोडो भाग अपने उपयोगमें लेकें बाकी बच्यो जो भाग है सो सामिभुक्त अर्द्धभुक्त कह्यो जाय है सो प्रभूकों अर्पण करिवेयोग्य नहीं हैं, अर्थात् यह सब वस्तु प्रभूनकी है, ऐसो अनुसन्धान राखिकें फिर ये प्रभूनकों अर्पण करिकें ये विनको प्रसाद है, ऐसो समझिकें अपने उपयोगमें लेनो और अर्धभुक्त होय सो प्रभूनकों नहीं समर्पनी ॥५॥

ऐसें अर्द्धभुक्तके निवेदनको निषेध करिकें, सर्वदा कर्तव्यको प्रकार कहत हैं—

तस्मादादौ सर्वकार्ये सर्ववस्तुसमर्पणम् ।
दत्तापहारवचनं तथा च सकलं हरेः ॥ ६ ॥
न ग्राह्यमिति वाक्यं हि भिन्नमार्गपरं मतम् ।

भावार्थ—निवेदित पदार्थ प्रभूनकों समर्पिकेही सर्वकार्य करनों, ऐसी भक्तिमार्गकी मर्यादा है तासूँ प्रथम सर्वकार्य में सर्व वस्तु अर्पण करनी; इतने स्त्री, पुत्र, धन, प्रभृति सब प्रभूनकों समर्पिकें ये सब भगवानके हैं ऐसो अनुसन्धान राखिकें अपने उपयोग में लेनी, ऐसें प्रभूनकों जाको अर्पण भयो है, सो वस्तु प्रभूनकी है ऐसी बुद्धि रहिवेसूँ अपनो अभिमान छूट जाय है और प्रभूनके सम्बन्धतें विनमें आसक्ति रहिवेसूँ अपनी भक्तिकी दृढता होय है, और कर्ममार्गादिकनमें निवेदन तथा समर्पणको प्रकार नहीं है, 'केवल दान कोही प्रकार है तासूँ भगवानकों जो पदार्थ दियो है सो पदार्थ अपनें नहीं लेनो, ऐसो वाक्य वा मार्गके अभिप्रायको है, भक्तिमार्गको नहीं है, भक्तिमार्गमें तो सर्व वस्तु भगवानकों समर्पिकेंही उपयोगमें लेनी ऐसी मर्यादा है ॥ ६ ॥

ऐसें भक्तिमार्गसूँ दूसरे मार्गमें भगवानकों अर्पण भई ऐसी वस्तुको उपयोग नहीं करनों और भक्तिमार्गमें तो भगवानकी प्रसादी वस्तुसूँही भगवदीयनकूँ सर्व कार्य कर्तव्य हैं, ऐसें जतायवे के लिये कहत हैं—

सेवकानां यथा लोके व्यवहारः प्रसिध्यति ॥ ७ ॥
तथा कार्यं समर्प्यैव सर्वेषां ब्रह्मता ततः ॥

भावार्थ—लोकमें सेवकनको व्यवहार जेसें सिद्ध होय है तेसें प्रभूनकों अर्पण करिकेंही सब कार्य करनों ऐसें करिवेतें सबनकों ब्रह्मरूपपनो होय; इतनें लोकमेंहु जो सेवक होय हैं, सो सब कार्य अपने मालिककी आज्ञासूँही करे हैं, मालिककूँ बिना पूछे कछू कार्य नहीं करें हैं और शिष्य होय सो गुरुकी आज्ञा प्रमाणही सब कार्य करे है, तेसें अपनो देह आत्मादिक, सब भगवानकों अर्पण कर्‌यो तब सब भगवानके भये तासूँ भगवानकूँ अर्पण करिकेंही सब कार्य करनों ऐसें करिवेसूँ सबनमें निर्दोषपनों तथा समान भगवदीयपनों सिद्ध होय है, यद्यपि ब्रह्मके अनन्त धर्म है तथापि गीताजीमें निर्दोष और सम ये दोय धर्म ब्रह्मके कहे हैं और यहाँ सेवामेंहु ये दोऊ धर्म कोही उपयोग है; तासूँ ये दोऊ धर्मकों ले सबनकों ब्रह्मपनो होय ऐसे कह्यो है ॥ ७ ॥

भक्तिमार्गमें प्रवेश भयो होय तोहु सत्वादिक ऊही गुणनके भेदकरिकें सबनकी प्रकृति भिन्न-भिन्न होय है समान नहीं होय है तासूँ भगवदीयपनो भयो तोहु सबनकों समानपनो केसें होय ? ऐसी शंकाकों गङ्गाजीके दृष्टान्त सूँ निवृत्त करत हैं--

गंगात्वे सर्वदोषाणां गुणदोषादिवर्णना ॥ ८ ॥
गंगात्वेन निरूप्या स्यात्तद्वदत्रापि चैवं हि ॥ ९ ॥

भावार्थ—परनाला प्रभृतिको जल गंगामें मिले तब परनालाप्रभृतिमें रहे, ऐसे सब दोषनकों गङ्गापनों होय है तासूँ वाके गुणदोषनको वर्णन गङ्गापनेसूँही होय हैं तेसें ब्रह्म सम्बन्ध भये पीछे यहाँहुँ सबनकों ब्रह्मपनो होय है, इतने परनालके जलके स्पर्शसूँ स्नानादिक करनो परे है और येही जल गङ्गाजीमें मिल्यो होय तब यत्किंचित् वाकी मलिनता दीखवेमें आवती होय तथापि याके पानसूँ पाप निवृत्त होय है; क्यों जो सब गङ्गारूप होय गयो है, इतने फिर आच्छे बुरे जलको वर्णन होय हैं सो गङ्गाजीकेही जल को वर्णन होय हैं "परनालाप्रभृतिको जल खराब है" ऐसें कोउ नहीं कहत हैं, तेसें गङ्गाजी में आच्छो जल मिल्यो होय तोहुँ गङ्गाजीको जल अच्छो है ऐसें कहत हैं, परन्तु जो जल मिल्यो है, वाको नाम नहीं लेत हैं, ऐसें ब्रह्म सम्बन्ध भये, पीछे ब्रह्म सम्बन्ध करवेवारेमें जो दोष तथा गुण रहे हैं

सो सब ब्रह्मरूप होय हैं अर्थात् परनालाको जल गंगाजीमें मिले तब बाके सब दोष नष्ट होय जाय हैं तेसें ब्रह्म सम्बन्ध करवेवारेमें जो दोष होय सो सब नष्ट होय जाय है ॥ ९ ॥

ब्रह्म सम्बन्ध करिवेसूँ सब दोषनकी निवृत्ति होय है; तासूँ पाँचो प्रकारके जो दोष हैं सो माननें नहीं ऐसें प्रथम कह्यो है ता पीछे सबनकों ब्रह्मपनों होय है ऐसें कह्यो है येही सेवाको आनुषंगिक फल सिद्धान्त मुक्तावलीमें कह्यो है, वा ब्रह्म सम्बन्धसूँ सब दोषनकी निवृत्ति होय है ऐसें कहिकें अगाडी दोष नहीं होयबेके लिये सब अर्पण करिकेंही कार्यकरिवेको कह्यो है; तामें भगवद्धर्मके अनुसार तथा लौकिक व्यवहारके अनुसार ऐसें दोय प्रकारको समर्पण कह्यो है तामें भगवद्धर्मके अनुसार (वाक्यको स्वरूप समझिकें) समर्पण करे तो ब्रह्मतारूप फल होय और लौकिक व्यवहारके अनुसार करे तो गंगोजी में मिले भये मोरी (परनाला) के जलकी नांई ब्रह्म सम्बन्ध करिवेवारेमें जो दोष रहे हैं विनकी निवृत्ति मात्रही फल होय हैं।

॥ इति श्रीमद्वल्लभाचार्य विरचित सिद्धान्तरहस्यकी संक्षिप्तब्रजभाषामें
टीका गोस्वामी श्रीनृसिंहलालजी महाराज
विरचित समाप्त भई ॥

-०-

* श्रीकृष्णाय नमः *

* श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः *

अथ नवरत्नकी व्रजभाषामें संक्षिप्तटीकाको प्रारम्भ

भगवदीयनकों चिन्ताकी निवृत्तिके लिये ये ग्रन्थ है, तब भगवदीय तो अनन्यभक्त होंय हैं और "अनन्य होयकें जो मनुष्य मेरी भक्ति करें हैं, और नित्य सब तरेहसूँ मेरेमेंही चित्तवृत्ति राखत हैं विनकों जो पदार्थको उपयोग है सो में मिलायदउँ हूँ, और जो उपयुक्त पदार्थ मिल्यो है बाकी मैं रक्षा करूँ हूँ।" ऐसें गीताजी में अर्जुन प्रति श्रीकृष्ण नें आज्ञा करी है; तासूँ भगवदीयन कूँ कैसें चिन्ता उत्पन्न होय ? ऐसी शङ्काकी निवृत्तिके लिये श्रीगुंसाईंजीनें आज्ञा करी है जो आत्मनिवेदन करिवेवारेहि भगवद्-भजनकूँ योग्य हैं जिननें आत्मनिवेदन नहिं कियो है सो भगवद्भजनकों योग्य नहिं हैं तामें जिननें आत्मनिवेदन कियो है, विनके या लोकके तथा परलोकके अर्थ में भगवान्कों जाको अर्पण नहीं कियो है ऐसी कोई वस्तु नहीं है, तब देहादिकनकों निर्वाह विवेदित वस्तूनसों करनो, किवा अनिवेदित वस्तूनसों करनो ? जो कहो के निवेदित बस्तूनसोंही करनो तो ये पक्ष योग्य नहीं है; क्यों जो भगवानकी वस्तुको भगवानकी इच्छा बिना ग्रहण होयसके नहीं, और भगवानकी इच्छा जानिवेमें आयसके नहीं, यथार्थ विचार करो तो भगवानकी इच्छा होय तोहु सेवककों भगवानकी वस्तुको उपयोग करनो उचित नहीं है, और कदाचित् ऐसें कहैं जो देहादिकहु भगवानके भय हैं विनको पोषण भगवानकी वस्तुसों करिवेमें दोष नहीं है ऐसें नहीं कहेंनों, क्यों जो अपने विचारसूँ तेसें करिवेमें स्वतन्त्रतारूप दोष आय जाय है, और भगवानकी इच्छा जानिवेमें नहीं आवत है, ये तो

कह्योही है, तासूँ भगवानकी जो वस्तु निवेदित भई तासूँ निर्वाह करनों योग्य नहीं हैं, तब जो वस्तु निवेदित नहीं भई है वाहीसूँ निर्वाह करनों ऐसें कोऊ कहे ! तहाँ कहत हैं, जो ये पक्षहु नहीं; क्यों जो जावस्तुको निवेदन नहीं भयो है, सो उपयोगमें लेवेको अपनो धर्म नहीं है, तेसें भगवानकों निवेदित नहीं भई, ऐसी वस्तु राखवेकोही अपनो धर्म नहीं है, देहादिकनको निवेदन भयो है ताके निर्वाहके लिये अपनो विचार करनोही योग्य नहीं है, तेसें देहादिकनको निवेदन करिवेके समय वाके निर्वाहके लिये कितनिक वस्तु भगवानकों निवेदित नहीं करिविको विचार करनो येहु योग्य नहीं है, क्यों जो सबनमेंतें अपनो अभिमान छूटवेके लिये निवेदन है, और देहादिकके निर्वाहको विचार करनो सो वामें अपनो अभिमान राखे, तब होय तासूँ अनिवेदित वस्तूनसूँ देहादिकनको निर्वाह करनो, ये पक्षहु योग्य नहीं है, ऐसें जब देहादिकनको निर्वाह निवेदित वस्तूनसों अथवा अदिवेदित वस्तूनसों होयसके नहीं, तब देहादिकनके निर्वाहको साधन नहीं रहिवेसूँ देहादिकनके नाशको सम्भव होय तब देहादिकनसों भजन करनो सो बनसके नहीं, तब भजन करिवेके लिये वाके अधिकाररूप निवेदनकी व्यर्थता आयजाय है, तब पुष्टिकी मर्यादारूप यह भक्तिमार्गही उच्छिन्न होय जाय; तासूँ निवेदन करें, तब भगवद्भजनको अधिकार होय और निवेदन भयेसूँ भगवद्भजन होयसके नहीं, तब दोई आडीसूँ पास आवे है ऐसें कोउ कहै तहाँ कहत हैं, जो स्त्री, पुत्र, गृह, प्राण, ये सब भगवानकों अर्पण करनों, ऐसें प्रबुद्ध योगेश्वरनें निमिकेराजा प्रति भगवान् सम्बन्धि धर्मके प्रसङ्गमें कह्योहै और उन्नीसमे अध्यायमें श्रीकृष्ण भगवाननें उद्धवजीप्रति महद्विमृग्यभक्तियोग कह्यो है तामें मेरी अमृतरूप कथामें श्रद्धा राखनी, यहाँसूँ लेयकें साडेचारश्लोकनसूँ आत्मनिवेदीनके धर्म कहे हैं वहाँ अधिकाररूप निवेदन कह्यो है; तासूँ निवेदनको आवश्यक है तासूँ जैसें ब्राह्मण, क्षत्री तथा वैश्यकों वैदिक कर्ममें अधिकार सिद्ध करिवेवारो गायत्रीके उपदेशसूँ भयो, ऐसो यज्ञोपवीत संस्कार है, तैसें भगवद्भजनमें अधिकार सिद्ध करिवेवारो आत्मनिवेदन है तासूँ निवेदनकी सफलताके लिए भगवद्भजन सिद्ध करिवेकों जितनी वस्तूनको आवश्यक उपयोग होय तितनी निवेदित वस्तुही उपयोगमें लेनीं, जो ऐसो अभिप्राय न होय तो स्त्रीको पाणिग्रहण किये पीछे अवश्य वाकूँ निवेदित करनी चाहियें तैसेंही पुत्रादिकनको निवेदन करनो चहियें सो न भयो तब ये अपने उपयोगमें आये नहीं, तब वाको ग्रहण कियो है, ताकी व्यर्थता आय जाय है; तासूँ जो वस्तु दानमें दीनी है सो

वस्तु अपने उपयोगमें आवे नहीं, परन्तु निवेदित वस्तुको उपयोग करिवेमें बाध नहीं है, जो निवेदित वस्तुमें बाध होय तो भगवानकूँ निवेदित किये गये अन्नादिकनकोही भोजनकरिवेको सर्वत्र लिख्यो है सो न होयसके और भगवानकों निवेदित कियेसिवाय वस्तु लेवेको सर्वत्र निषेध है; तासूँ जो वस्तु भगवानकों निवेदित भई है ताको भगवद्भोगके लिये विनियोग भयो तब भगवाननें दियो भयो यह प्रसाद है, ऐसें समझिकें अपनें उपयोग करनो सो अत्यन्त युक्त है, क्यों जो यामें दासधर्म सिद्ध रहे है, तासूँही उद्धवजीनें श्रीकृष्णसूँ कह्यो है जो 'आपको उच्छिष्ट लेवेवारे हम दासननें आपकी माया जीती है" इत्यादिक वाक्यन करिकें भगवानको प्रसाद आत्माकों शुद्ध करिवेवारो है ये सिद्ध है तासूँ या विषयकी चिन्ता तो होय नहीं परन्तु निवेदित अर्थको प्रभूमें विनियोग होय गयो तापीछें विनियोग करिवेकेलिये वस्तु सम्पादन करिवेको यत्न करनो, किंवा नहीं करनों ? ऐसी चिन्ता भगवदीयनकों होय; क्यों जो भगवानके विनियोगमें उपयुक्त वस्तु सम्पादन करिवेको प्रयत्न करें, तब भगवानमेंसूँ चित्त निकसिकें वावस्तुमें लगे ऐसेंही सब इन्द्रियको व्यापार वाहीके अनुकूल होय तब बहिर्मुखता होयवेको सम्भव है और जितनो वामें यत्न करे तितनो सेवामें प्रतिबन्ध होय, तेसें धर्म, अर्थ और काम ये त्रिवर्गको श्रम भगवान् निष्फल करत हैं तासूँ भगवत्कृत प्रतिबन्धहु तामें होय; और जो यत्न न करें तो भगवानकों विनियोग करिवेको कछु होय नहीं, तब दुःख होय, ऐसें भगवदीयनकों चिन्ता होय ताकी निवृत्तिके लिये उपदेश करते हैं—

चिन्ता काऽपि न कार्या निवेदितात्मभिः कदापि ।
भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीं च गतिम् ।। १ ।।

भावार्थ--जिननें अपने आत्मादिक सब निवेदित किये हैं विनकों काहुसमय कोउवातको चिन्ता कर्तव्य नहीं है, क्यों जो ये जीव पुष्टिमार्गमें रह्यो है तासूँ भगवानहु वाकी लौकिक गति न करेंगे, इतने लौकिक चिन्ता न होय तथापि भगवानकेलिएहु चिन्ता न करनी अंगीकार भयेसूँही भगवान् आपसूँही सब सिद्ध करेंगे, ऐसो विश्वास जीवकों अवश्य राखनों चहियें, और भगवानकोहु ऐसो नियम है जो जाको अंगीकार कियो वाको पालन अवश्य करनो, तासूँ कदाचित् परीक्षाके लिये अथवा प्रारब्ध भोगके लिये प्रभु विलम्ब करें तोहु चिन्ता न करनी, जीव पुष्टिमार्गमें रह्यो है तासूँ मर्यादामार्गीय वैराग्यादिक होय नहीं तोहु आचार्यद्वारा भगवानकों निवेदित

भये हैं तासूँ भगवानने ये जीव स्वकीय हैं ऐसें अंगीकार कियो है तासूँ दूसरेलोक किसीनाँई कुटुम्बादिकनमें आसक्ति होयगी तोहु भगवान् लौकिक-गति नहीं करेंगे ॥ १ ॥

ऐसें चिन्ताछोडवेसूँ स्वच्छन्दपनेको व्यवहार आय जायगो, तासूँ बहिर्मुखता होयगी ऐसें कोउ कहे तहाँ कहत हैं—

निवेदनं तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः ।
सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा निजेच्छातः करिष्यति ॥ २ ॥

भावार्थ--सर्वथा जो तादृश भये हैं इतनें निवेदितात्मा भये हैं तिनकों अवश्य निवेदनको स्मरण करनो अथवा सर्वथा जो ता-तादृशजन होंय इतनें भगवदीय होंय तिनके संग निवेदनको स्मरण करनो, मूलमें सर्वदा पद होय तो हमेशाँ निवेदनको स्मरण करनो ऐसो अर्थ समझनों, ऐसें सर्वकाल स्मरण न करे तो आसुरावेश होय, कदाचित् अलौकिक अथवा लौकिकअर्थ-की सिसिके लिये प्रभूनकी प्रार्थना करनी के केसें ? ऐसी शङ्का होय तहाँ कहत हैं जो प्रार्थना करनी नहीं; क्यों जो जिननें निवेदन कियो है तिनसवन के ईश्वर हैं और सबनके आत्मा हैं सो अपनी इच्छातें करेंगे अथवा जिनकी इच्छामें विकार नहीं होय तिन भक्तनकी इच्छा प्रकार प्रभु करेंगे ॥ २ ॥

देहादिक सब भगवानकों अर्पित किये हैं ताको विनियोग स्त्री, पुत्रादिकनमें होय तब स्वधर्मकी हानि होय ऐसी चिन्ता होय तहाँ कहत हैं—

सर्वेषां प्रभुसम्बन्धो न प्रत्येकमिति स्थितिः ।
अतोऽन्यविनियोगेऽपि चिन्ता का स्वस्य सोऽपि चेत् ॥३॥

भावार्थ--सबनकों प्रभुको सम्बन्ध है, एककूँ मुख्य सम्बन्ध है और एककूँ गौण सम्बन्ध हैं ऐसें नहीं है, ऐसी निवेदन में अंगीकारकी मर्यादा है, यासूँ जो विलक्षण होय इतनें सबनकों अंगीकार समान होय तथापि कोउके ऊपर विशेष कृपा दीखवेमें आवे तो तामेंहु अपनें सन्तोष माननों, अर्थात् निवेदन करिवेके समय तो अपनें एक मुख्य होयकें अपने संग दूसरे सवनकों अर्पण करें हैं तब अपनी मुख्यता होय है, परन्तु निवेदन भये पीछें तो अपनो आत्मा, देह, प्राण, इन्द्रिय, अन्तःकरण, स्त्री, पुत्र, धन, सबनको

समान निवेदन होय है,तामें जैसें धनादिक अचेतनपदार्थनको परस्पर[1] विनियोग होय है, तामें चिन्ता नहीं होय है तेसें स्त्रीपुत्रादिकचेतनको परस्पर विनियोग होयवेमें अपनकों चिन्ता कहा है ? तेसें अपनको अन्य विनियोग होय तोहू चिन्ता कहा है ?

यापेसूँ एसो सिद्ध भयो जो अपनें समर्पण कियो तब अपने संग स्त्रीपुत्रादिककोहु समर्पण भयो सो विनमें अपनो सम्बन्ध हतो ताको समर्पण भयो है और स्त्रीपुत्रादिकनकी जो स्वतन्त्र सत्ता है सो समर्पण करिवेके लिये तिनकों भिन्न-भिन्न समर्पण करनों चहियें। तब सिद्धान्तरहस्यमें कहे प्रमाण अपने-अपने पञ्चदोषनकी निवृत्ति होय, और धनादिकजड़पदार्थमें अपनी स्वतन्त्र सत्ता रहे है। तासूँ अपने समर्पणके संगहि इनको समर्पण होयगयो और ये निदुष्ट होयगये एसें जाननों ॥ ३ ॥

जैसें पुत्रादिकनके अन्यविनियोगमें चिन्ता नहीं करनी, तैसें अपनो अन्य विनियोग होय तोहु चिन्ता न करनी या विषयमें कहत हैं—

अज्ञानादथवा ज्ञानात्कृतमात्मनिवेदनम् ।
यैः कृष्णसात्कृतप्राणैस्तेषां का परिदेवना ॥ ४ ॥

भावार्थ – भगवान् सर्वरूप हैं तथा मार्गके प्रवर्तक और उपदेशक गुरु निरवधिसच्चिदानन्दस्वरूप हैं, तथा भगवान्कों सब निवेदन करनों सो परमफलरूप है। इत्यादिक ज्ञान जिनकों नहीं है ऐसे हीनाधिकारी और ऐसो ज्ञान जिनकों होय सो मध्यमाधिकारी हैं, ऐसेहु निवेदितात्मा होय तो विनकों चिन्ता कर्तव्य नहीं है। तब जिननें केवल प्रभूनकोंही प्राणआधीन किये है ऐसे जो उत्तमाधिकारी हैं तिनकों तो चिन्ताही कहा है ? ॥ ४ ॥

श्रवणादिक नवभक्तीनमेंसूँ श्रवण, कीर्त्तन, और स्मरण ये जीवके आधीन है, तथा पादसेवनके दोय भेद हैं तामें एक तो अपनें पादकरिकें भगवन्मन्दिरादिकनमें जानों सोहु जीवके आधीन है, और दूसरो भगवान्के चरणारविन्दको सेवन करनों सो प्रभूनके आधीन है, तेसेंही अर्चन, वन्दन,

---

[1] वस्त्र आभरण राखिवेके लिये पेटी राखे है, तामें पेटीको विनियोग वस्त्र तथा आभरणमें भयो तामें अपनकों चिन्ता नहीं होय है तेसें पुत्र धन स्त्री प्रभृतीनको परस्पर विनियोग होय तो चिन्ता न करनी ।

और दास्य है सोहु सेव्यस्वरूपमें चैतन्यको प्राकट्य न होय तोहु बनसके है, परन्तु सख्य और आत्मनिवेदन तो सेव्यस्वरूपमें चैतन्यको प्राकट्य होय और प्रभु स्वीकार करें तब होयसके और अब तो सानुभावपनो नहीं है तब अपनें आत्मनिवेदन कियो है तथापि प्रभूननें अङ्गीकार कियो है किंवा नहीं कियो है ? ऐसी चिन्ता तो होय है, ऐसें कोउ कहे, तहाँ कहत हैं—

तथा निवेदने चिन्ता त्याज्या श्रीपुरुषोत्तमे ।
विनियोगेऽपि सा त्याज्या समर्थो हि हरिः स्वतः ॥५॥

भावार्थ—भक्तयुक्त श्रीपुरुषोत्तममें निवेदन विषयकी चिन्ता छोड़नी; इतनें जैसें सब गोप इन्द्रको यज्ञ करत हते तिनकों निवृत्त करिकें अपने आधीन किये, तेसें अपनें सर्वात्माकरिकें प्रभूनमें सब निवेदन कियो है तब चिन्ता करनी योग्य नहीं है, तामंहु श्रीयुक्त पुरुषोत्तम हैं सो अपने स्वरूपानन्दको दान करिकें भक्तनको पोषण करत हैं । तिनमें निवेदन कियो, सो प्रभूननें अङ्गीकार कियो है अथवा नहीं कियो है ! ऐसी चिन्ता छोड़नी, कदाचित् लकाभयोदिक आय जाय, तब वाको निवारण करिबेके लिये जीवस्वभावसूँ अन्य विनियोग होय तोहु चिन्ता छोड़नी, ऐसें कहत हैं जो प्रमादसूँ ऐसें अन्य विनियोग होयजाय तोहु प्रभु न छोडेंगे, क्यों जो जीवस्वभाव के वशसूँ जीव ऐसें भयो तो हु वाको उद्धार करिवेमें वाके साधनकी अपेक्षा नहीं राखत हैं आपस्वतः ही समर्थ हैं, और सबनके दुःख तथा पापके हरणकरिवेवारे हैं ॥ ५ ॥

भगवाननें अङ्गीकार कियो होय तामें दूसरो लक्षण कहत हैं—

लोके स्वास्थ्यं तथा वेदे हरिस्तु न करिष्यति ।
पुष्टिमार्गस्थितो यस्मात्साक्षिणो भवताखिलाः ॥ ६ ॥

भावार्थ—लौकिकवाणिज्यादिकनमें तथा वैदिकआश्रमधर्मादिकनमें भक्तनके दुःखहर्ता हरि स्वस्थता न करेंगे, अर्थात् काया, वाणी तथा मनसूँ आछीरीतिसूँ स्थिति लौकिक तथा वैदिकमें होय तामें विघ्न होय इतनें लौकिक तथा वैदिक कार्यहु यथार्थ न होय तहाँ वाको फल तो कहाँसूँ होय ? क्यों जो प्रभु आप हरि हैं सो आपने बलकरिकेंही सब सिद्धकरिवेवारे हैं तासूँ पुष्टिमार्गमें अङ्गीकार भयो तब मर्यादाको सहन नहीं करत हैं, ऐसें लौकिक तथा वैदिकमें विघ्न होय तब कहा करनो ? ऐसी शङ्का होय तहाँ

कहत हैं जो साक्षिवत् सब भक्त होय जाओ, इतनें लौकिक तथा वैदिकमें भगवान् कहा करत हैं, येही देखनों; अर्थात् सप्तस्कन्धमें भगवदीय, गृहस्थके लक्षण में लिख्यो है जो "ज्ञातिके मनुष्य, माता, पिता, पुत्र और दूसरे सम्बन्धी जेसे कहें और जेसी इच्छा करे वामें ममता छोडिकें अनुमोदनही करनो" ये वाक्य के अनुसार रहनो, ऐसें रहे सोहु भगवान्के अङ्गीकारको लक्षण है ॥ ६॥

लौकिकवैदिकमें विघ्न होय तोहु साक्षिवत् भगवानकी कृति देखनी, ऐसो उपदेश कियो ताकरिकें आधिभौतिक, आध्यात्मिक. और आधिदैविक ऐसें तीनप्रकारको धैर्य ही साधनरूप कह्यो। ऐसो सिद्ध होय है तब इतनोही कर्तव्य होय, तब यथार्थ सेवा बनसके नहीं, तब निवेदन की व्यर्थता होय, ये हु धर्मकी हानि है ऐसी चिन्ता होय, ताकी निवृत्तिको उपाय कहत हैं—

सेवाकृतिर्गुरोराज्ञा बाधनं वा हरीच्छया ।
अतः सेवापरं चित्तं विधाय स्थीयतां सुखम् ॥ ७ ॥

भावार्थ–"जेसी उत्तम भक्ति देवमें होय है तेसी भक्ति गुरुमें राखनी" ऐसें श्वेताश्वतरश्रुति में लिख्यो है। तासूं गुरुकी आज्ञाप्रमाण सेवा करनी सो आत्मनिवेदीनको धर्म है। सो जेसें साक्षिवत् रहिवेमें सिद्ध रहे तेसें साक्षिवत् रहनों, परन्तु सेवाकी विरुद्धतासूँ साक्षिवत् नहीं रहनों, तामेंहु गुरुकी इच्छासूँ विरुद्ध प्रभूनकी इच्छा सेवामें होय तो गुरुकी इच्छाको बाध होय इतनें जाप्रमाण सेवा करिवेकी गुरूनकी आज्ञा है बाहिप्रमाण सेवा करनी, और सेवामें सामग्रीप्रभृतिविषयमें अन्तःकरणद्वारा, स्वप्नद्वारा अथवा साक्षात् भगवानकी विशेष आज्ञा होय, तब गुरूनकी आज्ञाको बाध होय प्रभूनकी आज्ञाको बाध न होय, प्रभूनकी आज्ञाप्रमाण करिकें सेवा करनी, इतनें स्वधर्मकी हानि न होय, अर्थात् गुरूनकी आज्ञा सिद्ध रहे तेसें अथवा प्रभूनकी इच्छासूँ गुरूनकी आज्ञाको बाध होय, तेसें सेवाहि करनी; क्यों जो आत्मनिवेदीनकों सेवाहि मुख्य है; तासूँ सेवापरायण चित्त करिकेंही रहनों, तब पर्यवसानमें वाकों सुखहि होय ॥ ७ ॥

अल्प दुःख होय तब तो ऐसें साक्षिवत् रह्योजाय, परन्तु महादुःख प्राप्त होय तब साक्षिवत् रहिसक्यो नजाय तब तो चिन्ता होय, ऐसी कोऊ शङ्का करे, तहाँ कहत हैं—

चित्तोद्वेगं विधायापि हरिर्यद्यत्करिष्यति ।
तथैव तस्य लीलेति मत्वा चिन्तां द्रुतं त्यजेत् ॥ ८ ॥

भावार्थ—जेसें प्रभासीयलीलामें यादवनकों शाप भयो सो भगवाननें लोकमर्यादारक्षणके लिये मायिक रचना करी है, क्यों जो अगाड़ी यादवनकों नित्यसुख दियो है तेसें भक्तनकों प्रारब्धादिरूप पाप हरिवेके लिये हरि "भगवान्" जो-जो करें सो ऊपरसूँ शुभ अथवा अशुभ दीखवेमें आवतो होय तामें चित्तकों उद्वेग होय सो उद्वेग करिकेंही हरि जो-जो करेंगे, सो अपनो महत्पाप होयगो ताको नाश करिवेके लिये हरिकी लीला है ऐसें मानिकें उद्वेग करिवेवारी अथवा उद्वेगसूँ भई, ऐसी चिन्ताकूँ शीघ्र ही छोड़े, क्यों जो बोहोत समय तक चिन्ता रहिवेमें काल, कर्म और स्वभावकी प्रबलतासूँ आसुर धर्म होयजाय तो फलमें प्रतिबन्ध तथा विलम्ब होय तासूँ चिन्ताकूँ शीघ्रही छोड़नी ॥ ८ ॥

या नवरत्न ग्रन्थमें जितनो लिख्यो है, सो सब सोय सके नहीं; ऐसो दीखे है, क्यों जो श्रवणभक्तिको आरम्भ करिकें सख्यभक्ति पर्यन्त पहुँचे तब निवेदनकी वार्ता है तहाँ निवेदनकी दिशा तो अत्यन्त दूर रही; तासूँ निवेदन विषयकी चिन्ताको तथा अन्यविनियोगविषयक चिन्ताको समाधान कियो सो व्यर्थ है, ऐसो विचारिकें साधन ओर फल एक करिकें सबनको समाधान कहत हैं—

तस्मात्सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम ।
वदद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः ॥ ९ ॥

भावार्थ-ऊपर कही ऐसी रीतिसूँ जीवनकों आपसूँ सब होनों अशक्य है, तासूँ सर्वात्माकरिकें "श्रीकृष्णः शरणं मम" ऐसें नित्य सर्वकाल बोलतेही रहनों, ऐसी मेरी मति है; इतनें भक्तिमार्गमें प्रवेश भयो तथा भक्तिमार्गमें रुचि भई तामें भगवानको अनुग्रहही कारण है, ऐसें भक्तिमें प्रवेश भये पीछे ही सेवामें प्रतिबन्धको सम्भव होय तब प्रारब्ध तथा कालादिकसूँही होय ताकी निवृत्ति तो सबनके नियामक ऐसे प्रभूनसूँही होय और तामें शरणागतिही साधन है, सो जीव प्रभुके शरण गयो होय और सब करिबेमें प्रभु ताकी अशक्ति देखें तब प्रभुही सब सिद्ध करें, तासूँ सर्वात्माकरिकें शरणागति होयगी तो प्रभुही सब सिद्ध करेंगे, ये गूढ़ अभिप्राय है, तब प्रथमसूँही शरणागतिको उपदेश क्यों नहीं कर्यो, ऐसी शङ्काकी निवृत्तिके लिये सर्वा-

त्माकरिकें शरणमन्त्र कह्यो करनों, ऐसो कह्यो है। इतनें भक्तिमार्ग सम्बन्धी जितनी बाबत है तितनीं बाबतको विचार करिकें तामें प्रतिबन्ध तथा अपनी आशक्तिकों जब देखे तब सर्वात्माकरिकें शरणागति होय, निरन्तर कह्यो करनों ऐसें बतायवेकेलिए मूलमें "नित्य" पद कह्यो है, अन्तः करणमें तेसो भाव होय अथवा न होय तथापि तेसें बोलनो आवश्यक है, ऐसें जतायवेके लिये सतत बोलनों ऐसें कह्यो है, ऐसें कह्यो करें तामें लोककों शिक्षाहु होयजाय है, अथवा यह अष्टाक्षर मन्त्र हमेशां कह्यो करनों और सेवापारायण होयकें रहनों ऐसोहु अर्थ होय है, येहु अपनसूँ होयसके ऐसो नहीं है, ऐसी शङ्का होय तहाँ कहत हैं जो ऐसी मेरी मति है; इतने दशम-स्कन्धमें अक्रूरजीनें श्रीकृष्णकों कह्यो है जो "आपके चरणारविन्दके शरण में आयोहू सो आपको अनुग्रह है ऐसें मानूहूँ" ऐसो वाक्य है; तासूँ भगवान को अनुग्रह होय तबही जीव भगवानके शरण जाय, सो जो हमारे भक्त भगवानके शरण गये हैं, बिनकी ऊपर भगवानको अनुग्रह है ऐसें समझिकें हमनें जो कह्यो है, बाहिप्रमाण करनों ऐसें जतायो है ॥ ६ ॥

॥ इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितनवरत्नकी संक्षिप्त भाषाटीका
श्रीमद्गोस्वामिश्रीनृसिंहलालजीमहाराज-
विरचित समाप्त भई ॥

—०—

* श्रीकृष्णाय नमः *

* श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः *

अथ अन्तःकरणप्रबोधकी संक्षिप्त भाषाटीकाको प्रारम्भ

★★

श्रीआचार्यजी महाप्रभूननें सेवाको उपदेश कियो ताके निर्दोषपनेके लिये सिद्धान्तरहस्यग्रन्थ कर्‍यो तामें ब्रह्म सम्बन्ध करिकें सेवाकरिवेवारेंनको सर्वदोष अकिंचित्कर होयजाय हैं, और अगाडी दोषको संसर्ग नहिं लगे है, ऐसी भगवान्‌की आज्ञा भई ताको निरूपण करिकें सेवाको आधिदैविकपनो सिद्ध होयवेके लिये नवरत्नग्रन्थमें चिन्ताकी सिद्धान्तको उपाय कह्यो, ताकरिकें उद्‌वेगरूप प्रतिबन्धको प्रकार निरूपण कर्‍यो ताप्रमाण सेवा करे तब भगवानको सानुभव अपनो आप होनो चहियें सो भयेतेंहू प्रारब्धादिकके वशसूँ प्रथमके दोष है, तब छोटे पात्रमें बड़ीकृपाको समावेश होय नहिं तब वाको अपनी बड़ाईकी स्फूर्ति होय, तब भगवानकी आज्ञाको भंग होयवो कहूँ सम्भव है सो जब आज्ञा भंग करे तब भगवानकी अप्रसन्नता होय परन्तु भगवद्धर्मरूपसेवा हमेशां करत है ताको नाम होय है तथापि भगवानको अपराध भयो होय तासूँ पश्चात्ताप होय, चिन्ता होयवेको संभव है तब जो सेवा करे हैं तथा करेंगे ताको अधिदैविकीपनों नहिं होय, ताकी निवृत्तिके लिए या ग्रन्थमें विचाररूप साधनको उपदेश करिवेकूँ, तामें विश्वास होयवेके लिये बीचमें अपनी आख्यायिका कहिकें मनकी दुष्टवृत्ति उत्पन्न न होय तब ऐसी चिन्ता न होय ऐसें निश्चय करिकें अपने अन्तःकरणकों बोध करिवेके

सेवा को आधिदैविकता सिद्ध भयेसूँ भगवानको प्राकट्य और सानुभाव भयो तब यद्यपि दोष रहिवेको सम्भव नहिं है तथापि विशेष कृपाको पात्र न भयो येहू दोष है ऐसे अभिप्रायसूँ दोष रहिवेको कह्यो है ऐसें समझनों।

मिषतें अपनो वाक्य श्रवण करिवेके लिए अपने भक्तनके अन्तःकरणकों सावधान करिके कहत हैं, तामें श्रीठाकुरजीनें अपनी वाणीके अधिपतिरूप श्रीआचार्यजी महाप्रभूनको प्राकट्य करिकें श्रीभागवतको यथार्थ अर्थ प्रकट करिवेकी आज्ञा देकें श्रीआचार्यजी द्वारा श्रीसुबोधिनीजी (टीका) करवाई, तामें तृतीयस्कन्धतांई श्रीसुबोधिनी भई तब भगवान् श्रीआचार्यजीके विप्रयोगकूँ सहन न करि सके तासूँ अपनी पास पधारवेकी आज्ञा करी तब श्रीमहाप्रभूनने स्कन्धको क्रम छोड़िकें दशमस्कन्धकी श्रीसुबोधिनीजी करी इतने फेर अपने समीपमें पधारवेकी भगवानकी दूसरी आज्ञा भई, तब सम्पूर्ण श्रीभागवतके ऊपर श्रीसुबोधिनीजी भई न हती तासूँ आप आज्ञाको उल्लंघन कियो, तब भगवानकूँ श्रीआचार्यजीके मिलनकी आवश्यकता होयवेसूँ अति कृपायुक्त रोषपूर्वक आपने उनके पास पधारवेके लिये तीसरी वेर आज्ञा भई तब श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी भगवानको आग्रह देखिकें प्रथम दोय आज्ञाको उल्लंघन कियो है सो श्रीभागवतकी टीका करिवेकी प्रथम आज्ञा भई हती ताकी दृढ़ता अन्तःकरणमें हती तासूँ दोय आज्ञाका उल्लंकियो तब तीसरी आज्ञा भयेसूँ भगवानको आग्रह जानिकें ऐसी दृढ़ताको स्थानक अन्तःकरणही है ऐसो दिखायवेके लिये अन्तःकरण को प्रबोध करत हैं—

अन्तःकरण ! मद्वाक्यं सावधानतया शृणु ।
कृष्णात्परं नास्ति दैवं वस्तुतो दोषवर्जितम् ॥ १ ॥

भावार्थ—कहै अन्तःकरण ! सावधानतासूँ मेरे वाक्यकों श्रवण कर, यहाँ साधारण अन्तःकरण लिख्यो है, तासूँ अपनो तथा दूसरेको अन्तःकरण समझवेमें आवत है, तथापि समाप्तिमें कह्यो है जो ये सुनिकें भक्त निश्चितपनेकूँ प्राप्त होंय; तासूँ भक्तनके अन्तःकरणकों बोध करिवे के लिये ही अपने अन्तःकरणके मिषसूँ यह वाक्य कहे है, ऐसें अन्तःकरणकों सावधान करिकें, ब्रजभक्तनके दृष्टान्तसूँ अपने वैष्णव, भगवानकी आज्ञामें प्रमादयुक्त होय सो नहिं होयवेके लिये प्रथम भगवानकी बड़ाईकी भावना करिवेकों कहत हैं, जो लोक तथा वेदमें कहे, ऐसे दोष न करिकें विवर्जित जिनकों रासक्रीड़ा मिली है, ऐसो ब्रजभक्तनको समूह श्रीकृष्णसों भिन्न नहिं है तासूँ विनको दृष्टान्त लेयकें भगवानकी आज्ञामें प्रमाद नहिं राखनों, यद्यपि भगवानकी सेवामें सर्व इन्द्रियनको उपयोग है तासूँ सब इन्द्रियनकों वध करनो योग्य है तथापि जेसें राजा स्वाधीन भयेसूँ सब राज्य के मनुष्य तथा प्रजा

स्वाधीन होय जाय, तेसें मन है सो सब इन्द्रियनको राजा है तासूँ मन वशमें आयवेसूँ सब इन्द्रिय वशमें होय जाय, ऐसें जतायवेके लिये अन्तःकरणकों ही बोध कियो है ॥ १ ॥

ऐसें अपने अन्तःकरणमें भावकी बड़ाई आय जाय ताकी निवृत्ति करिकें जीवकूँ दैन्यकी सिद्धि होयवेके लिये जीव स्वभावसूँ हीन हैं, ऐसें जतायवेकों दृष्टान्त कहत हैं—

चाण्डाली चेद्राजपत्नी जाता राज्ञा च मानिता ।
कदाचिदपमाने वा मूलतः क्षतिर्भवेत् ॥ २ ॥

भावार्थ—चाण्डाली होय सो कछुगुण करिकें कदाचित् राजाकी पत्नी भई और दूसरी पत्नीकी अपेक्षासूँ वाकूँ मानयुक्त करी, फिर कछुक अपराध भयेसूँ राजानें वाको अपमान कियो तामें मान होयवेके मूलरूप राजपत्नीपनेसूँ कहा क्षति होय है ? इतने राजा बिना और कोऊ वाकूँ देख न सके, स्पर्श न कर सके और अन्यके विनियोगमें न आवे तथा राजपत्नीपनेकी बड़ाई इत्यादिक धर्म जो आये सो न्यून नहिं होय हैं, तेसें चाण्डाल जाति अपमानके कारणरूप है तासूँ वामें तो क्षति है ही नहीं, परन्तु राजपत्नीपनेसूँ ही क्षति नहीं है, यज्ञमें पतिके सङ्ग बेठिवेयोग्य होय सो ही पत्नी कहि जाय है; तासूँ ये चाण्डाली राजाकी स्त्री भई तोहू पत्नी नहिं कहि जाय तथापि जेसें पत्नी त्याग योग्य नहिं है तेसें ये हू त्यागयोग्य न होय ऐसें जतायवेके लिए यहाँ पत्नीशब्द कह्यो है ॥ २ ॥

ऐसें दृष्टान्त कहिकें सिद्धान्तमें याकी बरोबरता जतायकें तेसी समझको फल कहत हैं—

समर्पणादहं पूर्वमुत्तमः किं सदा स्थितः ।
का ममाऽधमता भाव्या पश्चात्तापो यतो भवेत् ॥ ३ ॥

भावार्थ—सेवाके अधिकाररूप ब्रह्म सम्बन्ध भयेके पहिलेमें चाण्डाली वत् सर्वदोष सहित हतो तब कहा सर्वकाल उत्तम हतो ? किन्तु उत्तम नहिं हतो; जेसें चाण्डाली राजपत्नी भई तेसें में हू समर्पणसूँ ही उत्तम भयो हूँ, तासूँ कदाचित् भगवान्की अप्रसन्नता होय तोहू मेरो अङ्गीकार कियो है, तासूँ भगवान् सर्वथा मेरो त्याग न करेंगे और में अधम न होऊँगो, जेसें

चाण्डाली राजपत्नी भई होय ताको राजा त्याग न करे और फिर चाण्डाली न होय, तेसें अब मेरी अधमता कहा होयवेवारी है ? जासूँ पश्चात्ताप होय, इतनें राजाकी स्त्री राजकुमारी होय तब ताको अपमान होय तो पश्चात्ताप होय, क्यों जो दोउ समान हैं परन्तु चाण्डालीकों राजानें राजपत्नी करी फिर ताको अपमान होय वामें वाको पश्चात्ताप करनों योग्य नहिं है, तेसें जीव अत्यन्त हीन हतो ताको अङ्गीकार करिकें भगवदीय कियो तब वाको भावकी बड़ाई होयवेसूँ अभिमान भयो तव प्रभु अप्रसन्न भये तामें जीवकी मानहानि कहा है ? जो पश्चात्ताप होय ! तासूँ पश्चात्ताप न करनो ॥ ३ ॥

ऐसें जीवके स्वरूपकों देखिकें विचारको उपदेश करिकें भगवानकी इच्छा कोई मिटायसकें ऐसें नहीं है ऐसो अनुसन्धान रहिवेके लिये भगवानके धर्मको विचार करिकें उपदेश करत हैं—

सत्यसंकल्पतो विष्णुर्नान्यथा तु करिष्यति ।
आज्ञैव कार्या सततं स्वामिद्रोहोऽन्यथा भवेत् ॥ ४ ॥

भावार्थ--भगवान् विष्णु हैं इतनें बाहिर-भीतर सर्वत्र व्याप्त हैं तासूँ अपने अंतर्यामिपनेसूँ सबनके भीतर प्रविष्ट हैं और सत्यसंकल्प हैं सो अपनो जो सत्य संकल्प है तासूँ दूसरे प्रकार करिकें तो न करेंगे जेसो संकल्प होयगो तेसें हि करेंगे, अथवा भगवान् सत्यसंकल्प हैं तासूँ अन्यथा न करेंगे, इतनें फलदानमें विलम्ब न करेंगे, तासूँ सर्वदा प्रभूनकी आज्ञाके अनुसार सब करनों जो ऐसें न करे तो स्वामिद्रोहरूप बड़ो अपराध होय ॥ ४ ॥

सेवकपनेके विचारके अनुसार अपनो धर्म करिवेसूँ स्वामिपनेके विचारके अनुसार प्रभु अपनो धर्म करेंगे ये कहत हैं—

सेवकस्य तु धर्मोऽयं स्वामी स्वस्य करिष्यति ।

भावार्थ--जो ऊपरके श्लोकमें सेवकको धर्म कह्यो है सोई वाको धर्म है सो धर्म जो तोमें होय तो अपने स्वामी जो प्रभु सो हू अपने स्वामीपनेको जो धर्म है सो सेवकमें करेंगे, अथवा प्रभु अपने स्वामी हैं और अपन विनके सेवक हैं तासों अपनें विनके आत्मीय हैं तासूँ जो-जो भगवाननें विचारयो होयगो सो अपने हितको ही होयगो और सोहि करेंगे ऐसें समझनों येही सेवकको तो धर्म है ॥ ४ ॥

अपनें प्रभुके सेवक हैं ऐसो विचार अवश्य करनो चहियें जतायवेके लिये दो श्लोक करिकें अपनी आख्यायिका कहत हैं—

आज्ञा पूर्वं तु या जाता गंगासागरसंगमे ।
याऽपि पश्चान्मधुवने न कृतं तद्दूयं मया ॥ ५ ॥

देहदेशपरित्यागस्तृतीयो लोकगोचरः ।
पश्चात्तापः कथं तत्र सेवकोऽहं न चान्यथा ॥ ६ ॥

भावार्थ – प्रथम गंगासागर संगमके प्रदेशमें जो आज्ञा भई हती और ता पीछे मथुराजीमें जो आज्ञा भई सोई आज्ञाप्रमाण मेंनें नहिं कियो है । क्यों जो प्रभूनके स्वरूपको अनुभव प्रकट करिवेके लिये तथा श्रीभगवानको गूढार्थ प्रकट करिवेके लिये तो मोकूँ पूर्वसूँ ही आज्ञा भई है, तासूँ इन दोउ आज्ञानको उल्लंघन कियो है; क्यों जो प्रथम आज्ञा देहके परित्याग विषय की भई हती, और दूसरी आज्ञा देशके परित्यागके विषयकी हती सो दोई आज्ञा सिद्ध करतो तो स्वात्मानुभाव तथा श्रीभागवतको गूढार्थ प्रकाश करिवेकी आज्ञा सिद्ध न होती, अब लोकके अनुभवमें आवे, ऐसो परित्याग (संन्यास) करिवेकी तीसरी आज्ञा भई तामें मोकूँ पश्चात्ताप भयो, क्यों जो में सेवक हूँ तासूँ स्वामीकी आज्ञाप्रमाण करनो योग्य है, परन्तु स्वामीकी आज्ञाको उल्लंघन करनो योग्य नहीं है ऐसो विचार करतें पश्चात्ताप होनो योग्य है, अथवा संन्यासग्रहण पूर्वक गृहको परित्याग करिवेकी आज्ञा भई ता प्रमाण संन्यासग्रहणपूर्वक गृहको परित्याग कियो, यद्यपि दोय आज्ञाको उल्लंघन कियो है; तासूँ अपराध होयवेको सम्भव है, तथापि तृतीय आज्ञा प्रमाण त्याग कियो है, तासूँ प्रथमकी दोय आज्ञा हू सिद्ध भई ऐसें मानिकें पश्चात्ताप करनो योग्य नहीं है, कदाचित् दो आज्ञाको हू उल्लंघन कियो है, ता करिकें जो अपराध भयो है, तासूँ प्रभु फलमें बिलम्ब करें तो हू ये फलको विलम्ब कियो है, सोही दण्ड दियो है, ऐसो जानिकें सेवककों पश्चात्ताप करनो योग्य नहीं है, और मैं सेवक हूँ अन्यथा नहीं हूँ, क्यों जो मेरे में प्रभु सेवकपनो नहिं मानते तो अपराध भयो तासूँ उपेक्षा ही करते, स्वीयपनो जानिकें तीसरी आज्ञा न करते, परन्तु तीसरी आज्ञा करी है, और दोय आज्ञाको उल्लंघन भयो, तासूँ फलमें विलम्ब होयगो, ऐसो ताप होय है तासूँ प्रभूननें ये अपनों सेवक है ऐसें मान्यो है, तासूँ पश्चात्ताप करनो योग्य नहीं है ॥ ५ ॥ ६ ॥

ये विचार कियो जो पश्चात्ताप न करनो सो तो योग्य ही है, तथापि प्रथम दोय आज्ञाको उल्लंघन भयो है, सो अपराध भयो है ताकरिकें भगवानकी अप्रसन्नता भई होयगी, ताकी निवृत्ति न होय, तब प्रभु कहा करेंगे ? ऐसो जो भय होय सो कैसें निवृत्त होय ? ऐसी शङ्का होय ताके लिये दूसरो विचारको उपदेश करत हैं—

लौकिकप्रभुवत्कृष्णो न द्रष्टव्यः कदाचन ॥ ७ ॥
सर्वं समर्पितं भक्त्या कृतार्थोऽसि सुखी भव ।

भावार्थ—लौकिक स्वामी जैसें सेवकको अपराध भयो होय तो वाको त्याग करत है, तैसें प्रभु अपनो त्याग करेंगे, ऐसो सन्देह नहिं करनो, ऐसें जतायवेके लिये कहत हैं, जो लौकिकस्वामिवत् फलरूप श्रीकृष्ण काहू दिन नहिं जानने; इतनें लौकिकमें स्वामिपनेको व्यवहार है, सो स्वामी प्राकृत होयवेसूँ वाकों अङ्गीकृतको परित्याग (करे सो) सम्भवित है, परन्तु यहाँ तो प्रभुको अलौकिक स्वामिपनो होयवेसूँ विनको अङ्गीकार कालत्रयमें हू नित्य है, अङ्गीकृतको त्याग करिवेकी सम्भावनाहू नहिं है और तेरे ऊपर प्रभुकी कृपा हती तासूँही तेनें भक्तिमार्गके अनुसार सर्व समर्पित कियो है, इतने सूँ कृतार्थ है अर्थात् सर्व साधनरूप तथा फलरूप अर्थकूँ प्राप्त भयो है, तासूँ मनमें चिन्ता छोडिकें सुखी हो ॥ ७ ॥

भगवानको अङ्गीकार नित्य है तासूँ यद्यपि फल देयँगे तथापि प्रथम फल दियो हतो तैसें देयँगे किंवा नहिं देयँगे ? ऐसें सन्देहसूँ जो क्लेश होय ताकी निवृत्तिके लिये दृष्टान्त कहत हैं—

प्रौढाऽपि दुहिता यद्वत्स्नेहान्न प्रेष्यते वरे ॥ ८ ॥
तथा देहे न कर्त्तव्यं वरस्तुष्यति नान्यथा ।

भावार्थ—जैसें पुत्री बड़ी भई होय अर्थात् पतिके सर्वकार्यमें योग्य भई होय तथापि माता-पिताकूँ वाके ऊपर स्नेह होय, तासूँ ऐसें जाने जो ये बालक है और वाके पतिके घरमें कार्य विशेष है सो करिवेमें थकजायगी अथवा क्लेशयुक्त होयगी; ऐसें जानिकें वाके ऊपरके स्नेहसूँ वाके पतिके समीप भेजे नहिं तब वाको पति अप्रसन्न होय, तैसें अपने देहमें स्नेह राखिके प्रभुको कार्य (सेवा) करिवेमें देहकूँ क्लेश होयगो, ऐसें जानिकें प्रभुके कार्यमें देहको विनियोग न करे तो प्रभु अप्रसन्न होंय; तासूँ देहमें तेसो स्नेह न

करनो; क्यों जो पुत्री बड़ी भई ताकूँ वरके पास न पठावे तो जैसें वर प्रसन्न न होय, तैसें देहके ऊपर स्नेह राखिकें भगवानकी सेवामें देहकूँ न लगावे तो भगवान् प्रसन्न न होय ॥ ८ ॥

यद्यपि भगवानकी आज्ञामें हठ करनो योग्य नहिं है तथापि श्रीभागवतको अर्थ प्रकट करिवेको भगवानको अभिप्राय है ताप्रमाण अर्थ प्रकट-करिवेतें लोकमें बडाई होय तामें कदाचित् थोरीबहोत फलदेवेमें विलम्बकी इच्छा सम्भव है, क्यों जो श्रीभागवतको अर्थ प्रकट करें, तामें प्रभूनके पास-पधारिवेमें विलम्ब होय; तासूँ श्रीभागवतको अर्थ प्रकट करिवेको प्रभूनको अभिप्राय है तापेंसूँ विलम्बेच्छाको सम्भव है ऐसी शङ्काको निराकरण करत हैं—

लोकवच्चेत्स्थितिर्मे स्यात्किं स्यादिति विचारय ।
अशक्ये हरिरेवास्ति मोहं मागाः कथञ्चन ॥ ९ ॥

भावार्थ—लोकवत् मेरी स्थिति जो होय तो कहा फल होय ? सो विचारकर, और जहाँ अशक्य होय तहाँ प्रभु हरिहि हैं, अर्थात् भक्तनके दुःख तथा पापकूँ हरिवेवारे हैं तासूँ काहू प्रकारसूँ मोहकूँ प्राप्त मतिहो, इतनें भगवानकूँ अभिप्रेत श्रीभागवतको अर्थ प्रकटकरिवेतें यद्यपि लोकमें बड़ाई होय, जैसें जैमिनि तथा व्यासादिकनने वेदसूँ अविरुद्ध मीमांसा करी तामें विनकी लोकमें बडाई भई, तैसें मेंहू वेदादिकनसूँ अविरुद्ध ऐसो श्रीमद्भागवतको अर्थ प्रकट करूँ तामें जैमिनि तथा व्यासादिकवत् मेरीहू बड़ाई होय, परन्तु ये तो लौकिक बड़ाई, कछू स्वमार्गीय अलौकिक बड़ाई नहीं है, और स्वमार्गीयफलको विचार करें, तब मुक्तिविगेरें फल हू फलरूप नहिं है, तहाँ लौकिक फल तो गिनतीहूमें कहा है ? ऐसें विचार कर, अथवा लोक जैसें संसारमें आसक्त हैं और जूदे-जूदे स्वाभाववारे हैं सो अपनें स्वभावके अनुसार शास्त्रादिक करिकें चलत हैं, तैसें मेरी स्थिति होती, तब ऐसो पश्चात्ताप नहिं होतो तब कहा फल मिलतो ? लोकतुल्य मेंहू होतो, परन्तु लोक जैसी मेरी स्थिति नहिं भई है, तासूँ मेरे ऊपर भगवान् दया करत हैं, ऐसो विचार कर, और भगवाननें आज्ञा करी है, ता प्रमाण होयसके नहिं, ऐसें दीखतो होय तो भगवान् हरि हैं, इतनें स्मरणकरिवेवारेनके सब पापनके हर्ता हैं, सो अपनें हू रक्षक हैं ऐसो विचार कर, परन्तु काहूरीतिसूँ मोहकों मति प्राप्त हो ॥ ९ ॥

ऐसें सब बिचारके बाक्य कहिकें समाप्ति करत हैं—

इति श्रीकृष्णदासस्य वल्लभस्य हितं वचः ॥१०॥
चित्तं प्रति यदाकर्ण्य भक्तो निश्चिततां व्रजेत् ॥११॥

॥ इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितोऽतःकरणप्रबोधः समाप्तः ॥

भावार्थ--ऐसें श्रीकृष्णके दासकों सुख सम्पादनकरिवेवारे, भगवान् तथा भक्तनके प्रिय ऐसे श्रीमद्वल्लभाचार्यजी को चित्तप्रति वचन है, जो सुनिकें भक्त निश्चिन्तपनेकों प्राप्त होय ॥१०॥११॥

या ग्रन्थमें इतनो सिद्ध भयो जो श्रीआचार्यजी महाप्रभूननें जैसें भगवानकी आज्ञाको उल्लंघन कियो तेसें वैष्णवनकूँ श्रीआचार्यजीको दृष्टान्त लेयकें भगवानकी आज्ञाको उल्लंघन नहिं करनों, जीव जो है सो स्वभावसूँ ही दुष्ट है, तथापि—समर्पणसूँ उत्तम होय हैं, तासूँ भगवानकी कृपा विशेष होय तोहू अपनी बड़ाई न माननी, भगवान् सत्यसंकल्प हैं, सो कहा करिवेकी इच्छा करत हैं ? सो जानिवेमें नहिं आवत है, तासूँ सर्वदा विनकी आज्ञाही में रहनों, जो आज्ञाको उल्लंघन होय तो स्वामिद्रोहरूप बड़ो अपराध होय, और मैं सेवक हों तासों मेरे योग्यहि मेरे स्वामी आज्ञा करेंगे, ऐसो विचार करिकें सेवककूँ स्वामीकी आज्ञाहीमें रहनो, श्रीआचार्यजीने अपनी प्रौढ़ीकरकें दोय आज्ञाको उल्लंघन कियो, तामें पश्चात्तापहि कह्यो है; तासूँ आपनें आज्ञाको उल्लंघन करनो नहिं, लौकिकस्वामी जैसें अपराधकरिकें सेवकको त्याग करे हैं तैसें भगवान् सेवक कों नहिं छोड़ेंगे, भगवानको अंगीकार नित्य है, सो समर्पणादिकनसूँ सिद्ध भयो, तब कृतार्थताहि होयगी, ऐसी भावना रखनी, वामें सन्देह नहिं करनो, और प्रौढ़पुत्रीमें स्नेह जैसे राखें हैं तैसें देहमें स्नेह नहिं राखनो, प्रभुके विनियोगमें लगावनो क्यों जो प्रौढ़ पुत्री वरके पास भेजवेयोग्य है तथापि वाकूँ स्नेहकरिकें वाके वरके पास भेजे नहिं तो वर प्रसन्न होय नहिं तैसें देह प्रभूनकी सेवाके योग्य है, तथापि याकूँ श्रम होयगो, ऐसें विचारिकें देहके ऊपर स्नेह राखिकें प्रभूनकी सेवामें रखे नहिं तो प्रभु प्रसन्न होय नहिं, तैसें अपनी सेवाके लिये प्रभूननें देह दियो है और प्रभूननें अंगीकार कियो है, तथापि जो सेवा न करे तो दूसरे लोककी बराबरी अपनकूँ होय, और सेवामें देहको विनियोग करिवेमें प्रतिबन्ध आयवेको सम्भव होय तो भगवान्हि रक्षकहैं, ऐसी भावना राखनी, या विना दूसरो उपाय नहिं है ।

॥ इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितअन्तःकरणप्रबोधःकी संक्षिप्त व्रजभाषाटीका श्रीमद्गोस्वामिश्रीनृसिंहलालजीमहाराज- विरचित समाप्त भई ॥ ★

विवेकधैर्याश्रयनिरूपणम्

* श्रीकृष्णाय नमः *

* श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः *

अथ विवेकधैर्याश्रयग्रन्थकी संक्षेपसूँ भावार्थटीका लिखी है

भक्तिमार्गमें अङ्गीकारभयेसूँ जीव, भगवानके दासपनेसूँ प्राप्त भयो और भगवत्सेवामें प्रवृत्त भयो; तब सेवा करिकं भक्तिकी दृढ़ता होयवेकेलिये नवरत्नग्रन्थमें प्रकार कह्यो है, ताप्रमाण त्याग करिवेको निरूपण करिवेमें यद्यपि विवेक, धैर्य और आश्रय संक्षेपसूँ कह्यो हैं तथापि जबतांइ विवेकादिकनको विशेष ज्ञान न होय तबताँइ सेवामें जैसो दृढ़ता होय नहिं; तासूँ अपने सेवकनकूँ विशेष दृढ़ता होयवेकेलिये श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी विवेक, धैर्य और आश्रयकों विस्तारसूँ निरूपण करत हैं—

विवेकधैर्ये सततं रक्षणीये तथाऽऽश्रयः ।
विवेकस्तु हरिः सर्वं निजेच्छातः करिष्यति ॥१॥

भावार्थ—विवेक और धैर्य सर्वदा राखने तैसें ये दोउनकी सिद्धिके लिये आश्रय हू सर्वदा राखनो; तामें प्रथमविवेक तो यही है जो प्रभु हरि हैं; अर्थात् भक्तनके दुःख तथा पापकों हरिवेवारे हैं, ऐसें समजनो सो प्रथम विवेक है; इतने अपने प्रयत्नसूँ सिद्ध होय ऐसो लौकिक और भगवत्सेवामें उपयोगमें आवे, ऐसो अलौकिक सब भगवानहि सिद्ध करेंगे तासूँ सेवा

छोडिकें अपनो प्रयत्नादिक नहीं करनो सो प्रथम विवेक है, येही नवरत्नमें "चिन्ता काऽपिन कार्या" या श्लोकमें निरूपणकियो है,तहाँ शङ्काहोय जो प्रार्थना किये विना भगवान् कैसें सिद्ध करेंगे ? तहाँ कहत हैं जो प्रभु अपनी इच्छासूँ करेंगे अथवा अपने भक्तनकी विकाररहित इच्छा होयगी तो भक्तनकी इच्छाप्रमाण करेंगे, ऐसें समझनो; तासूँ अपने भक्तनकूँ जो इच्छित है तामें विकार नहीं होयगो तो भक्तनको अभीष्ट प्रभु अपनी इच्छासूँही सिद्ध करेंगे, प्रार्थनाकी अपेक्षा नहीं राखेंगे; तातें प्रार्थना नहीं करना ये द्वितीय विवेक हे, येही 'सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा" ये नवरत्नके श्लोकमें निरूपण कियो है ॥१॥

बारम्बार प्रार्थना क्यों नहि करनी ? ऐसें जानिवेकी इच्छा होय तहाँ कहत हैं—

प्रार्थिते वा ततः किं स्यात् ? स्वाम्यभिप्रायसंशयात् ।
सर्वत्र तस्य सर्वं हि सर्वसामर्थ्यमेव च ॥ २ ॥

भावार्थ—प्रार्थना किये तें कहा होय ? कच्छुभी न होय; क्यों जो स्वामिको अभिप्राय कहा है ? सो अपनें नहिं जानें हैं, भगवान् अपनी इच्छासूँ ही देयँगे इच्छा नहिं होयगी तो नहिं देयँगे; तासूँ प्रार्थना करिकें स्वधर्मकी हानि क्यों करनी ? ऐसें समजनों, सो तृतीय विवेक है, सब स्थलनमें सर्व वस्तु भगवानकी ही है और जो वस्तु न होय सो सिद्धकरिवे को सामर्थ्य हू भगवानमें है, तैसें जाकूँ जो वस्तु अपेक्षित है सो साक्षात् अथवा परम्परासूँ प्रभुही देत हैं परन्तु जीव अज्ञानी है सो मेंनें यत्नकरिकें सिद्ध करी ऐसें मानत हैं; तासूँ जीवकूँ ऐसें समजनो जो में शरण नहिं आयो हतो तब मेरे पास जो वस्तु हती सोहू प्रभूननेही दीनी हती, तब अभी तो प्रभूनने मेरो अङ्गीकार कियो है तासूँ प्रार्थना किये विनाही प्रभुही देयँगे ऐसो निश्चय करिकें सेवाहि करनी परन्तु सेवा छोडिकें अपनो प्रयत्नादिक नहिं करनो, सो चतुर्थ विवेक है ॥ २ ॥

यहाँ ऐसी शङ्का होय जो कछुक समय सेवा करनीं और बाकीके समयमें दूसरो कार्य करे तो कहा दोष है ? तहाँ कहत हैं—

अभिमानश्च संत्याज्यः स्वाम्यधीनत्वभावनात् ।
विशेषतस्त्वेदाज्ञा स्यादन्तः करणगोचरः ॥ ३ ॥
तदा विशेषगत्यादि भाव्यं भिन्नं तु दैहिकात् ।

भावार्थ—स्वामिके आधीन सब है ऐसी भावनासूँ वासनासहित अभिमानको त्याग करनो; इतने याको अभिप्राय यह है के समर्पण भये पीछें देहादिकनमें अपनेपनेको अभिमान नहिं राखनो; क्यों जो देहादिकनमें स्वतन्त्रता करिकें अभिमान होय तो तिनमें देह तथा इन्द्रियनको विनियोग होय; तासूँ तिनदेहादिकनमेसूँ अभिमानको त्यागकरिकें देहादिक सब भगवानमें अर्पित किये हैं, तातें सब भगवानके आधीन हैं ऐसी भावना करनी, और जब ऐसी भावना भयी तब केवल भगवानके आधीनपनेको अनुसन्धान सर्वदा रहे इतने भगवत्कार्यविनाके और सब कार्यनमें दोषकी स्फूर्त्ति होयगी ताकरिकें अपने स्वामी जो भगवान् तिन सम्बन्धिकार्यमेंहि स्वधर्मपनेकी स्फूर्त्ति होयगी, इतने वह वैष्णव प्रभुसेवाहि करेगो, दूसरेमें दोषरूप बुद्धि होयवेसूँ दूसरो कार्य करेगो नहिं, ये पंचम विवेक है, येही नवरत्नमें "निवेदनं च स्मर्त्तव्यम्" या श्लोकके विवरणमें श्रीगुसांइजीने निरूपण कियो है, अपनो अङ्गीकार जैसें प्रभूनने कियो है तैसें स्त्री, पुत्रादिक सबनको अङ्गीकार अपने संगहि प्रभूनने कियो है तासूँ तिनकेलिये हू अपनो प्रयत्नादिक नहिं होयगो, येहि नवरत्नमें "चिन्ता कापि" या श्लोकके व्याख्यानमें "लौकिकी तथा अलौकिकी चिन्ता छोडनी" ऐसी पंक्तिसूँ निरूपण कियो है, ऐसें श्रीआचार्यजी—महाप्रभूनकी आज्ञानुसार विवेकादिकनसूँ सेवा करतो होय तामें प्रभूनकूँ अपेक्षित वस्तु होय ताकी आज्ञा श्रीआचार्यजीकी आज्ञासूँ विशेष होय तो प्रभूनकी आज्ञाप्रमाण विशेष करनो और जो विशेष आज्ञा होय नहिं तो श्रीआचार्यजीकी आज्ञानुसारहि सेवा करनी, प्रभूनकी विशेष आज्ञा कैसें जानिवेमें आवे ? ऐसी शङ्का होय तहाँ कहत हैं जो (प्रभु अन्तःकरणगोचर हैं इतने अन्तर्यामी हैं तासूँ) अन्तःकरणमें जानिवेमें आवे ऐसो आज्ञा होय; अर्थात् स्वप्नादि द्वारा प्रभु जतावें अथवा भक्तनके अन्तःकरणमें प्रभु विराजत हैं तासूँ आत्मापनेसूँ ही भक्तनकूँ स्फूर्त्ति रहे है इतने भगवानकी आज्ञाहु जानिवेमें आवत है ॥ ३ ॥

भगवानके स्वरूप तथा लीलाके सम्बन्धमें प्रभूनको विशेष आज्ञा होय तो ताप्रमाण सेवामें कृति करनो, नहिं तो श्रीआचार्यजीकी आज्ञानुसारहि करनी; सो प्रभूनकी विशेष आज्ञाहू अपने देहादिकके सम्बन्धसूँ भिन्न होय तब वा आज्ञाप्रमाण विशेष करनो; इतने स्त्रीके सम्बन्धको अथवा पुत्रादिकके विवाहादिकके सम्बन्धको जो कार्य होय तामें विशेष आज्ञा होयवेको सम्भवहू नहिं सो मूलमें भिन्न पदसूँ जतायो है येहि निरूपण नवरत्नमें "सेवाकृतिर्गुरोराज्ञा बाधनं वा हरीच्छया" या श्लोकमें कियो है; तासूँ

समर्पण कियेपिछें तदीयपनेको अनुसन्धान राखिकें प्रभूनके प्रसादपनेसूँ जितनो आवश्यक होय तितनोहि लौकिक सब करनों परन्तु आग्रहकरिकें विशेष नहिं करनों ये छट्ठो विवेक है।

सेवामें धनप्रभृति चहियें सो न होय तब करज करिकें सामग्रीप्रभृति सब करिवेको आग्रह राखनों के नहिं? ऐसें जानिवेकी इच्छा होय तहाँ कहत है--

आपद्धत्यादिकार्येषु हठस्त्याज्यश्च सर्वथा ॥ ४ ॥
अनाग्रहश्च सर्वत्र धर्माधर्माग्रदर्शनम् ।
विवेकोऽयं समाख्यातो धैर्यं तु विनिरूप्यते ॥ ५ ॥

भावार्थ—आपत्ति प्राप्त होय तब प्रथम जो सामग्रीप्रभृतिको नियम बांध्यो होय ताहिप्रमाण करिवेको हठ सर्वथा छोडनो; इतने करज करिकें नियमानुसार सब करनोहि ऐसो हठ सर्वथा नहिं करनो किन्तु विना प्रयत्न जो मिले तामें सन्तोष राखिके तितनोहि प्रभूनकों अर्पण करनो विशेषको आग्रह नहिं राखनो; क्यों तो पुष्टिमार्गकी मर्यादासूँ प्रभूनकूँ भक्त जो समर्पेगो सो प्रभु साक्षात् अंगीकार करेंगे, जहाँ प्रभु सम्बन्धिकार्यमेंहु हठ नहिं करनो तहाँ लौकिककार्यमें हठ सर्वथा नहिं करनो तामें तो कहा कहेनो? ये सप्तम विवेक है ॥ ४ ॥

वैदिककार्यमें कैसें करनो? ऐसें जानिवेकी इच्छा होय तहाँ कहत हैं जो स्मार्त्त तथा वैदिक सर्वस्थलनमें आग्रह नहिं करनो; इतने भगवत्सेवाकूँ छोडिकेंहु स्मार्त्तश्रौतादिकधर्मनको आचरण करनों ऐसो आग्रह सर्वथा नहिं करनो, किन्तु भगवानकी आज्ञासूँ प्राप्त भयो जो आवश्यक कर्म है सो सेवाके अनवसरमें करनों, मूलमें चकार है तासूँ साक्षात् भगवानको सम्बन्ध जामें न होय ऐसे सबकार्यनमें अनाग्रहहि राखनो ये अष्टम विवेक है, वैदिकधर्मनमें अनाग्रह कैसें होय? ऐसें जानिवेकी इच्छा होय तहाँ कहत हैं जो धर्म और अधर्मको अग्रदर्शन करनों; इतने इनके परिणामको विचार करनो सो या प्रमाणके जैसें श्रौतस्मार्तादिक धर्म और ये नहिं करिवेतें पाप लगे सो अधर्म ताको परिणाम विचारिकें जाके परिणाममें अधर्म दीखवेमें आवे सो नहिं करनो, जैसें स्मार्त्त, श्रौत और भगवद्धर्म तिनमें उत्तरोत्तर बलवान् है तासूँ श्रौत (वैदिक) धर्म करिवेमें स्मार्त्त धर्मको त्याग होय तामें दोष नहिं है तैसें भगवद्धर्म करिवेमें स्मार्त्त तथा श्रौतधर्मको त्याग होय तो

दोष[1] नहिं है; क्यों जो सबसूँ अधिकबलवारो भगवद्धर्म है ऐसें विचारिकें स्मार्त्त तथा श्रौतधर्मनमें आग्रह नहिं करनो ये नवम विवेक है, भगवानकी आज्ञा है जो कर्म करनों ताकूँ या मार्गमें प्रमाण नहिंमानें हैं। ऐसी काहुकूँ शङ्का होय सो नहिं होयवेके लिये भगवद्भक्तनकूँ कर्मादिक करनो है, ऐसें जाननों। यह विवेक विस्तारसूँ कह्यो, अब धैर्यको निरूपण विस्तारसूँ करत हैं; इनने नवरत्नमें "चित्तोद्वेगं विधायापि" ये श्लोकमें धैर्यको निरूपण कियो है, परन्तु अब विस्तारसूँ निरूपण करत हैं॥ ५॥

अब धैर्यको लक्षण कहत हैं—

त्रिदुःखसहनं धैर्यमामृतेः सर्वतः सदा।
तक्रवद्देहवद्भाव्यं जडवद्नोपभार्यवत्॥ ६॥

भावार्थ—मरणजेसो कष्ट आयजाय तहांताँई अथवा आयुष्य रहे तहांताँई आधिभौतिकादिक तीन्योप्रकारके दुःखकों सब तरेहसूँ सहन सदा करनों ताको नाम धैर्य है; इतने देह सम्बन्धि जो दुःख होय सो आधिभौतिक, कामादिकनसूँ इन्द्रियसम्बन्धि जो दुःख होय सो आध्यात्मिक और जीवमें कितनोक धैर्य है, ऐसें परीक्षाके अर्थ अथवा दुःख भुगतवेको जीवको प्रारब्ध होय ताके अर्थ भगवदिच्छासूँहि दुःख प्राप्त होय है सो अथवा प्रभूनकूँ विनियोगकरिवेके लिये जा वस्तुकी अपेक्षा होय सो वस्तु मिलिवेमें विलम्ब होय ता करिकें जो दुःख होय सो आधिदैविक दुःख समजनो; ये तीन्यो प्रकारके दुःख होंय तब देह, इन्द्रिय और चित्त व्याकुल होंय तब सेवा सिद्ध न होय; तासूँ सेवाकी सिद्धिके लिये तीन्योप्रकारके दुःखकों सहन करनों सोहू मरणपर्यन्त कष्ट आय परे तहांताँई अथवा आयुष्य रहे तहांताँई सहनकरनो; सोहु एकप्रकारके अथवा दोयप्रकारके दुःखकों सहनकरनों, ऐसें नहिं किन्तु सबतरेहके दुःखनकों सहनकरनों; तामें दृष्टान्त कहत

---

१ यहां स्मार्त्त तथा वैदिकधर्मको त्याग होय तामें दोष नहिं है, ऐसें कहिवेको अभिप्राय ऐसो है जो सर्वकाल भगवद्धर्ममेंहि जो रहतो होय ताकूँ स्मार्त्तादिकधर्ममें जितनों समय जाय तितनों समय भगवद्धर्म छूटे, तब ऐसे भक्तके मनमें क्लेश होय तासों स्मार्त्तादिकधर्मको फल होय नहिं और भगवद्धर्म छोडिकें स्मार्त्तादिकधर्म करे तोहु ताको फल न होय और उलटो पाप लगे ताकरिकें निरन्तर भगवद्धर्ममेंहि मग्न जो रहतो होय ताकूँ स्मार्त्तादिक धर्म छूटजाय तो हरकत नांहि।

हैं जो तक्र (छाछ) मेंसूँ नवनीत (मांखण) निकासले हैं तब तक्र साररहित होयजाय है, पिछे ढुलजाय तो जैसें वामें अभिमान नहिं होयवेसूँ दुःख नहिं होय है, तेसें देहके सम्बन्धीनमेंसूँ तक्रकिसीनांइ अभिमान छोडिवेसूँ वे अपमानादिक करेंगे ताको दुःख नहिं होयगो ऐसे अभिप्रायसूँ देहवारेनकूँ वाके सम्बन्धी जो स्त्रीपुत्रादिक तिनमें तक्रकी भावना राखिवेको कह्यो है; इतने देहादिकनसूँ जो भगवत्सम्बन्धि कार्य होय सोहि नवनीत (मांखण) है ऐसें समझकें भगवत्सम्बन्धि कार्यनमेंहि नवनीतवत् अभिमान राखनों ऐसें आधिभौतिकदुःख सहनकरिवेमें दृष्टान्त कहिकें आध्यात्मिक दुःख सहनकरिवेमें दृष्टान्त कहत हैं जो कामक्रोधादिकनसूँ इन्द्रियसम्बन्धि जो दुःख होय है तामें जडभरतकी भावना करनीं; इतने जडभरतकूँ जैसें भगवद्भाव करिकें आबिष्ट सब इन्द्रिय भयी हती, तासूँ दुःखको भान नहिं हतो और जडपनो भयो हतो तेंसें सेवामें जो प्रवृत्त भयो होय सो, सब इन्द्रिय भगवत्सम्बन्धि हैं, ऐसो अनुसन्धान राखिकें भगवानमेंहि विनियोग करे तब निरन्तर प्रभूनकी सेवा तथा गुणनके कीर्तन स्मरणादिकनकोहि आवेश रहे इतने कामक्रोधादिकनको दुःख न होय ऐसे अभिप्रायसूँ जडकी भावना करिवेको कह्यो है, ऐसें आध्यात्मिकदुःख सहनकरिवेमें दृष्टान्त कहिकें आधिदैविकदुःख सहनकरिवेमें दृष्टान्त कहत हैं जो प्रारब्धके भोग भुगतायवे की प्रभूनकी इच्छा होय अथवा परीक्षाके अर्थ प्रभु फलदेवेमें विलम्ब करें, तब गोपभार्यानकी भावना करनी; इतने जैसें अन्तर्गृहगतानकूँ सकामबुद्धि हती तासूँ दुःख भुगतवेको प्रारब्ध हतो सो, प्रभूनके सङ्ग रासमें मिलवेके फलके विलम्बमें कारण भयो तातें गृहमेंसूं निकसिवेको रस्ता मिल्यो नहिं तब नेत्र मूँदिकें प्रभूनको ध्यान कियो, तब प्रभूनके विरहको दुःख ऐसो भयो जो कोटानकोटिवर्षताँई कुंभीपाकादिक नरक भुगतवेमें जितनो दुःख होय तितनो दुःख विनकूं भगवानके विरहसूँ एक क्षणमें भयो सो भुगत्यो तब पापनकी निवृत्ति होयवेसूँ ध्यानमें प्रभु पधारे तब प्रभूनको आश्लेष कियो तामें ऐसो सुख भयो जो कोटानकोटि वर्षताँई स्वर्गादिक भुगतवेमें जितनो सुख होय तितनो सुख भगवानके आश्लेषसूँ एकक्षणमें भयो तापाछें सगुणदेहको परित्याग भयो तब भगवानकी प्राप्ति भई तैसें मोकूँभी प्रारब्धभोग भयेपिछे भगवान् फल देहिगें. ऐसें धैर्यसूँ दुःख सहनकरनों, तैसें जिनको निर्गुण देह हतो तिनकूँ प्रतिबन्ध न भयो और भगवानकी पास पहोचे तब प्रभूनने घर जायवेके लिये कितनेक वचन कहे तासमय यज्ञपत्नीवत् अन्यथाभाव जैसें विनकों न भयो, किन्तु जो इच्छा मनमें हती सो पूर्ण नहिं

होयवेको सम्भव भयो ताके दुःखकों सहनकरिकें धैर्यसूँ भक्तिमार्गके अनुसार उत्तरहि दियो, परन्तु गृहगमनकी इच्छाहू न भयी तैसेंहि सांप्रतहू बिलम्ब-जनितदुःखकों सहनकरिकें निरवधिस्नेहसूँ मार्गकी मर्यादामें रहिवेसूँ भगवान् फल देहिगें; ऐसो धैर्य राखिकें दुःखकों सहन करनों ॥ ६ ॥

अब इहाँतो आधिभौतिक दुःख सहनकरिवेमें देहादिकनके सम्बन्धी जो भार्यापुत्रादिक अपमानादिक करें ताकूँ सहनकरिवेको कह्यो है और निबन्धमें स्त्रीप्रभृति अनुकूल होय तो विनकीपास सेवादिक करावनों, उदासीन होय तो अपने हाथसूँ करे और प्रतिकूल होय तो गृहको त्याग करे, ऐसे कह्यो है परन्तु तिरस्कारादिकनसूँ भार्यादिक अपनकूँ दुःख दे नहिं तथापि त्याग हि करनो कहा ! ऐसी शङ्का होय तहाँ कहत हैं—

प्रतिकारो यदृच्छातः सिद्धश्चेन्नाग्रही भवेत् ।
भार्यादीनां तथान्येषामसतश्चाक्रमं सहेत् ॥ ७ ॥

भावार्थ—भगवदिच्छासूँ दुःखकी निवृत्तिको उपाय सिद्ध होजाय तो गृहको त्याग करिवेमें आग्रहवारो न होय, ऐसें स्त्रीप्रभृतीनको, दूसरेन को और असत्पुरुषनको आक्रम सहन करे, इतनें स्त्रीप्रभृति भगवदिच्छासूँ अनुकूल अथवा उदासीन होय तो विनको त्यागकरिवेमें आग्रहवारो न होय; तो विनकीपास प्रभूनकी सेवा करावे, और उदासीन होय तो आप सेवा करे, तथापि विनको योगक्षेम तो अवश्य करनो, त्याग नहिं करनो, सेवामें प्रतिकूल होयकें प्रतिबन्ध करे तोहि त्यागकरे नहिं तो त्याग सर्वथा न करे; क्यों जो हठकरिकें विनको त्याग करे तामें स्त्रीप्रभृतीनकूँ क्रोधको आवेश होय तब अपनो द्वेष करे तामें सेवामें प्रतिबन्ध होय तब सेवा बनसके नहिं सो सेवामें प्रतिबन्धक आपहि भये; तासूँ आग्रहसूँ सर्वथा त्याग नहिं करनो, ये आधिभौतिक दुःखके प्रतिकारमें व्यवस्था कहि, अब आध्यात्मिक दुःखके प्रतिकारमें व्यवस्था कहत हैं जो सब इन्द्रियनकूँ अपने-अपने भोग्यवस्तुके त्यागमें दुःख होय है सो भगवदिच्छासूँ प्रथमसूँ हि इन्द्रियनकी प्रवृत्ति विषयमें न होय तब विनको त्यागकरिवेमें आग्रहवान् न होय; क्यों जो सेवामें अन्तराय नहिं होय है और प्रभूनके लिये माला, चन्दनप्रभृति तथा सब भोगसामग्री अवश्य अपेक्षित है सो प्रभूनने अङ्गीकार किये पीछें महाप्रसाद दियो है सो अपने सौभाग्यरूप है, ऐसें जानिकें विनको उपभोग करिवेमें बाह्य तथा भीतरकी शुद्धि होय; तासूँ भगवद्धर्ममें आवेश होय

तातें विनको त्याग नहिं करनो; क्यों जो सेवाफलग्रन्थमें सेवाके तीन फल लिखे हैं तामें ये अलौकिक भोग मुख्यफलमें गिन्यो है, ऐसें आध्यात्मिक दुःखके प्रतिकारकी व्यवस्था कहिकें आधिदैविक दुःखके प्रतिकारमें व्यवस्था कहत हैं जो प्रारब्धभोग भयेपीछे अथवा प्रभु परीक्षाके लिये बिलम्ब करतें होय सो परीक्षा भयेपीछें कृपाकरिकें प्रभु सेवोपयोगि धनादिक साक्षात् अथवा परम्परासूँ देवेकी इच्छा करे तब विनको त्याग करिवेमें आग्रहवारो न होय, किन्तु भगवाननें अपने उपभोगके लिये यह दियो है, ऐसें मानिकें सब भगवानके अर्थहि उपयोग करनो स्वार्थोपयोग नहिं करनो. ऊपर आधिभौतिकादिक दुःखकों सहनकरिवेको कह्यो ताकी हकिकत लिखकें अब देहादिसम्बन्धि दुःख देवेवारे कौन ? ऐसें जानिवेकी इच्छा होय तहाँ कहत हैं। जो स्त्रीप्रभृति भार्यादिक कहेजाय हैं; तासूँ भरण-पोषण करिवेमें अपनी समान है, तिनकों भरण-पोषणहि अपेक्षित है धर्म अपेक्षित नहि है; इतनें देहादिक सब वस्तूनको अपनी बाबतमें विनियोग होय वाको नाम भरण-पोषण है सो न होय तब वे अतिक्रम करे ताको सहनकरनो, परन्तु क्रोधादिक करनो नहिं, तैसें अपनें सेवा पधरायी न होय तब सबनके सङ्ग मिलनादिकको जैसो व्यवहार करतें होय तेसो व्यवहार सेवा पधराये पीछे न रहे तब मित्रादिक तथा और हू लोक ईर्ष्या करिकें अतिक्रम करे ताकों सहन करनों, अथवा अपने भ्रातप्रभृति बन्धुलोक वैष्णव होय तथापि बन्धुपनेसूँ धनादिकके विभागादिकनमें द्वेष होयवेसूँ वेहू अतिक्रम करे तो वाकों सहनकरनों, तैसें अपनो दास होय [जो मूल्यसूँ लियो होय] सों स्त्रीपुत्रादिकनकीसीनाँई पोषण करिवेयोग्यमें अन्तर्भूत हे सौहु, विनके संगसूँ अतिक्रम करे तो ताकोंहू सहनकरनों, ये सब धर्मविरोधी कहे हैं और मूलमें चकार हैं तासूँ धर्मके अनुरोधी शिष्यभक्तादिक होय वे हु प्रमादसूँ जीवस्वभाव करिकें अतिक्रम करें तब यह प्रारब्धादिक भोग है ऐसी भावना करिकें धैर्य राखिकें ताके दुःखकों सहन करनों, परन्तु विनके ऊपर क्रोधादिक नहिं करनों, क्यों जो शिष्यभक्तनकूँहु अपनेंहि प्रभुसम्बन्ध करवायो है फिर विनकी ऊपर क्रोधकरिवेमें विनको अनिष्ट होय सो भगवदीयनको धर्म नहिं है जो अपनें जिनको अङ्गीकार कियो है तिनकों अनिष्ट करें; तासूँ विनके अतिक्रमकों सहनहि करनों ॥ ७ ॥

ऐसें सेवाके प्रतिबन्धकपनेसूँ स्त्रीप्रभृतीनके अतिक्रमकूँ सहनकरिवेको निरूपण करिकें सेवाके प्रतिबन्धकपनेसूँ भोगको त्यागकरिवेमेंहु तत्तदिन्द्रियजनित आध्यात्मिक दुःख होय ताकों सहनकरिवेको प्रकार कहत हैं—

स्वयमिन्द्रियकार्याणि कायवाङ्मनसा त्यजेत् ।
अशूरेणापि कर्त्तव्यं स्वस्यासामर्थ्यभावनात् ॥ ८ ॥

भावार्थ—काया, वाणी और मनकरिकें अपने भोगके लिये इन्द्रियनके कार्यनकूँ छोडनें, दुःख सहनकरिवेमें अपनी शक्ति न होय तोहु अपनो सामर्थ्य नहिं है, ऐसी भावना करिकें दुःख सहनकरनों; इतनें अपने भोगके लिये इन्द्रियनको कार्य करें तामें सेवामें प्रतिबन्ध होय तासूँ कायिक, वाचनिक और मानसिक इन्द्रियनके कार्यनकूँ छोडनें; इतने प्राकृतविषयमें इन्द्रियनकी प्रवृत्ति भयी होय सो छोडायकें अलौकिकमें प्रवृत्ति करावनीं; तामें जबताँई अलौकिकमें प्रवृत्ति भयी न होय तबतांई प्राकृतविषय छोडायवेमें दुःख होय ताकों सहनकरनों, और प्रारब्धभोगके लिये अथवा परीक्षाके लिये प्रभु बिलम्ब करें तब इच्छितवस्तूनकी प्राप्ति होय नहिं, तब बाको दुःख होय सो सहिसक्यो जायनहिं; क्यों जो ऐसो धैर्य होय नहिं, जैसें नित्य मिले तब अपनो निर्वाह होय ऐसो दरिद्र होय ताकूँ एकदिन कछू मिले नहिं तब सवेरमें लेवे (खावे) को कछू होय नहिं तब दुःख होय परन्तु वामें अपनो सामर्थ्य नहिं है, ऐसी भावना करिकें दुःखकों सहनकरनों, येहि हकिकत नवरत्नमें "चित्तको उद्वेग होय तबहु भक्तनके दुःखके हरिबेवारे हरि जो-जो करेंगे सो ऐसीहि विनकी लीला है ऐसें मानिके चिन्ताकूँ शीघ्र हि छोडे," ऐसी आज्ञा करी है वाको अनुसन्धान करिकें धैर्य हि राखनों ॥ ८ ॥

अपनसूँ जो दुःख निवृत्त होयसके ऐसो होय ताको हु सहन होय सके नहिं तब जहाँ अपनो सामर्थ्य हि न होय ऐसो दुःख होय ताको सहन तो सुतरां होय सके हि नहिं तब अशक्य उपदेश क्यों कर्यो है ! ऐसी शङ्का होय तहाँ कहत हैं—

अशक्ये हरिरेवास्ति सर्वमाश्रयतो भवेत् ।
एतत्सहनमत्रोक्तमाश्रयोऽतो निरूप्यते ॥ ९ ॥

भावार्थ—जब अपनी अशक्ति होय तब हरि हि रक्षक हैं ऐसें आश्रय राखे तो सब सिद्ध होय, यह धैर्यको स्वरूप कह्यो अब आश्रयकों निरूपण करत हैं; इतनें जो जीव सेवामें प्रवृत्त भयो है ताकूँ विवेकधैर्यादिककी स्थितिमें शक्ति न होय तब हरिहि शरण हैं ऐसी भावना करनी; क्यों जो

हरि भक्तनके सर्वदुःखहर्त्ता हैं सो कृपाकरिकें सब सम्पादन करेंगे तासूँ कहत हैं, जो आश्रयसूँ सब सिद्ध होय; इतनें जो अशक्य होय सो हु हरिके आश्रयसूँ सब सिद्ध होय और आश्रय न होय तो अपनसूँ शक्य होय सोहु सिद्ध न होय अर्थात् निःसाधनपनेसूँ शरणागति होय तब प्रभूनकी कृपासूँ विवेक और धैर्य एकहि समयमें सब सिद्ध होय, ऐसें धैर्यको स्वरूप निरूपणकरिकें आश्रयसूँ सब सिद्ध होय, ऐसें कह्यो है तासूँ आश्रयकों निरूपण करत हैं ॥ ९ ॥

प्रथम समुदायकरिकें आश्रयको स्वरूप कहत हैं—

ऐहिके परलोके च सर्वत्र शरणं हरिः ।

भावार्थ— यालोकमें और परलोकमें सबस्थलनमें हरि शरण हैं; इतनें भक्तिमार्गमें जाको अङ्गीकार भयो है और सेवामें प्रवृत्त भयो है ताकों सेवासिवाय दूसरो कर्म करनो सो स्वधर्म नहिं है तासूँहि ऐहिक तथा पारलौकिक साधन करे नहिं; क्यों जो तामें सेवामें अन्तराय होय तासूँ ऐहिक तथा पारलौकिककी सिद्धिके लिये हरिके शरणकीहि भावना करनी, परन्तु सेवा छोडिकें दूसरो साधन नहिं करनों, ऐसें समुदायकरिकें आश्रयको स्वरूप कहिकें अब जूदे-जूदे भेदसूँ आश्रयको स्वरूप कहत हैं—

दुःखहानौ तथा पापे भये कामार्थपूरणे ॥१०॥
भक्तद्रोहे भक्त्यभावे भक्तैश्चातिक्रमे कृते ।
अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरिः ॥११॥

भावार्थ--दुःखकी हानिमें, पापके निवारणमें, भयमें, कामके अर्थके पूरणमें, भक्त अपनो द्रोहकरे अथवा अपनसूँ भक्तको द्रोह होयजाय तामें, भक्तिके अभावमें, भक्त अतिक्रम करे तामें, अशक्यमें और सुशक्यमें सर्वथा हरिःशरण हैं;इतनें भक्तिमार्गीय जीवसेवामें प्रवृत्त भयो होय ताकूँ देह इन्द्रियादि-सम्बन्धि, आधिभौतिकादिक दुःख होय तासूँ चित्तमें उद्वेगादिक नहिं होयवेके लिये शरणकीहि भावना करनी, तैसें भक्तिमार्गमें प्रवृत्तभयेकी पहेलें प्रमादसूँ कछु पाप भयो होय अथवा सेवामें प्रवृत्त भये पीछें देह तथा इन्द्रियादिकनसूँ भगवदपराधादि—रूप—पाप होयजाय तो ताकी निवृत्तिके लिये शरणकी ही भावना करनी प्रायश्चित्तादिक कछू करनो नहिं; क्यों जो प्रायश्चित्तादिक करिवेसूँ शरणधर्म जातो रहे,ऐसें राजा तथा चौरादिकनसूँ

किंवा पापादिकनसूँ भय होय तामेंहु शरणकी भावना करनी, तैसें इच्छित कामना होय तिनके जो पदार्थ होय तिनकी प्राप्तिमें शरणकी भावना करनी तैसें प्रमादसूँ भक्तको द्रोह होयजाय अथवा भक्त अपनो द्रोह करे तो तामें शरणकी भावना करनी, तैसें सेवामें प्रवृत्त भयो होय परन्तु भगवत्स्वरूपमें स्नेह उत्पन्न न होय ताके लिये भक्त अपनो अतिक्रम करे अथवा तेसीहि कोई धर्मकी बाबतमें भक्त अतिक्रम करे तब अपनो दोष विचारिकें शरणकी भावना करनी, तैसें अपनसूँ होयसके नहिं ऐसे कार्यमें अथवा अपनसूँ होयसके, ऐसे कार्यमेंहु शरणकोही भावना करनी, अपने सामर्थ्यसूँ यह कार्य भयो है, ऐसो अभिमान करे तो शरणधर्म जाय; तासूँ सर्वात्माकरिकें तदीयपनेको अनुसन्धान राखिकें हरिशरणकीहि भावना करनी ॥१०॥११॥

अहंकारकृते चैव प्रोष्यपोषणरक्षणे ।
पोष्यातिक्रमणे चैव तथान्तेवास्यतिक्रमे ॥१२॥

अलौकिकमनः सिद्धौ सर्वार्थे शरणं हरिः ।
एवं चित्ते सदा भाव्यं वाचा च परिकीर्त्तयेत् ॥१३॥

भावार्थ—जीवस्वभावसूँ कोइके पास अहङ्कार करिवेमें, पाषण करिवेके योग्यनको पोषण तथा रक्षण करिवेमें, स्त्रीप्रभृतिपोष्यनके अतिक्रममें तथा शिष्यके अतिक्रममें और अलौकिक मन सिद्ध होयवेमें, सर्व अर्थमें हरिही शरण हैं, ऐसी चित्तमें सदा भावना करनी और वाणीसूँ ऐसें कह्यो करे; इतनें जीवस्वभाववशसूँ कोइके सङ्ग अथवा भक्तके सङ्ग अहङ्कार होय ता करिकें आसुरावेश होय ताको विवेक पीछेसूँ होय तब पश्चात्ताप होय तब शरणकीही भावना करनी अथवा प्रभुकी अत्यन्त कृपा होय तब प्रभूनके संगहि अहङ्कार होय तबहु ताके दोषकी निवृत्तिके लिये शरणकी हि भावना करनी, तैंसं अपनें पोषण करिवेयोग्य जो स्त्रीपुत्रादिक हैं तिनको पोषण तथा रक्षण करिवेमें तथा पोष्य ऐसे स्त्रीपुत्रादिकनको अतिक्रम होय, अथवा मूलमें चकार है तासूँ बन्धु तथा दास पर्यन्तनकोहु अतिक्रम होय तामें तथा शिष्य अपनो अतिक्रम करे तामें शरणकीहि भावना करनी, परन्तु क्रोध न करनों, तैसें मनकी अलौकिकताकी सिद्धिके लिये शरणकी भावना करनी, यहाँ मन लिख्यो है सो सब इन्द्रियनकों जतायवेवारो है इतनें देह, इन्द्रियादिक सबनको प्राकृत अंश निवृत्त होयकें जैसें अलौकिकपनो सिद्ध होय और सो सिद्धभये पीछें अलौकिकसकलपदार्थनकी

सम्पत्तिके लिये हु हरि ही शरण हैं, ऐसी भावना करनी; इतनें ज्ञानरूप जो चित्त है तामें सदा शरणकी भावना करनी और वाणीकरिकें उच्चार करनों क्षणमात्रहु उच्चार न करे तो वाही समय आसुरभावको प्रवेश होय, चित्तकूँ ज्ञानरूपपनो भयो न होय तोहु वाणीसूँ "श्रीकृष्णः शरणं मम" ऐसें कह्यो ही करनो, मूलमें चकार है तासूँ कायाकरिकें सेवा करनी, मनकरिकें भावना करनी और वाणी करिकें उच्चार करनो ऐसें तीन्यो प्रकारकी शरणागति निरूपित करी है ॥ १२ ॥

तहां शङ्का होय के कोइसूँ होयसके नहीं ऐसे बडे अर्थमें हरिकी शरणागतिकी भावना करनी, परन्तु अपनसूँ होयसके ऐसे अर्थमें भगवान् के ऊपर भार कायके लिये देनो चहियें? साधारण अर्थमें तो देवान्तरको भजन करे तो कहा अडचन है? ऐसी शङ्का होय तहाँ कहत हैं—

अन्यस्य भजनं तत्र स्वतो गमनमेव च ।
प्रार्थनाकार्यमात्रेऽपि ततोऽन्यत्र विवर्जयेत् ॥ १४॥

भावार्थ—अन्यदेवको भजन तथा अन्यदेवके सन्निधान आपसूँ चलायकें जानो, और प्रार्थनाके कार्यमात्रमें अपने स्वामी हरि सिवाय देवतान्तर की पास सब छोडनों; इतनें अन्यदेवको भजन तथा भजनके लिये गमनहु नहिं करनों, मूलमें चकार है तासूँ दूसरो प्रेरणा करे तोहु अन्यदेवके सन्निधान जाय नहिं; क्यों जो देवान्तरभजन और देवान्तरकी पास गमन छोडे नहीं तो शरणपदार्थ (आश्रय) जतो रहे, येहि न्यासादेशमें लिख्यो है जो प्रभूनसूँ अन्यको भजन और विनकीपाससूँ अपेक्षाहु छोडनी, तहाँ ऐसी शङ्का होय जो प्रभुकी पास प्रार्थना करनी, ये तो योग्य नहिं है तासूँ कछुकपदार्थकी अपेक्षा होय तब दूसरेदेवकी पास प्रार्थनामात्र करे, भजनगमनादिक करे नहीं तो कहा अड़चन? ऐसी शङ्का होय तहाँ कहत हैं जो दूसरे देवको भजन और विनकीपास गमनादिक जैसें छोडे तैसें स्वल्प तथा बडेकार्यमेंहु दूसरेदेवकीपास प्रार्थना छोडे, मूल में विवर्जयेत् ऐसे लिख्यो है ताको अभिप्राय ऐसो है जो सर्वथा प्रार्थना न करे, मूलमें बहुवचन है तासूँ काहुप्रकारकी प्रार्थना न करनी, ऐसो अभिप्राय जतायो है, यहाँ ऐसी शङ्का होय जो परम प्रेम, आसक्ति और व्यसन पर्यन्त प्राप्तभये ऐसे व्रजवासीननेहु दावानलकी निवृत्तिके लिये, क्षुधाकी निवृत्तिके लिये और वृष्टिकी निवृत्ति के लियेहु प्रार्थना करी है, तैसें कितनेक, मुक्तिप्रभृतीनकीहु प्रार्थना करत

हैं तो यहाँ प्रार्थनाको निषेध क्यों कर्यो है ? ऐसी शङ्काको समाधान यह है जो व्रजवासीनने दावानलके प्रसङ्गमें दोयविरियाँ प्रार्थना करी है तामें प्रथमकी प्रार्थनामें कह्यो है जो हम आपके चरणकूँ छोडिवेमें समर्थ नहीं हैं; इतनें दावानल सह्योजाय है परन्तु आपके चरणको विप्रयोग सह्यो नहिं जाय है, और दूसरीबिरियां प्रार्थना करी है ताको अभिप्राय ऐसो है जो प्रभूनके सङ्ग क्रीडामें साम्यबुद्धि भयी सो अपराध भयो है, परन्तु आप सिवाय हमकूँ तथा हम विना आपकूँ क्रीडा न होयगी और हमारो जीवनहु आप विना न रहेगो, तासूँ दावानलको भय हमकूँ नहिं है परन्तु आपके स्वरूपको अन्तराय हमकूँ नहिं सह्यो जाय है. ऐसे अभिप्रायसूहि प्रार्थना करी है; तासूहि हमारी रक्षा करो, ऐसें नहिं कहेतें रक्षा करिवेयोग्य हो ऐसें कह्यो है सो व्यसनभावसूँ कह्यो है अपने सुखकी अभिलाषासूँ कह्यो नहीं है, तैसें श्रीगोकुल तो फलरूप है सो भगवाननें अपनी लीलाके लिये फलोपयोगी सर्वरसात्मक प्रकट कियो है; तासूँ वहाँकी लीला बाहिर लोकानुसारिणी है और भीतर तो बहोतप्रयोजनयुक्त अलौकिक लीला है तासूँ भगवानकूँ जब-जब जाप्रकारकी लीला करिवेकी इच्छा होय है तब-तब तेसो कार्य सम्पादन करत हैं जैसें यज्ञपत्नीके ऊपर अनुग्रह करिवेकी इच्छा भयी तब गोपनकों सहसा क्षुधा उत्पन्न करी, तेसेंही श्रीगोकुलमें सबनके निरोधके लियेहि भगवान् सब करत हैं तासूँ वामें पूर्वपक्ष करिवेको अवकाश नहीं है ॥ १४ ॥

सब देवनको तथा धर्मनको त्याग करिकें भगवानकी शरणागति करिवेको ऊपर कह्यो परन्तु ऐसें करिवेमेंहु अपनो इच्छित होयगो सो भगवान् देयँगे किंवा नहिं देयँगे ऐसें कौन जानत है ? ऐसी शङ्का होय तहाँ कहत हैं—

अविश्वासो न कर्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः ।
ब्रह्मास्त्रचातकौ भाव्यौ प्राप्तं सेवेत निर्ममः ॥१५॥

भावार्थ—अविश्वास नहीं करनो क्यों जो सो सर्वथा बाधक है; तासूँ अविश्वासमें ब्रह्मास्त्रकी और विश्वासमें चातककी भावना राखनी, और जो प्राप्त होय तामें ममता रहित होयकें प्रभुसेवा करे; इतनें शरणगमनमें अविश्वास नहिं करनों क्यों जो जितने दूसरे बाधक हैं, इन सबनकी अपेक्षा सू अविश्वास अधिक बाधक है, अविश्वासकरिकें दूसरेधर्मको सम्बन्ध होय

तो शरणधर्म नष्ट होय, तासूँ अविश्वासमें ब्रह्मास्त्रकी भावना करनी; इतने हनूमानजी श्रीजानकीजीकी सुधी लेवेकूँ लङ्काप्रति गयेहते तब गिरेभये फलादिकनको भक्षण करिवेकी श्रीजानकीजीनें आज्ञा करी तब उपवनके वृक्षकों नीचें पटके तब जो फल नीचे गिरे ताको भक्षण करे, ऐसें करत-करत सब वृक्षनको नाश हनूमानजीनें कियो सो सुनिकें रावणनें अपने पुत्र इन्द्रिजितकूँ पठायो सो आयकें अनेक शस्त्र-अस्त्र वाकी ऊपर छोडवे लग्यो, फिर ब्रह्मास्त्र नांख्यो, परन्तु वाके ऊपर विश्वास नहिं राखिकें नागपाशादिक डारे सो ब्रह्मास्त्रकी ऊपर विश्वास राखिकें जो दूसरो अस्त्र नहिं डारतो तो ब्रह्मास्त्र अपनो कार्य करतो परन्तु ब्रह्मास्त्रकी ऊपर अविश्वास करिकें दूसरे अस्त्र डारे तासूँ ब्रह्मास्त्र निष्फल भयो, तैसें शरणगमनमेंहु अविश्वास राखे तो शरणधर्म न रहे; तासूँ अविश्वास नहिं करनो, और विश्वासमें चातकपक्षीकी भावना करनो; इतने स्वातिजलके विश्वासपें चातकपक्षी रहत है तो मेघ वर्षत है और चातकपक्षी जलको पान करत है तेसें शरणागतिमें विश्वास करे तो भगवान् सब सिद्ध करेंगे ऐसें विश्वास करिके शरणमें स्थिति राखे। तामें प्रयत्नविना भगवदिच्छासूँ जो प्राप्त होय तामें ममतारहित होयकें प्रभुसेवा करे, परन्तु विशेष प्राप्तिके लिये यत्नकरे नहिं, जो प्राप्त होय सो सब प्रभूनमें विनियुक्त करे, स्वार्थदृष्टि राखे नहीं ॥ १५ ॥

दूसरे धर्मको सम्बन्ध होय तो शरणपदार्थ चल्योजाय। ऐसें कह्यो तब आवश्यक लौकिक और वैदिक कर्मनकोहू त्याग होय तामें 'यह मार्ग अप्रमाण है' ऐसी शङ्का होय सो न होयवेके लिये लौकिकवैदिककर्म करिवेको प्रकार कहत हैं—

यथाकथंचित् कार्य्याणि कुर्यादुच्चावचान्यपि ।
किं वा प्राक्तेन बहुना शरणं भावयेद्धरिम् ॥१६॥

भावार्थ—उच्चावच कार्यहू जैसें-तैसें करनें विशेष कहिवेसूँ कहा फल सिद्ध होय ? हरि ही शरण हैं ऐसी भावना करनी इतने लोकनकूँ यह मार्ग अप्रमाण है ऐसी शङ्का न होय, तैसें अतिआवश्यक लौकिकवैदिककार्य करे; अर्थात् मार्गकी प्रमाणताके लिये प्रभुकी आज्ञा जानिकें लौकिकवैदिककर्म करने, स्वधर्मपनेमूँ नहिं करने, जैसें गीताजीमें अर्जुनने छेवट कह्यो है जो आपको जेसो वचन है ताप्रमाण करूँगो ऐसें कहिकें भगवानकी आज्ञा मानिकें युद्ध कियो है, ऐसें करे तो शरणपदार्थ जाय नहिं, येहि पुष्टिप्रवाह-

मर्यादामें कह्यो है। जो लौकिक तथा वैदिकपनों पुष्टभक्तनमें कपटपनेसूँ है स्वधर्मबुद्धिसूँ नहिं है, जैसें गीताजीमें कह्यो है जो "लौकिकमें आसक्त अज्ञानी मनुष्य जैसें कर्म करे है तैसें ज्ञानीहु लोकनकों शिखायवेके लिये कर्म करे" अथवा शरणधर्म सिद्ध राखिवेके लिये कर्म करने नहिं तोहू दोष नहिं है; क्यों जो सर्वधर्मरूप शरणधर्म है, विशेष कहेवेसूँ कहा सिद्ध होय है ? सर्वत्र शरणकी हि भावना राखनी, लोकसंग्रहके लियेहू कर्म करनो नहिं; क्यों जो लोकसंग्रहके लियेहू विधिरूपपनेसूँ कर्म करे तो शरणपदार्थ न रहे; इतनें प्रभूनकी आज्ञा मानिकें कर्म करनो, विधिरूप जानिकें करनों नहिं। ऐसें सर्वात्माकरिकें सर्वधर्मनको त्याग करे तब पापकी सम्भावना होय तहाँ कहत हैं जो हरिकी शरणभावना करे; इतनें सर्वदुःख तथा पापनकों हरणकरिवेवारे 'हरि' हैं सो पापादिकनकूँ दूर करेंगे, येहि अर्जुनप्रति श्रीकृष्णनें गीताजीमें "सर्वधर्मान् परित्यज्य" ये श्लोकमें कह्यो है जो सबपापनसूँ में तोकूँ छोडाऊँगो ॥ १६ ॥

ऐसें आश्रयके स्वरूपकों निरूपणकरिकें उपसंहार करत हैं—

एवमाश्रयणं प्रोक्तं सर्वेषां सर्वदा हितम् ।
कलौ भक्त्यादिमार्गा हि दुःसाध्या इति मे मतिः ॥१७॥

॥ इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितं विवेकधैर्याश्रयनिरूपणं समाप्तम् ॥

भावार्थ—ऐसें सबजीवनकूँ सर्वदा हितरूप आश्रय कह्यो है, कलियुगमें भक्तिप्रभृतिमार्ग दुःसाध्य हैं ऐसी मेरी मति है; इतने सबजीवनकूँ सब वर्ण तथा आश्रमनमें शरण सर्वदा हितकारी है तथा साधनविनाहु ऐहिक तथा पारलौकिक सम्पत्तिको साधक है, सबयुगनमें साधनकरिकेंहि फल होय है और अब साधनकूँ छोडिकें केवल शरणको हि उपदेश क्यों करत हैं ? ऐसी शङ्का होय तहाँ कहत हैं। जो अन्ययुगनमें धर्मको हि प्राधान्य हतो तासूँ मर्यादाभक्तिप्रभृतीनकूँ साधनकरिकेंहि साध्यपनो हतो तासूँ साधनकरिकें हि विहितभक्ति, उपासना और कर्मादिकनको फल होय है और कलियुग तो पापप्रधान है तासूँ साधननके अभावसूँ विहितभक्तिप्रभृति मार्ग हू होय सके ऐसें नहिं है, इतनो हि नहिं परन्तु साधनसम्पत्तिविना यत्किंचित् करिवेमें हू पाषण्डको प्रवेश होयवेसूँ पापहू होय है तासूँ सर्वथा

दुःसाध्य है, सत्ययुगादिकनमें साधनकरिकें जो मार्ग साध्य हते सो हू कलियुगमें साधनके अभावसूँ दुःसाध्य भये तब सत्ययुगादिकनमेंहू जो भक्तिमार्ग साधनकरिकें साध्य नहिं हतो केवल भगवानके अनुग्रहकरिकेंहि साध्य हतो सो कलियुगमें तो सुतरां दुःसाध्य होय तामें कहा कहनो ? तासूँ सर्वात्मा करिकें शरणागति करिवेमें ऐसे भक्तिमार्गमें हू भगवान् अनुग्रह करेंगे; तासूँ सर्वात्माकरिकें शरणकी हि भावना करनी दूसरो कछू नहिं करनो, ऐसो अपनो सिद्धान्त जतावेके लिये 'ऐसी मेरी मति है, ऐसें कह्यो है, श्रीआचार्य चरणनें मेरी मति है ऐसें कह्यो है, तासूँ स्वमार्गीयभक्तनकूँ तो शरणकीहि भावना करनी दूसरो कछू नहिं करनो ऐसो अभिप्राय है ।

॥ इति श्रीमद्वल्लभाचार्यजीविरचित 'विवेकधैर्याश्रयनिरूपण' की
गोस्वामि श्रीनृसिंहलालजीमहाराजविरचित व्रज-
भाषामें संक्षिप्तटीका समाप्त भई ॥

—०—

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥
॥ श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अथ श्रीकृष्णाश्रयकी व्रजभाषामें संक्षिप्त भाषाटीकाको प्रारम्भ

भावार्थ—श्रीकृष्णाश्रयकूँ सर्व सिद्धकरिवेपनो है तासूँ अपने भक्तनकों वरदानदेवेकीकीनाई श्रीआचार्यचरण श्रीकृष्णाश्रयस्तोत्रकों निरूपणकरत हैं; तामें अब कलिकालके प्रभावसूँ देश, काल, द्रव्य, श्रद्धा, मन्त्र और कर्म यह षट् साधन पुरुषार्थ सिद्धकरिवेवारे नहिं है, ऐसें बतायकें भक्तनकूँ भगवान् हि सर्व साधनरूप हैं; तासूँ देशादिक षट् साधन तथा चारप्रकारके पुरुषार्थ सबरूप भगवान्हि हैं तासूँ तथा दशविधलीला करिकें निरूप्यहू भगवान्हि हैं तासूँ तथा सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण ऐसें तीन्यो गुणनके भेदनसूँ नवप्रकारके भक्त हैं तथा दशमभक्त निर्गुण है ऐसें दशविधभक्तन करिकें सेव्य भगवान् हैं और शरीरकूँ सबसिद्ध करिवेवारे दश प्राण हैं तैसें भक्तनकूँ सबसिद्ध करिवेवारो यह स्तोत्र है ऐसे ऊपर लिखे सब कारण जतायवेके लिये दशश्लोकन करिकें निरूपण करत हैं; तामें प्रथम मुख्य अङ्ग काल है तासूँ कालधर्मको निराकरण करिकें आश्रयकी प्रार्थना करत हैं—

सर्वमार्गेषु नष्टेषु कलौ च खलधर्मिणि !
पाषण्डप्रचुरे लोके कृष्ण एव गतिर्मम ॥ १ ॥

भावार्थ—खलधर्मवारे कलियुगमें सर्व मार्ग नष्ट होय गये और लोक बहोत पाषण्डवारो होयगयो तामें श्रीकृष्णहि मेरी गति हो; इतनें ऊपरसूँ आछो दिखवेमें आवे और भीतर दुष्ट होय सो खल कह्यो जाय ऐसो धर्म

कलियुगमें है तामें श्रीकृष्ण हि मेरे गतिरूप हो, ऐसें कहेवेको अभिप्राय ऐसो है जो सत्तावाचक "कृष्" शब्द है और आनन्दवाचक "ण" शब्द है दोयकी एकतासूँ सदानन्द शब्द होय है सो ऐहिक तथा पारलौकिक अर्थके सिद्धकरिवेवारे मोकूँ हो, खलधर्मको स्वरूप कहत हैं जो सबनकी अपेक्षासूँ लोकमें पाषण्ड अधिक भयो है तासूँ हि पुरुषार्थके उपाय ढूँढिवेमें आवे ऐसे कर्मज्ञानादिकमार्ग नष्टप्राय भये हैं तामें यज्ञादिकनसूँ स्वर्गकी प्राप्ति होयवेको वेदमें लिख्यो है तामें स्वर्ग पद आत्मसुखवाचक है सो नहिंजानिकें लोकवाचक है ऐसो भ्रम उत्पन्न करत है तासूँ चित्तशुद्धि नहिंहोयवेसूँ कर्ममार्ग नष्ट भयो है, और मायावादके अभिनिवेशसूँ ज्ञानमार्ग, निरीश्वर-पनेके अङ्गीकारसूँ योग नष्ट भये हैं और विभूतिपरहोयवेसूँ उपासनानष्ट भयी है, मूलमें चकार है तासूँ कलिकालकूँ महादेवादिक अनुगुण भये हैं तासूँ श्रीकृष्ण हि गति हो, मूलमें एवकार है सो अन्यके योगको व्यवच्छेदक है तासूँ अंशकलादिक गतिरूप मति हो ऐसो अभिप्राय है ॥ १ ॥

पुण्यदेशमें स्थितिमात्रसूँ हि पुरुषार्थकी सिद्धि होय है तब दूसरेको निषेध करिकें आश्रयकी हि प्रार्थना क्यों करत हो ? ऐसी शङ्का होय तहाँ कहत हैं—

म्लेच्छाक्रान्तेषु देशेषु पापैकनिलयेषु च ।
सत्पीडाव्यग्रलोकेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥ २ ॥

भावार्थ—सब देश म्लेच्छनकरिकें आक्रान्त होय गये हैं और विनमें पापीनकोहि स्थान होय गयो है और सत्पुरुषनकूँ पीडा होयवेसूँ सब लोक व्यग्र होय गये ऐसे समयमें श्रीकृष्णहि मेरी गति हो; इतनें सबदेशनमें म्लेच्छादिक-हीनजातीनकी सत्ता होय गयी है, ऐसे वे म्लेच्छ हू धर्ममें वर्तिवेवारे नहिं हैं किन्तु पापमेंहि मुख्य विनको स्थानक है अथवा अङ्गवङ्गा-दिक देश ऐसे हैं जो विनमें गमनमात्रसूँहि पुनः संस्कार करनो पडे ऐसे देशनमें म्लेच्छादिकननें आक्रमण कियो है तासूँ तीर्थयात्रादिकके प्रसङ्गतें जायवेमेंहू पाप लगे है और सत्पुरुषनकूँ पीडा होय है ता करिकें सब लोक व्यग्र होय है क्यों जो स्वधर्मादिकको आचरण करिवेवारेनकूँ पीडा देखिकें औरनकूँ श्रद्धादिक नहिं रहे है ऐसे समयमें श्रीकृष्णहि मेरी गति हो ॥२॥

गङ्गादिक-तीर्थनकरिकें हू सर्वपुरुषार्थकी सिद्धि होय है, तब केवल आश्रय करिवेको कहा प्रयोजन है ! ऐसी शङ्का होय तहाँ द्रव्यकी असा-ध्यता कहत हैं—

गङ्गादितीर्थवर्येषु दुष्टैरेवावृतेष्विह !
तिरोहिताधिदैवेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥ ३ ॥

भावार्थ--गङ्गादिक उत्तम तीर्थ हैं सो दुष्टनकरिकें हि आवृत्त होय गये हैं तासूँ आधिदैविक स्वरूप तिरोहित भयो है ऐसे समयमें श्रीकृष्ण हि मेरी गति हो, इतनें तीर्थमें श्रेष्ठ जो गंगादिक हैं सो दुष्टनकरिकें आवृत भये हैं तासूँ तीर्थनसूँ पुरुषार्थ सिद्ध होय ऐसें नहिं है, ब्राह्मणादिक हू तीर्थनमें रहे है तब दुष्टनकरिकें हि आवृतपनों कैसें ? ऐसी शङ्का होय ताको समाधान ऐसो है जो विनकूँ अति परिचय होयवेसूँ तीर्थनमें आदर नहिं रहे है तासूँ वामें भक्ति नहिं होय है और वहाँ दानादिक लेवेके लिये ही विनकी स्थिति है; तासूँ बिनकोंहू दुष्टपनो है क्यों जो "श्रद्धारहित, पापात्मा नास्तिक, जिनकूँ संशय निवृत्त नहिं भयो है और वामें तीर्थपनेको कारण शोधिवेवारो होय विनकूँ तीर्थको फल नहिं मिले है" ऐसें वायुपुराणमें कह्यो है और तीर्थमें जो रहते होय सो सब श्रद्धारहित नास्तिक होय है विनको दुष्टपनो नहिं मिटे है, यीर्थमें सब दोष निवृत्त करिवेकी शक्ति है तासूँ जैसें अग्नि सबनको दाह करे है तैसें तीर्थकी शक्तिसूँहि दुष्टपनो क्यों नहिं मिटे है ? ऐसी शङ्का होय तहाँ कहत हैं जो देवतारूप-तीर्थको आधिदैविक स्वरूप तिरोहित होय गयो है सो सत्पुरुषनप्रति हि प्रकट होय है दुष्टपुरुषनप्रति आधिदैविकस्वरूपको तिरोधान होय है तासूँ श्रीकृष्ण हि मेरी गति हो ॥ ३ ॥

धर्मकरिवेवारे समीचीन होय तो सर्वफलकी सिद्धि दोय तब आश्रयकरिकें कहा कर्त्तव्य हैं ! ऐसी शङ्का होय तहाँ कर्त्ताको असाधकपनो बतायकें आश्रयकी प्रार्थना करत हैं—

अहङ्कारविमूढेषु सत्सु पापानुवर्त्तिषु ।
लाभपूजार्थयत्नेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥ ४ ॥

भावार्थ—पण्डित लोक, अहङ्कारकरिकें विशेष मूढ भयें है पापिपुरुषनकों अनुसरिवेवारे भये हैं और लाभपूजाके अर्थहि विनको यत्न है तामें श्रीकृष्णहि मेरी गतिहो; इतने पण्डित लोक, हम शास्त्र जानें है ऐसे अभिमानसूँ दूसरेकूँ पूछतहू नहिं है और मायावादादिकनके अभिनिवेशसूँ विशेषकरिकें मूढ भये हैं, तैसें अपनकूँ कछुक लाभ होय अथवा अपने

प्रतिष्ठा बढे तो अपनो सत्कार होय ऐसे स्वार्थके लियेहि यत्न करत हैं अर्थात् पारमार्थिक कर्महू लाभपूजार्थहि करत हैं और पापिपुरुष अथवा पापनकूँहि अनुसरिवेवारे भये हैं तामें श्रीकृष्णहि मेरी गति हो ॥ ४ ॥

मन्त्रसूँ फलसिद्धि होय ऐसें मन्त्रशास्त्रमें लिख्यो है तब आश्रय-करिकें कहा कर्त्तव्य है ? ऐसी शङ्का होय तहाँ मन्त्रनको असाधकपनो कहिकें आश्रयकी प्रार्थना करत हैं—

अपरिज्ञाननष्टेषु मन्त्रेष्वव्रतयोगिषु ।
तिरोहितार्थदेवेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥ ५ ॥

भावार्थ—मन्त्रको परिज्ञान नहिं होयवेसूँ, व्रतादिकनको योग नहिं होयवेसूँ और अर्थ तथा देवता तिरोहित होयवेसूँ मन्त्र नष्टप्राय भये हैं ऐसे समयमें श्रीकृष्ण हि मेरी गति हो; इतने बैदिक तथा तन्त्रोक्त मन्त्रको तात्पर्य, फल और देवताके स्वरूपको ज्ञान नहिं होयवेसूँ मन्त्र नष्ट प्राय होय गये हैं, वैदिकमन्त्र, गुरुकुलमें वासकरे, ब्रह्मचर्यादिकव्रतराखे, शूद्रकी सन्निधि में अध्ययन करे नहिं इत्यादिक नियमसूं पढे तब फलसाधक होय सो नियम अब रह्यो नहिं है तासूं फलसाधक नहिं है और तन्त्रोक्तमन्त्रनके तात्पर्यको ज्ञान नहिं होयवेसूं विनके अर्थ तथा देवताको तिरोभाव होय गयो है तासूं मन्त्र फलसाधक नहिं रहे हैं और भगवदाश्रयमें तो "यस्य स्मृत्या" इत्यादिवाक्य करिकें न्यून होय सो हू सब पूर्ण होय है तासूं श्री-कृष्ण हि मेरी गति हो ॥ ५ ॥

मीमांसादिक (विचार) शास्त्रकरिकें, मन्त्रनके तात्पर्यको निद्वरि होयसके है तासूं कर्मनकरिकेंहि फलकी सिद्धि होयगी आश्रयकरिकें कहा करनो है ? ऐसी शङ्का करिकें कर्महू फलसाधक नहिं रहे है ऐसो बतायकें आश्रयकी प्रार्थना करत हैं—

नानावादविनष्टेन सर्वकर्मव्रतादिषु ।
पाषण्डैकप्रयत्नेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥ ६ ॥

भावार्थ—सर्व कर्म और व्रतादिक जूदे - जूदे प्रकारके वादकरिकें विनष्ट भये हैं और पाषण्डके लिये मुख्य यत्न जामें भयो है, ऐसे समयमें श्रीकृष्णहि मेरी गति हो; इतनें सोमयागादिक कर्म और व्रतादिकनमें जूदे-

जूदे वाद भये हैं; अर्थात् कोई कहे के कर्म ऐसें करो, तो दूसरो दूसरी रीतसूँ बतावे, तैसें व्रतादिकनमें हू एकनें व्रत बतायो तो दूसरो वाकी ईर्ष्या करिकें दूसरी रीतिसूँ बतावे फिर परस्पर वाद करे तामें कौन सत्य बतावे है और कौन जूठो बतावे है सो अज्ञलोक जाने नहीं, तासूँ सब कर्म तथा व्रतादिक नष्ट होय गये हैं। जैसें सगरो प्रपंच मिथ्या है, अपने अज्ञानसूँ कल्पित है, प्रपञ्च में रहे, ऐसे वेदहू व्यवहारमात्रमें प्रमाण है, ऐसे मायावादीनको वाद है, ब्रह्मादीकनकूँहू यज्ञन करिकें ही बडेपनो प्राप्त भयो है, तासूँ पूर्वकी वासनासूँ उत्तरोत्तर प्रवृत्ति होती जाय है, सो कर्मसूँ ही होय है, तासूँ कर्म ही कर्त्तव्य है, फलहू कर्मसूँ ही मिले है, फलको देवेवारो उपासना करिवे योग्य चेतनरूप कोउ देवता नहीं है, किन्तु मन्त्रमयही देवता है ऐसें मीमांसकनको वाद है, षोडशपदार्थनके ज्ञान भये पीछें श्रवण, मनन तथा निदध्यासनकरिकें अपने आत्माको साक्षात्कार भये सते दुःखकी उत्पत्तिको अभाव होय येही फल है, ऐसें नैयायिकनको वाद है, और प्रकृति तथा वाके विकारको लय होय तब पुरुषकूँ अपने स्वरूप करिकें रहनो ये ही फल है, कोउ देव सेव्य नहीं है ऐसो साँख्यनको वाद है, ऐसे प्रकारके जूदे-जूदे वादनकरिकें कर्म तथा व्रत नष्ट होय गये हैं, वस्तुतासूँ तो सब जगत् जो दीखवेमें आवे है सो भगवद्रूप ही है, भगवान् सबनकूँ अपने वशमें राखत हैं भगवानसूँही सबनकी, उत्पत्ति, स्थिति और लय होत है तासूँ भगवान् ही सेव्य हैं, "देव, असुर, मनुष्य, यक्ष और गन्धर्व जो कोउ भगवान्के चरण को भजन करत है सो कल्याणकों प्राप्त होत है" ऐसो वाक्य है तासूँ भगवान् ही सेव्य है, प्रपञ्च सब भगवद्रूप है, भगवानको सायुज्यादिक होय, ये ही फल है इत्यादिक शास्त्र प्रतिपादित अर्थसूँ ऊपर कह्यो, ऐसे सब वाद विरुद्ध हैं तथापि अपने-अपने मतके आग्रहसूँ शास्त्र विपरीत कर्म और दशम्यादिक के वेधवारी एकादशी प्रभृतीनको व्रत करे है, तासूँ कर्म और व्रत नष्ट होय गये हैं, तहाँ शङ्का होय जो ऐसे करिवेवारे आप करे हैं और दूसरेकूँ हू बोध करत हैं सो वामें मिथ्यापनो तथा निष्फलपनो तथा विरुद्धपनो जानते होय तो आप कैसें करे ? तथा औरनकूँ बोध कैसें करे ? क्यों जो ये मत हू शङ्कराचार्य, जैमिनि तथा गौतमादिक पण्डितननें ही प्रवृत्त किये है ऐसी शङ्का होय तहाँ कहत हैं, जो पाखण्ड निमित्त ही विनको मुख्य प्रयत्न है सो पद्मपुराण तथा वाराहपुराणमें कह्यो है जो श्रीभगवाननें महादेवजीकूँ मोह शास्त्र करिवेकी आज्ञा करी है और महादेवजी की आराधना करिकें आप विनकी प्याससूँ वर मांगिके जगतमें महादेवजीकी आराधनाकी महत्ताकी

वृद्धि करिवेको वरदान भगवानने दियो है; तासूँ ही भगवान्ने महादेवजी ऊपर तप करिकें वरदान मांग्यो है सो देखिकें और लोकहू भ्रमित होय जाय हैं, परन्तु ऐसें नहीं जाने है जो देवादिकने प्रवृत्त कियो सोही सत्यमार्ग ऐसो नियम नहीं है किन्तु वेदादिकनसूँ विरुद्ध न होय सोही सत्य है ये अभिप्राय कूँ नहीं जानत हैं और देवादिकनकी प्रवृत्तिसूँ आप ही मोहित होयकें प्रवृत्त होय हैं. परन्तु कौलमार्ग बृहस्पतिने प्रवृत्त कियो है और बुद्ध ने बौद्ध-मत प्रवृत्त कियो है तासूँ ये ग्राह्य नहीं है ऐसे अभिप्रायकूँ नहीं जानत हैं तासूँ मोहित होयकें वामें प्रवृत्त होय हैं ऐसे समय में श्रीकृष्णही मेरी गति हो ॥ ६ ॥

"धर्मकरिकें पापकूँ मिटावे हैं धर्ममें सब रह्यो है" ऐसें श्रुतिमें कह्यो है तासूँ प्रथम, दोषके अभावके लिये धर्म करनों ताकरिकें चित्तशुद्धि होय तब भगवानको माहात्म्य तथा स्वरूपको ज्ञान होय तब आश्रयादिक करनों, चित्तमें दोष होय तब ताँई आश्रय नहीं करनों क्यों जो योगीनकूँ ध्यान करिवे योग्य प्रभु कहाँ ? और दुष्ट जीव कहाँ ? ऐसी आशङ्का होय तहाँ कहत हैं—

अजामिलादिदोषाणां नाशकोऽनुभवे स्थितः ।
ज्ञापिताखिलमाहात्म्यः कृष्ण एव गतिर्मम ॥ ७ ॥

भावार्थ—अजामिलादिकनके दोषनकूँ नाश करिवेवारे प्रभु अनुभव में रह्यो हैं जिनने अपनो समग्र माहात्म्य जतायो है सो श्रीकृष्ण ही मेरी गति हो; इतनें वेदमें लिख्यो है जो प्रवचनादिक करिकें प्रभु प्राप्य नहीं है, परन्तु जिनको वरण (स्वीकार) प्रभु करत हैं, विनसूँ ही प्राप्य होय हैं, और गीताजीमें अनन्य भक्तिसूँ प्राप्त होयवेको लिख्यो है, तासूँ प्रभूनको अङ्गीकार होयगो और भगवद्भक्तको अनुग्रह होयगो तो दोषवारेकूँ हू भक्तिकरिकें प्रभु गम्य है; तासूँ महापुरुष द्वारा शरणागति होयगी तो सब सिद्ध होयगो, जैसें अजामिलनें विष्णुके पार्षदनको वाक्य सुन्यो तब प्रथम जो कृत्य किये हते ताको पश्चात्ताप करिकें गङ्गाद्वार में जायकें भगवद्भक्ति करी ता करिकें वाके सब पापकी निवृत्ति होयकें उत्तम गति भयी, ये केवल पुत्रके उपचारसूँ नारायणनाम ग्रहण करिवेमें भगवानके पार्षदको भगवद्धर्म रूप वाक्य सुनिवेको समय अजामिलकूँ प्राप्त भयो ताको फल मिल्यो तो बुद्धिपूर्वक शरणागति करिवेवारेनके सब पापनकी निवृत्ति होयवेमें कहा

संशय है ! तासूँ दोष प्राप्त भयो होय तो हू केवल भगवानको ही आश्रय करनो, परन्तु आश्रयकूँ छोड़िकें और कछू नहिं करनों ॥ ७ ॥

स्वाध्यायको अध्ययन करनो, जो-जो ऋतुको अध्ययन करे, ताको फल वाकूँ प्राप्त होय, इत्यादिक वेदवाक्य है तिनकरिकें कर्ममार्गमें हू ब्रह्म-यज्ञ और अध्ययनादिकनसूँ अग्न्यादिकनकी सायुज्यप्राप्ति होय है और ब्रह्म-ज्ञान करिकें अक्षर ब्रह्मके संग सायुज्य होयवेको श्रीगीताजीमें हू लिख्यो है तब श्रीकृष्णाश्रयमें विशेष कहा है जो वाकीही प्रार्थना करत हो ? ऐसी शङ्काकी निवृत्ति के लिये वाको तारतम्यज्ञानार्थ सर्वस्वरूप भगवान ही है, ऐसे स्वरूपके निरूपण पूर्वक अर्थरूपपनेसूँ आश्रयकी प्रार्थना करत हैं—

प्राकृताः सकला देवा गणितानन्दकं बृहत् ।
पूर्णानन्दो हरिस्तस्मात् कृष्ण एव गतिर्मम ॥ ८ ॥

भावार्थ—समग्रदेव प्राकृत हैं तथा अक्षरब्रह्मके आनन्दकी गणना होय है और हरि पूर्णानन्द हैं तासूँ श्रीकृष्ण ही मेरी गति हो; इतनें सब देव सात्विकाहङ्कारसूँ उत्पन्न भये हैं, तैसें तैत्तरीयोपनिषदमें आनन्दकी गणनाके प्रसङ्गमें समग्र पृथ्वी द्रव्यसूँ पूर्ण होय, सो मनुष्यनको एक आनन्द है ऐसे मनुष्यके एकसो आनन्दको मनुष्य गन्धर्वनको एक आनन्द होय है, या रीतिसूँ शतगुण आनन्दकी गणना करी है, तहाँ ब्रह्माजीके एकसो आनन्द होय तब अक्षरब्रह्मको एक आनन्द होय है ऐसें आनन्दकी गणना करी है; तासूँ अक्षरब्रह्महू गणितानन्द है और श्रीकृष्ण ही भक्तनके दुःखहर्त्ता तथा पूर्णानन्द हैं, तासूँ श्रीकृष्ण ही मेरीगति हो, देवादिकनके सायुज्यमेहू देव प्राकृत होयवेसूँ विनको मुक्तिकूँ सगुणपनो है और ब्रह्मलोक पर्यन्तकूँ फिर संसारमें आयवेको गीताजीमें लिख्यो है तासूँ अल्पानन्दपनो है, तैसें ज्ञानमार्गमें अक्षरब्रह्मके सङ्ग सायुज्य होय है तामें गणित आनन्द होयवेसूँ बहोत क्षुधितकूँ अल्प भोजन होय सो अभोजनतुल्य होय है तैसें अल्पपनो होयवेसूँ कछु उपयोगी है नहीं, और श्रीकृष्ण तो पूर्ण आनन्दरूप हैं तैसें निर्गुणमुक्तिकूँ देवेवारे हैं तासूँ विनकी ही शरणभावना करनी ॥ ८ ॥

विवेक और धैर्यसूँ रहिकें भक्तिकरिवेमें भगवान् हू वश होत हैं तब दैन्यकरिकें आश्रय की प्रार्थना क्यों करत हो ? ऐसी शङ्का करिकें सर्व-मनोरथके पूरक हैं और सर्वफलके लिये इच्छित हैं तासूँ इच्छित रूपपणो है, ऐसें कहिकें आश्रय की प्रार्थना करत हैं—

विवेकधैर्यभक्त्यादिरहितस्य विशेषतः ।
पापासक्तस्य दीनस्य कृष्ण एव गतिर्मम ॥ ९ ॥

भावार्थ—विवेक, धैर्य और भक्त्यादिक करिकें रहित, विशेषकरिकें पापमें आसक्त और दीन ऐसो जो मैं ताकूँ श्रीकृष्ण ही गतिरूप हो; इतनें प्रथम जो निरूपण कियो सो प्रभु के स्वरूपको विचार करिकें कियो है और अब जोवके स्वरूपको विचार करिकें कहत हैं जो भगवान् अपनी इच्छासूँ सब करेंगे, ऐसें जानिकें प्रार्थना नहीं करनी, ऐसो निश्चय होय सो विवेक कह्यो जाय है तथा भक्ति विरोधि जो दुःख होय ताकी निवृत्तिको उपाय नहीं करिके आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक ऐसे तीनप्रकारके दुःखकों सहन करनो सो धैर्य कह्यो जाय है और साधनरूप भक्ति श्रवणादिक कही जाय है। मूल में आदिपद है तासूँ दूसरो पुण्य हू समजनो सो कछू नहीं है तैसें विनके साधन हू मेरे में नहीं है पापमें आसक्त हूँ, अर्थात् विपरीत साधन करूँ हूँ और दीन (दरिद्र) हूँ ऐसो जो मैं हूँ ताकूं श्रीकृष्ण ही गतिरूप हो, यहाँ मेरे में विवेक धैर्यादिक नहीं है और मैं पापमें आसक्त इत्यादिक वाक्य कहे हैं सो वाक्य कहिवेवारे श्रीआचार्य चरण हैं, विनकों ऐसे विशेषण नहीं चहियें, ऐसी शङ्का मनमें होय ताको समाधान ऐसें करनो जो वेदमें "मैं हाथ जोडिकें गुरुकी शरण जाऊं हूँ" "मैं नमन करूं हूँ" मेरो "कल्याण हो" इत्यादिक वाक्यनमें जैसें यजमान के अधिकार करिकें कह्यो है तैसें यहाँ हू श्रीआचार्यचरणनें भक्तनके अधिकार करिकें कह्यो है ऐसें समजनो ॥ ९ ॥

सर्वथा जो साधनरहित होय ताकूं शरणागतिमेंहू इच्छित फलकी सिद्धि कैसें होयगी ? क्यों जो भगवान् तो जीवकी कृतिके अनुसार फल देत हैं तब सब साधन छोडिवेमें देवतान्तरको हू अनादर होयवेसूं देवताहू विघ्न करेंगे, ऐसी आशङ्का करिकें शरणागतिमें मोक्षरूपपनो है ऐसें सिद्ध करिवे के लिए विज्ञापन करत हैं—

सर्वसामर्थ्यसहितः सर्वत्रैवाखिलार्थकृत् ।
शरणस्थसमुद्धारं कृष्णं विज्ञापयाम्यहम् ॥१०॥

भावार्थ—श्रीकृष्ण सर्वसामर्थ्ययुक्त हैं और सर्वत्र समग्र अर्थके करिवेवारे हैं, तासूं शरण आये, ऐसे जीवनको उद्धार करिवेके लिये मैं श्रीकृष्ण

कों विनती करत हूँ; इतनें प्रभु सर्वसामर्थ्य सहित हैं तासूँ आपके सामर्थ्य सूँ ही सब कर सके हैं, सो जो मर्यादा राखिवेकी इच्छा होयगी तो ज्ञानादिकनको दान करिकें हू फल देयगें अथवा सर्वसामर्थ्य जामें है ऐसे सुदर्शनादिक सहित श्रीकृष्ण हैं तासूँ सुदर्शनादिक करिकें हू भक्तनको अनिष्ट निवृत्त करे हैं और सब देशनमें, वर्णनमें, आश्रमनमें, तथा कर्मादिकनमें हू सब अर्थके करिवेवारे श्रीकृष्ण ही हैं सो विनके शरण जो जीव आये होंय विनकूँ फलदान करेयगें; क्यों जो "जा रीतिमूँ मेरी शरण आवे है ताकूँ वाही रीतिसूँ मैं भजत हूँ" ऐसी गीताजी में आपकी प्रतिज्ञा है तासूँ शरणागति की मर्यादा ही ऐसी है जो शरण आये होय ताकी सब तरेहसूँ रक्षा प्रभुही करत हैं, तासूँ दीन भाव करिकें शरणागति ही करनी ॥ १० ॥

"पशुके दश प्राण हैं आत्मा ग्यारहमो है" ऐसें श्रुति में कह्यो है; तासूँ प्राणनकीसी नांई ऊपर कह्ये सब श्लोक सब सिद्ध करिवेवारे हैं ऐसें जतायवेके लिये दशश्लोक करिकें स्तोत्रको निरूपण करिकें आत्माकीसी नांई फल अक्षय्य है ऐसें जतायवेके लिये आत्मरूपग्यारहमे श्लोक करिकें स्तोत्रपाठको फल कहत हैं—

कृष्णाश्रयमिदं स्तोत्रं यः पठेत् कृष्णसन्निधौ ।
तस्याश्रयो भवेत् कृष्ण इति श्रीवल्लभोऽब्रवीत् ॥११॥

भावार्थ—यह कृष्णाश्रय-स्तोत्र श्रीकृष्णकी सन्निधिमें जो पढे ताकूँ आश्रयरूप श्रीकृष्ण होय ऐसें श्रीवल्लभाचार्यजीनें कह्यो है; इतनें श्रीकृष्ण को आश्रय यथार्थ निरूपण करिवेवारो ये ही स्तोत्र है दूसरो ऐसो स्तोत्र नहीं हैं; तासूँ याके पाठसूँ ही आश्रय दृढ़ होय, श्रीकृष्णकी सन्निधिमें पाठ करे अथवा श्रीकृष्णके निमित्त पाठ करे तोहू आश्रय दृढ़ होय, केवल स्तोत्र के पाठमात्रसूं ऐसो फल कंसें होय ? ऐसो शङ्का होय ताको समाधान ऐसें है जो नलकूबर तथा मणिग्रीव नारदजीकें शापतें यमलार्जुन भमे तब श्रीनारदजीनें देवतानके सौ वर्ष पीछें श्रीकृष्णको सांनिध्य होयवेको कह्यो हतो सो वाक्य सिद्ध करिवेके लिये श्रीकृष्ण आपने वहाँ पधारिकें नलकूवरमणिग्रीवको उद्धार कियो तब श्रीआचार्यजी साक्षात् आपके मुखारविन्द स्वरूप हैं । आपके स्वरूपकूँ यथार्थ जानिवेवारे हैं और दैवीजीवनके उद्धारार्थ आपने प्रकट किये हैं विनके वचनसूँ तो आप अनुग्रह करेंहिगें ये जतायवेके लिये मूलमें आपको नाम धरयो है तामें संशय नहि राखनो ॥ १२ ॥

॥ इति श्रीमद्वल्लभाचार्यजीविरचित श्रीकृष्णाश्रयस्तोत्रकी
गोस्वामि श्रीनृसिंहलालजीमहाराजविरचित व्रज-
भाषामें संक्षिप्तटीका समाप्त भई ॥

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अथ श्रीचतुःश्लोकीकी व्रजभाषामें संक्षिप्त भावार्थटीकाको प्रारम्भ ।

—★—

लोकमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ऐसें चार पुरुषार्थ स्मृतिमें कह्यो साधननसूँ पूजामार्गके अनुसार प्राप्त होय हैं तामें ऐसी प्रतिज्ञा है जो ब्राह्मण देहविना मुक्ति नहिं होय है तामें हू बुद्धयादिकनकी शुद्धिपूर्वक सांगोपांग साधन करिवेसूँ निर्वाह होय है, ऐसें जो ससाधननकूँ मुक्ति होयवेको कह्यो सो हू अक्षरकी प्राप्तिरूप मुक्ति होय है, सोहु क्वचित् होय है, तब निःसाधनको जन्म तो वृथाही होय ताकी निवृत्तिके लिये श्रीप्रभूनने आपके श्रीमुखरूप वाणीके पति (श्रीमहाप्रभून) कों भूतलपें प्रकट किये हैं, बिन श्रीमहाप्रभूनने पुष्टिमार्गीय—जीवनकू स्वसिद्धान्त जतायवेके लिये चतुःश्लोकीनामक ग्रन्थ निरूपण कियो है; तासूँ मर्यादामार्गीय—धर्म, अर्थ, काम और मोक्षसूँ जूदे पुष्टिमार्गीय—धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको बेग वोध होय है। तामें चार श्लोकनसूँ चारचोपुरुषार्थनको निरूपण कियो है तामें प्रथमश्लोकसूँ धर्माचरणरूप पहले पुरुषार्थको निरूपण अनुष्टुप् छन्दसूँ करत हैं—

सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः ।
स्वस्यायमेव धर्मो हि नान्यः क्वापि कदाचन ॥ १ ॥

भावार्थ—निरन्तर सर्वभावकरिकें व्रजाधिप (श्रीकृष्ण) सेवनकरिवे योग्य हैं, पुष्टिमार्गीय-जीवनकों सेवनरूपही धर्म है, कोउकालमें अथवा कोउ स्थलमें अन्य धर्म नहीं है; इतनें व्रजाधिप जो सच्चिदानन्द-श्रीकृष्ण सोही

पुष्टिमार्गीयनकों सेवनीय है, सो श्रीभागवतदशमस्कन्ध जन्मप्रकरण विवरण में श्रीमहाप्रभूननें आज्ञा करी है जो "श्रीगोकुलमें निःसाधननकूँ फलरूप ऐसे श्रीकृष्ण प्रकटे हैं, तासूँ हम सब ओरसूँ निश्चिन्त भये हैं" तासूँ निःसाधननके लिये ही भगवानको प्राकट्य होयवेसूँ दैवीसृष्टिमें उत्पन्न भये ऐसें साधन सम्पत्ति रहित जो जीव हैं उनकूँ श्रीकृष्ण अवश्य सेवा करिवे योग्य हैं, सो सेवा सर्वभावसूँ करनी, इतनें देह, इन्द्रिय, प्राण, स्त्री, पुत्र, धन और गृहादिक सब भगवाके ही हैं मेरे नहीं हैं, ऐसो जो भाव है सो अहंता ममतात्मक-संसारकूँ मिटायवेवारो है, जीवमें जब ऐसो भाव आवे तब निश्चिन्त होय सो जीव भगवन्मय और मुक्त कह्यो जाय है ऐसे जीवकी दशाको वर्णन भक्तिवर्द्धिनीमें कियो है जो—'जब प्रभूनमें दृढासक्ति होय तब गृहमें स्थित जो स्त्री, पुत्रादि उनको बाधकपनो और अनात्मपनो दीखवे में आवे है, और प्रभुमें व्यसन इतने प्रभु सिवाय रह्यो न जाय ऐसी दशा जब होय तब सो जीव कृतार्थ होय है" तासूँ सर्वात्मभाव है सो दैवीजीवनको मुख्य धर्म है सो निःसाधननकूँ अवश्य करिवेयोग्य है, ऐसे भावसूँ ही सब कार्य सिद्ध होय है सो श्रीभागवतमें कह्यो है जो "केवल भावकरिकें ही श्रीगोपीजने, गायें, यमलार्जुनप्रभृति वृक्षें जाम्बुवान प्रभृतिमृगें और मूढबुद्धिवारे—कालीयप्रभृतिसर्पनहू सिद्ध होयकें मोकों प्राप्त भये हैं", ऐसे श्रीभगवानके वचनसूँही सर्वात्मभावकूँ मुख्यधर्मपनो सिद्ध होय है, यहाँ शङ्का होय जो ऊपर कह्यो जो धर्म सो एक-काल अथवा देशमें करिवेयोग्य धर्म होयगो और सर्वदा करिबेको न्यारो धर्म होयगो, ऐसी शङ्का नहीं होयवेके लिये मूलमें 'नान्य' और 'कदाचन' ऐसे दोय पदको ग्रहण करिकें ऐसें दिखायो है जो हमने कह्यो जो धर्म तासूँ अन्यकोउ धर्म पुष्टिमार्गीयकों कार्यसिद्ध करिवेवारो नहीं है; क्यों जो मर्यादामार्गीय-धर्मविभूतिपर्यवसायी है; इतने मर्यादामार्गीयसाधनसूँ भगवानकी विभूतिकी प्राप्ति होयसके, परन्तु पुरुषोत्तमकी प्राप्ति न होय और देशकालके धर्ममेंहू विपर्यास दीखवेमें आवे है तासूँ यही धर्म कर्त्तव्य है ऐसो मूलके "क्व" शब्दसूँ सूचित होय है, कालान्तरमेंहू यह धर्म त्याज्य नहिं है प्रत्युत विधेय है ऐसें मूलके "कदाचन" पदसूँ सूचित होय है ॥ १ ॥

पूर्वश्लोकमें प्रथम-पुरुषार्थ जो पुष्टिमार्गीयनकूँ पुरुषोत्तमसेवनरूप धर्म है ताको निरूपण करिकें अब द्वितीयश्लोकसूँ द्वितीय-पुरुषार्थ जो अथताको निरूपण करत हैं—

एवं सदा स्म कर्त्तव्यं स्वयमेव करिष्यति ।
प्रभुः सर्वसमर्थो हि ततो निश्चिन्ततां व्रजेत् ॥ २ ॥

भावार्थ—ऊपर कह्यो प्रमाण भगवत्संस्मरण निरन्तर कर्त्तव्य है और भक्तनके लौकिक वैदिक कार्यनकूँ तो आप सर्वसामर्थ्ययुक्त प्रभु हैं तासूँ प्रार्थना किये विनाही सम्पादन करेंगे तासूँ भगवद्भक्तकूँ यह लोक-परलोक की चिन्ता छोडिकें निश्चिन्त रहेनो; इतने भगवान् आपही प्रमेयबलतें भक्तके सर्वअर्थकूँ सम्पादन करत हैं; तासूँ पुष्टिमार्गीयनकूँ अर्थरूपहू प्रभुहि हैं ।

ऐसें अर्थको निरूपण करिकें तृतीय श्लोकसूँ पुष्टिमार्गीयकामको निरूपण करत हैं—

यदि श्रीगोकुलाधीशो धृतः सर्वात्मना हृदि ।
ततः किमपरं ब्रूहि लौकिकैर्वैदिकैरपि ॥ ३ ॥

भावाथ—जब श्रीगोकुलाधीशकूँ सर्वभाव करिकें जाजीवनें हृदयमें स्थापन किये तब बाकूँ श्रीपुरुषोत्तमसूँ उत्कृष्ट सर्वकाम पूर्णकरिवेवारो कहा पदार्थ है ? अर्थात् प्रभु सिवाय कोउ और भक्तके कामपूरक नहीं है वेही सर्वकामपूरक हैं, विनकूँ जब हृदयमें स्थापित किये तब लौकिक सिद्ध करवेवारी युक्तीनसूँ और वैदिक जो यागादिसाधक जो वचन ता करिकं कहा कर्त्तव्य है ? कछु कर्त्तव्य नांहि है । सोही श्रीमहाप्रभूनने अन्तःकरणप्रबोधके प्रथम श्लोकमें कह्यो है जो "हे अन्तःकरण ! मेरो वाक्य सावधान होयकें सुन जो श्रीकृष्णसूँ अधिक कोउ दैवत दोषकरिकें रहित नांहीं है", इतने प्रभु एकहि निर्दोष हैं और सब सदोष हैं तासूँ निर्दोषकों हृदयमें स्थापितकियेसूँ भक्त के सब कामकी सिद्धि है, और पूर्व जो नारदादिक मुनियें भये हैं विननेंहू भगवत्प्राप्तिके लिए प्रभुकी सेवा करिवेको उपदेश कियो है, जब वह प्रभुही जाके हृदयमें बिराजे वाभक्तकूँ सेवाके फलमें कहा न्यून रहे है ? सब काम पूर्णही होय है ॥ ३ ॥

ऐसें कामरूप-तृतीय पुरुषार्थको निरूपण करिकें मुक्तिरूप-चतुर्थ-पुरुषार्थको अब निरूपण करत हैं—

श्रुतः सर्वात्मना शश्वत् गोकुलेश्वरपादयोः ।
स्मरणं भजनं चापि न त्याज्यमिति मे मतिः ॥ ४ ॥

॥ इति श्रीवल्लभाचार्यविरचिता चतुःश्लोकी समाप्ता ॥

भावार्थ—श्रीगोकुलेश्वर हृदय में विराजे ता पीछेंहु सर्वात्माकरिके विनके चरणकमलको स्मरण और भजन (सेवा) न छोडनो ऐसी मेरी मती है; इतने औषधके सेवनसूँ सुखी भयो ऐसो पुरुषहू औषध खाय तो आगें रोग होयवेको सम्भव न रहे ता प्रकार प्रकृतमें प्रभुकी प्राप्ति भये पीछेंहू जीवकूँ आसुर जीवके सङ्गसूँ आसुरावेश नहीं होयवेके लिये प्रभुको स्मरण और भजनरूप साधन औषधकीनांई सदा कर्त्तव्य है, ऐसें श्रीमहाप्रभुजी दैवीजीवनके ऊपर कृपा करिकें बिनकूँ जतायवेके लिये मेरी मति है या प्रकार आज्ञा करे हैं ॥ ५ ॥

॥ इति श्री चतुःश्लोकीकी गोस्वामिश्रीनृसिंहलालजीमहाराजकृ
व्रजभाषामें संक्षिप्तटीका समाप्त ॥

—०—

* श्रीकृष्णाय नमः *
* श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः *

अथ भक्तिवर्द्धिनीकी व्रजभाषामें संक्षिप्त भाषाटीकाको प्रारम्भ

अथ पुष्टिमार्गमें अङ्गीकृत और भक्तिकी वृद्धिके प्रकारकूँ नहीं जानवेवारे-जीवनके ऊपर कृपा करिवेवारे श्रीआचार्यजी, स्वप्रकटितमार्गमें प्रवर्त्तमाना भक्ति और ताकी वृद्धिके प्रकार कहिवेकी प्रतिज्ञा करत हैं—

यथा भक्तिः प्रवृद्धा स्यात् तथोपायो निरूप्यते ।
बीजभावे दृढे तु स्यात् त्यागाच्छ्रवणकीर्त्तनात् ॥ १ ॥

भावार्थ—श्रीआचार्यजी आज्ञा करत हैं जो स्वमार्गीय भक्तिकी वृद्धि होयवेके उपायको निरूपण होय है जो स्वमार्गमें कह्ये भये साधननसूँ और जो मर्यादामार्गीय साधन हैं विनको परित्याग तथा स्वमार्गीय-श्रवण और कीर्त्तनको परिशीलन करिवेसूँ भाव दृढ़ होय तब भक्तिकी वृद्धि होय है. यहाँ कोउ कहे जो भक्ति की उत्पत्ति और ताकी वृद्धिके उपाय तो श्रीभागवत तथा गीताजी प्रभृति ग्रन्थनमें विस्तारसूँ वर्णित हैं तब श्रीआचार्यजी ताके लिये नूतनग्रन्थ करिवेको परिश्रय क्यों करत हैं ? ऐसी शङ्काको समाधान तो यह है जो श्रीभागवतादिकमें 'दान, व्रत, तप, होम, जप, स्वाध्याय, संयम और इतर श्रेय उन करिके श्रीकृष्णमें भक्ति सिद्ध होय है' इत्यादि श्लोकनसूँ जो भक्तिकी उत्पत्तिको प्रकार और "आपकी कथाके पान करिवेसूँ जिनकूँ भक्तिकी वृद्धि और निर्मल अन्तःकरण भये हैं वे वैराग्य है सार जामें ऐसे ज्ञानकूँ प्राप्त होयके आपकें स्थानकूँ प्राप्त होय है" इत्यादिक वाक्यनसूँ ताकी वृद्धि निरूपित है सो दान, व्रतादिक मर्यादामार्गीय साध-

ननसूँ होय सके है और वृद्धिको फल ज्ञान अथवा मर्यादामार्गीय भक्ति है तासूँ अक्षर की प्राप्ति करायवेमें वा भक्ति उपक्षीण होय जाय है, तासूँ पुरुषोत्तमलीलाको अनुभव करायवेवारी जो पुष्टिभक्ति ओर ताकी वृद्धिके उपायको या ग्रन्थसूँ श्रीआचार्यजी निरूपण करत हैं सो उचिततर है, अब पहिलें बीजभाव दृढ होयवेको कह्यो ताको स्वरूप कहत हैं जो पुष्टिमार्गके आचार्यद्वारा मार्गरीति अनुसार प्रभुकूँ आत्मा प्रभृतिको निवेदन भये पीछें प्रभु स्वतः वा जीवकों शरण सिद्ध करत हैं ताकूँ या ग्रन्थ में बीजभाव कह्यो जाय है, जैसें क्षेत्रमें बीज बोयें पीछें जलसेचनादिक होय तब अंकुरादि होय है, केवल जलसेचन अंकुरकी उत्पत्तिमें असमर्थ है ऐसें भक्तिमार्गमें आगे कह्यो बीजभाव भये पीछे श्रवण मननादि भक्तिकूँ उत्पन्न करि सके है विना बीजभाव वे अकिंचित्करप्राय है ऐसें श्रीहरिरायजी आज्ञा करत हैं ॥१॥

ऐसें बीजकी दृढताको प्रकार प्रथम श्लोकसूँ कहिकें अन्यव्यापारसूँ हू वामें विघ्न नहिं आयवेके लिये भगवद्भजनरूप उपायकी दृढता सिद्धिके लिये अब कहत हैं—

बीजदार्ढ्यप्रकारस्तु गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः ।
अव्यावृत्तो भजेत् कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः ॥ २ ॥

भावार्थ—स्वधर्माचरणपूर्वक गृहमें रहिकें सेवाप्रतिकूल–उद्योगकूँ छोडिकें पूजा (प्रेम पूर्वक दर्शन) और श्रवणादिकसूँ श्रीकृष्णको भजन (सेवा) करनो, सो बीजभावकी दृढ़ताको प्रकार है; इतने पुष्टिमार्गमें उक्त साधनसूँ अन्य—मार्यादिक साधनको परित्याग करिवेको मूलके 'तु' शब्दसूँ सूचित होय है, और पुष्टिमार्गीय साधननमें मुख्य सेवा सो भजनानुकूल–गृहमें रह्यें विना होय सके नहीं, तासूँ मूलमें गृहमें रहिवेको कह्यो है, और धर्म दोय प्रकारके हैं; तामें एक तो जाको शरीरमें अन्त आवे सो और दूसरो आत्मामें जाको अन्त आवे है सो तामें सन्ध्यावन्दनसूँ लेयकें याग पर्यन्त धर्म स्वर्गादि भोगरूप फलकूँ देवेवारे हैं सो फल शरीरसूँ अनुभूत होय है, और गीताजी में कह्यें प्रमाण फलभोग होय चूके तब पृथ्वी ऊपर गिरे है तासूँ-स्वधर्मपदसूँ यह धर्म नहीं लेनो, किन्तु आत्मधर्म जो काहु प्रकारसूँ विकृत नहीं होयवेवारो भगवद्धर्म है सो लेनो, ऐसें सूचित होय है, सो धर्म प्रभुकी सेवा है सो श्रीभागवतमें प्रह्लादजीको वचन है जो "आदर्शमें प्रतिबिम्बत मुखकूँ देखिकें मुखमें जो-जो शृङ्गार होय सो ही प्रतिबिम्ब स्थानीय मुखकूँ होय, तैसें मनुष्य प्रभुकूँ जो-जो मान देय है सो आत्माके लिये ही है" ऐसें

वर्णित जो भगवत्सेवारूप-आत्मधर्म सो स्वधर्मपदसूँ लियो जाय है और स्वधर्मतः ऐसें 'तसिल्' प्रत्ययान्तरूप लिखवेको अभिप्राय तो यह है जो तसिल् प्रत्ययान्त शब्द अव्यय होयवेसूँ वामें काहु प्रकारकी विकृति नहीं होय है ऐसें यहाँहु अव्ययको प्रयोग करयो है तासूँहु काहू प्रकार विकृत न होय ऐसो धर्म लेबेको अभिप्राय दीखे है और फलात्मक – श्रीकृष्णके उपादानसूँ यह भजन मेरे फलरूप है ऐसें जानिकें करिवेको बोध होय है, यामें जो पूजा शब्द है तासूँ आगमोक्त पूजाको ग्रहण करिवेको नहीं है किन्तु श्रीगोपीजननने "प्रणयपूर्वक दर्शनसूँ ये हरिणीयें श्रीकृष्णको पूजन करत भई" ऐसें दशम स्कन्धमें कह्यो है वहाँ प्रेमपूर्वकदर्शनकों पूजाके अर्थरूप गिन्यो है, ऐसी पूजा यहाँहु लेवेकी है, और श्रवणकी जो मूलमें आज्ञा है सो सेवाके अनोसरमें करिवेकी है ॥ २ ॥

अब प्रभुमें दृढ़ विश्वास होय तो प्रभुही वाको योगक्षेम चलावत है परन्तु दृढ़ विश्वास न आवे ऐसे जीवनकूँ गौणपक्षमें व्यावृत्ति (उद्योग) करिवेकी आज्ञा करत हैं—

व्यावृत्तोऽपि हरौ चित्तं श्रवणादौ यतेत् सदा ।
ततः प्रेम तथाऽऽसक्तिर्व्यसनं च यदा भवेत् ॥ ३ ॥
बीजं तदुच्यते शास्त्रे दृढं यन्नापि नश्यति ।

भावार्थ—भगवत्सेवामें प्रतिकूल—व्यापारको त्याग करिवेकी आज्ञा आगेके श्लोकसूँ करी, अब कछु उद्योग करनो पडे, तोहु चित्तकूँ प्रभूमें ही राखिके करनो, और व्यावृत्तिमें तथा व्यावृत्तिसूँ मुक्त होयकें श्रवणादि करने । आदिशब्द मूलमें लिख्यो है तासूँ श्रवण, स्मरण, चिन्तन, कीर्त्तन प्रभृति अनोसरमें करनें । ऐसें भक्तिमार्गीय—भक्तिकी वृद्धि होयवेको उपाय कहिकें अब भक्ति बढिवेको क्रम कहत हैं जो प्रथम तो श्रीआचार्यजी के कुल द्वारा भगवदङ्गीकार सिद्ध होय, तब प्रेम इनने स्वतः प्रभुमें प्रवृत्ति करायवेवारो स्नेहको अंकुर हृदयमें स्फुरे है तापीछे प्रभुमेंही मनकूँ लगायवेवारी आसक्ति होय है ताकूँ प्रौढस्नेह कहें हैं ता पीछे एक क्षणहू प्रभुको वियोग सह्यो न जाय, ऐसो प्रभुमें व्यसन होय है, ऐसें व्यसन पर्यन्त भाव बढे और प्रभुको क्षणमात्र वियोग सहन न होय सके, तब बीजभाव दृढ़ भयो ऐसें जानतो । जा जीवकूँ आगें कहे प्रमाण बीज भावकी दृढ़ता भई है सो, दुःसङ्गादि लौकिक-दोष आइमिलवेसूँ और कालादिकनकी प्रतिकूलतारूप अलौकिक— दोषसूह भक्तिमार्गसूँ सरके नहीं है ॥ ३ ॥

ऐसें क्रमसूँ स्नेह बढवेकी रीति कहिकें अब स्नेह होयवेमें बाधकरूप प्रभु सिवाह और वस्तूनमें स्नेह, गृहमें आसक्ति और प्रभु विनाहु काल-निर्वाह ये तीन दोष हैं सो जब प्रभुमें एक भाव बढे तब एक बाधक मिटे, दूसरो भाव बढे तब दोय बाधकदोष निवृत्त होय और जब प्रभुमें व्यसन पर्यन्त भाव होय तब भावविघातक-दोष सब दूरी होय है, सो जा क्रमसूँ एकभावकी वृद्धिमें एक दोषकी निवृत्ति होय सो क्रम कहत हैं—

स्नेहाद्रागविनाशः स्यादासक्त्या स्याद् गृहारुचिः ॥ ४ ॥
गृहस्थानां बाधकत्वमनात्मत्वं च भासते ।
यदा स्याद् व्यसनं कृष्णे कृतार्थः स्यात्तदैव हि ॥ ५ ॥

भावार्थ—जब प्रभुमें स्नेह होय तब लौकिकमें स्नेह न रहे, ऐसे जब प्रभुमें आसक्ति होय तब गृहमेंसूँ आसक्ति छूट जाय है (४) इतनोही नहीं किन्तु गृहमें रह्यो ऐसे स्त्री-पुत्र प्रभृति (भगवदीय न होय तो) मोकूँ भगवद्धर्म करिवेमें ये सब बाधक हैं, ऐसें दीखे और विनमें अनात्मताकीहू स्फूर्त्ति होय; इतने भगवदीयके आत्मा तो श्रीकृष्ण हैं तासूँ जो भगवत्सम्बन्धवारे जीव हैं तिनमें अपनेपनेकी स्फूर्त्ति होय है। स्त्री-पुत्रादिकनमें अपनेपनेकी स्फूर्ति नहीं होय है, क्यों जो वे तो लौकिकासक्तिके कारणरूप हैं वे हु जो भगवदीय होय तो भगवदीयपनसूँ आसक्ति बाधक नहीं है तासूँ विनको बाधकपनो दीखवेमें आवे है, अब स्नेह वृद्धिकी पराकाष्ठा कहत हैं जो जब प्रभुमें व्यसन भयो तब सो जीव कृतार्थ होय है; इतने अर्थ जो भक्तिमार्गकी रीतिके अनुसार प्रभुको फलरूप सम्बन्ध सो जाकूँ भयो है ऐसो जीव होय जाय है ॥ ५ ॥

ऐसें प्रभुमें व्यसनवारेकी योग्यता, भाव और फलको निरूपण करिके अब वाकी आगेकी व्यवस्था कहत हैं—

तादृशस्यापि सततं गृहस्थानं विनाशकम् ।
त्यागं कृत्वा यतेद्यस्तु तदर्थार्थैकमानसः ॥ ६ ॥
लभते सुदृढो भक्तिं सर्वतोप्यधिकां परात्म् ।

ऐसे भाववारे जीवकूँहू तादृश-भगवदीयके सङ्ग विना घरमें स्थिति है सो भावको नाश करिवेवारी है तासूँ वाकूँ गृहमें रहनो उचित नहीं है;

क्यों जो-जो जाको नाश करिवेवारो है सो बाकी समीप रहि नहीं सके है, जैसें" हे कमल सरीखे नेत्रवारे जबसूँ आपके चरणारविन्दको स्पर्श भयो है, तबसूँ और लोगनके आगें हम ठाड़े रह सके नहीं है" ऐसें व्रजरत्नरूप–श्री-गोपीजननें श्रीठाकुरजीसूँ कह्यो है। ताकी विवृत्ति में श्रीआचार्यजी आज्ञा करे हैं जो देहके अभिमानी पुरुष व्याघ्रकूँ देहविघातक समजिकें वाके पास ठाडो नहीं रहिसके है, ऐसें तादृशीयकूँ लौकिकासक्तके पास रहिवेसूँ भाव की हानि होय जाय? तासूँ वा भाववारो गृहको त्यागकरि मनमें एक प्रभुकोंहि मिलवेकी अभिलाषा राखि भावकूँ बढायवेको यत्न करे तो ऐसें करते-करते सुतरां दृढ़ ऐसी भक्तिकूँ सम्पादन करे है। यहाँ प्रथम व्यसन पर्यन्त भाव करिकें सर्वापनोद्य (सर्व लौकिकासक्तिकूँ छुडायवेवारी), भक्ति कहिकें पुनः सुदृढ भक्ति कहिवेको अभिप्राय यह है जो पहेलेकी भक्तिहु फलरूप तो है परन्तु सुदृढ़ इतनें सर्वात्मभावरूप साक्षात् स्वरूपके अनुभवरूप फल जामें है ऐसी भक्तिकूँ प्राप्त होय है, मूलश्लोकमें लाभ होय है ऐसें कह्यो है वाको अभिप्राय यह है जो पूर्व कह्यो जो अत्यन्त गाढभाव ता-करिकें विद्यमान देहको जब नाश होय तब लीलामें उपयोगी अलौकिक देह वाको होयजाय है। पीछे वादेहसूँ साक्षात् स्वरूप सम्बन्धि-फलकूँ प्राप्त होय है। यह भक्ति फलरूप है ऐसें जतायवेके लिये सर्वसूँ अधिक और पर ऐसे मूलमें दोय विशेषण दिये हैं; इतने मुक्त्यादिकसूँ अधिक और अगणित-परमानन्दरूप-पुरुषोत्तममें जाको सम्बन्ध है, ऐसी भक्ति है, ऐसें विशेषण-द्वयसूँ सूचित होय है॥ ६॥

अब कदाचित् कोउ भक्तिमार्गीय पूर्वोक्त त्यागको स्वरूप समजेविना ही 'हमहु गृहको त्याग करिकें भक्ति बढावेंगे' ऐसो मनमें निश्चय करिकें अधिकार विना जो गृहको त्याग करे ताकूँ ऐसें करिवेको निषेध करत हैं—

त्यागे बाधकभूयस्त्वं दुःसंगात्तथाऽन्नतः॥ ७॥

भावार्थ – जाकूँ व्यसन पर्यन्त भाव बढ्यो नहीं है ऐसे पुरुषकूँ भक्ति बढ़ायवेके लिये गृह छोडवेमें बाधक बहोत है। पहिलें कह्यो जो गृह-त्यागी वाकूँ बीजभावकी ऐसी दृढता है जो वाकूँ दुःसंसर्गादि दोष कछु बाधा करिसके नहीं है परन्तु याकूँ तो विशेष भाव नहीं होयवेसूँ दुःसंसर्ग दोष बहोत बाधा करे है और शरीर निर्वाहके लिये लोगमें काहुजगे जानो पडे वहाँ जो देय सो सब लेनो पडे, तब वामें प्रभुकूँ न समर्प्यो भयो अन्नहु

आवे ताके ग्रहणसूँ बहिमुखपनो होय जाय, ऐसें औरहु बहोत दोष होय है विनमें मुख्य तो दुःसङ्ग और अन्नदोष है तासूँ मूलश्लोकमें दोउको उपादान कियो है ॥ ७ ॥

अब ऐसे अपक्कभाववारेकूँ दोष कोउ न आवे और कालहु निकस जाय ऐसो सुलभ रस्ता उत्तरश्लोकमें कहत हैं—

अतः स्थेयं हरिस्थाने तदीयैः सह तत्परैः ।
अदूरे विप्रकर्षे वा यथा चित्तं न दुष्यति ॥ ८ ॥

भावार्थ—कालनिर्वाह होय और दोष न आयवेके लिये सो (त्यागी) जहाँ स्वमार्गकी रीतिके अनुसार सेवाको प्रवाह चलतो होय ऐसे प्रभुके स्थान जो गोवर्द्धनादि प्रभृति तामें रहे; तामेहु भगवद्भक्तके सङ्ग निरन्तर रहे; तामे हु प्रभुकी सेवा, स्मरणपरायण रहे, वहाँहु ऐसें न करे तो दुःसंगादिक दोष लगजाय तो सब जीवत छिनमें व्यर्थ होय जाय। अब निरन्तर ऐसें स्थिति करिवेसूँ कदाचित् कोउ भगवदीयको अतिपरिचितपनेसूँ दोष दीखवेमें आवे तोहु आछो नहीं तासूँ प्रकारान्तरसूँ रहिवेकी आज्ञा करे हैं जो जैसें प्रभुमें और प्रभुके भक्तमें दोषबुद्धि न होय ऐसें समीपमें अथवा दूरमें रहेनो, परन्तु भगवदीयके सङ्ग बिना क्षणवारहु रहेनो नहीं। तैसें विनकूँ विनकी ऊपर अपनी ऊपर तथा अपनकूं अभावहु आयवे देनों नहीं ऐसें रहेनो जामें मनमें कोउ प्रकारको दोष आयवेकूं न पावे ऐसी रीतिसूं रहेनो ॥ ८ ॥

ऐसें प्रभुमें अत्यन्त भाव बढवेसूं गृह छूट जाय वाकी ओर अज्ञानसूं गृह छोडे वाकी सिद्धिके उपाय और फल कहे, अब पुष्टिमार्गीय सेवा और कथा वामें अन्यतरमें आसक्ति राखिवेवारेकूं हू फलकी सिद्धि होय सो कहत हैं—

सेवायां वा कथायां वा यस्यासक्तिर्दृढा भवेत् ।
यावज्जीवं तस्य नाशो न क्वापीति मतिर्मम ॥ ९ ॥

भावार्थ—श्रीआचार्यजी प्रकटित पुष्टिमार्गानुसारी ऐसी प्रभुकी सेवा में तथा एतन्मार्गीय-भगवल्लीलाकी कथामें जाकी आसक्ति (चित्तके व्यासंगपूर्वक दृढ़ आग्रह) रहे; इतने काहूकूं सेवामें तो काहूकूं कथामें और काहूकूं दोयमें आसक्ति होय सो हु यावज्जीव नाम जहाँ तांई देहमें प्राण रहे

तहाँतांई रहे तो वाको काहु प्रकारसूं नाश न होय और पुष्टिमार्गीय-फल वाकूं सिद्ध होय वामें संशय नहीं होयवेके लिये श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं जो मेरी बुद्धिमें ऐसें आवे है जो वाको काउ प्रकारसूँ नाश न होय, इतनो कहिवेसूं फलकी निःसंदिग्धताको बोध होय है ॥ ९ ॥

ऐसें सेवासक्त और कथासक्तकूं देखिकें कोउ आसक्तिके अभावमें हु उत्साहसूं सेवा करे तो वाकूं बाधा होय सो और ताकी निवृत्तिको उपाय अब कहत हैं—

बाधसंभावनायां तु नैकान्ते वास ईष्यते ।
हरिस्तु सर्वतो रक्षां करिष्यति न संशयः ॥१०॥

भावार्थ– सेवा करिवेमें दृढ़ता नहीं होयवेसूं उद्वेग होय और भोग की आसक्ति होय सो सेवामें बाध समजनो ऐसे बाधकी सम्भावनामेंहु मोसूं सेवा नहीं बनीसके हैं तासूं मे गृहकूं छोडिकें कोउ-एकान्तमें जायकें भगवद् भजन करूंगो, ऐसो विचार करिकें सेवाकूं न छोडे; क्यों जो प्रभु सर्वके दुःखको हरण करिवेवारे हैं तासूं हरिनाम है सो उद्वेगादिककूं मिटायकें सेवामें आसक्ति दृढ़ करेंगे तासूं जैसें बने तैसें सेवा करे, ऐसें करनहारकूं प्रभु भाव बढ़ावे यामें काहु प्रकारको संशय न करनो, ऐसें कथामें आसक्त होय वामें विघ्न आवे तोहु वाकूं कथा न छोड़नी, तो प्रभु सब बाधाकूं दूर करिकें जामें वाकी प्रवृत्ति होयगी वामें मनकूं निश्चल करेंगे, ऐसें विश्वास पूर्वक समजनो ॥१०॥

अब उपसंहार करत हैं—

इत्येव भगवच्छास्त्रं गूढतत्त्वं निरूपितम् ।
य एतत् समधीयीत् तस्यापि स्याद् दृढा रतिः ॥११॥

भावार्थ—ऊपर कह्यो प्रमाण जो वाणीमें हु नहीं आइसके किन्तु अनुभवसूं जानिवेलायक गूढ़ है तत्त्व जाको ऐसो भक्तिकी वृद्धिको शास्त्र निरूपित कियो है या शास्त्रकूं सम्यक् प्रयाससूं अर्थानुसन्धान पूर्वक जो पाठ करे ताकूं हु ऐसें करत-करत निष्पाप अन्तःकरण जब होय तब प्रभुमें दृढ़ प्रीति होय; इतने याको अर्थानुसन्धान पूर्वक नित्य पाठ करिवेसूं मार्गमें रुचि होय और भक्तिमार्गीय आचार्य द्वारा शरणागति होयवेसूं प्रभुमें दृढ़ रति इतने रसभावयुक्त स्नेह होय ॥११॥

॥ इति श्रीवल्लभाचार्यजीविरचित 'भक्तिवर्द्धिनी'की गोस्वामिश्रीनृसिंहलाल जी महाराजविरचिता ब्रजभाषामें संक्षिप्त टीका समाप्त भई ॥

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अथ श्रीजलभेदग्रन्थकी व्रजभाषामें संक्षिप्त भावार्थटीकाको प्रारम्भ ।

—★—

अपने (पुष्टिमार्गीय-वैष्णवनकूँ) सेव्य श्रीकृष्ण, केवल भाव करिकें ही प्राप्त होय सकें हैं, बिना भावसूँ सम्पादित-ज्ञानादिकहू प्रभु प्राप्तिमें बाधक है ऐसें श्रीभागवतादिक-सब ग्रन्थनमें विदित है; तासूँ भाव रहित कृति, अस्नेह (बिना घृतके) भोजनकीनांई फल सम्पादक नहीं होयवेसूँ श्रीआचार्यजी-महाप्रभुजी निज जनके ऊपर कृपा करिकें, विनके भावकी वृद्धि होयवेके लिये आप भावको निरूपण करिवेकी प्रतिज्ञा करत हैं—

नमस्कृत्य हरिं वक्ष्ये तद्गुणानां विभेदकान् ।
भावान् विंशतिधा भिन्नान् सर्वसन्देहवारकान् ॥ १ ॥

भावार्थ—प्रभूनकूँ नमनकरिकें भक्तिके साधनमें जो-जो सन्देह हैं विनकूँ मिटायवेवारे, और रजोगुण, तमोगुण और सत्वगुण विनकूँ निवृत्त करिवेवारे न्यारे-न्यारे बीस प्रकारके भावनकूँ मैं आगें निरूपण करूँ हूँ; इतने जीव प्रभुकूँ नमन बिना और कार्य नहीं कर सके है, ऐसें जतायवेके लिये आप प्रथम नमनकरिवेकी आज्ञा करत हैं, "तद्गुणानां विभेदकान्" ऐसे मूलके वाक्यके दो-चार अर्थ होय सके है; जैसें प्रभूनके जो सर्वसमत्वादि गुण विनके मिटायवेवारे भाव है इतने जो भक्त भावकूँ बढायकें भक्ति करे तो प्रभु आपको सर्वसमत्वरूप जो गुण है ताकूँ छोडिकें वा जीवके ऊपर पूर्ण कृपा करे हैं सो बात श्रीगीताजी में "मैं सर्वप्राणीनकूँ समान हूँ मेरे कोउ

शत्रु और मित्र यद्यपि नहीं हैं तो हू जो मेरो ही भजन करे है सो मेरे में हैं और विनमें मैं हूँ" ऐसी आज्ञा स्पष्ट करी है, अथवा जीवके जो धर्म वामें विलक्षणता करिवेवारे अथवा प्रभुके जो गुण विनको आकर्षण करिकें जीवमें दिखायवेवारे सब भाव हैं, ऐसें या वाक्यके अनेक प्रकारके अर्थ श्रीकल्याणरायजी प्रभृति-बालकनने किये हैं, भाव शब्दके यद्यपि अनेक अर्थ होय है तो हू यहाँ तो स्नेह और तासूँ होयवेवारी अवस्था ही भाव शब्दसूँ जाननी; क्यों जो नाटचाचार्य-भरतमुनि-प्रभृतीनने भावको अर्थ स्नेहरूपही कियो है सो "रतिर्देवादि विषया भाव इत्यभिधीयते" (देवादिकनमें जो रति (प्रीति) है ताकूँ भाव कहे हैं, या वाक्यसूँ कह्यो है। गुणके भेद करिकें वे भाव बीस प्रकारके हैं, जब प्रभुमें भाव बढे तब आपहि सर्व सन्देह नष्ट होय जाय है तासूँ मूलमें 'सर्वसन्देहवारकान्' ऐसें कह्यो है॥ १॥

वेदमें तैत्तरीय श्रुतिमें "कुप्याभ्यः स्वाहा" वहाँसूँ लेयकें 'सर्वाभ्यः स्वाहा' वहाँतांई जलके भेदको निरूपण है ताप्रमाण गुणहू भेदकूँ प्राप्त होय हैं सो कहत हैं—

गुणभेदास्तु तावन्तो यावन्तो हि जले मताः।

भावार्थ – जितने जलके भेद तैत्तरीय-श्रुतिमें प्रतिपादित हैं तितने ही भेद हैं, जैसें जलमें ताप निवर्त्तकपनो, शुद्धि करिवेपनो, और पुष्टि करिवेको गुण है, ऐसे गुण भावमें हू हैं ऐसें जतायवेके लिये जलको दृष्टान्त है॥ १॥

प्रभुकूँ गायन विशेष प्रिय होयवेसूँ प्रथम गायकके भावको निरूपण करत हैं—

गायकाः कूपसङ्काशा गन्धर्वा इति विश्रुताः॥ २॥
कूपभेदास्तु यावन्तस्तावन्तस्तेऽपि सम्मताः।

भावार्थ—प्रसिद्ध गान करिवेवारे गायक गन्धर्वके नामसूँ प्रसिद्ध हैं वे गायकें कूप जेसें हैं; इतने कूपके जलकीनांई विन गायकनको भाव है, कूपको जल शीतकालमें उष्ण और उष्णकालमें शीतल है, तापकूँ दूर करे है और व्यय करिवेसूँ आछो होय है, ऐसें गायकको भाव जडपुरुषकी जडताकूँ मिटावे है, संसारके तापसूँ तप्त भये-पुरुषनके तापकूँ निवृत्त करे हैं और गान करिवेसूँ बढे है तथा आछो होय है, रज्जु (रस्सा) करिकें कूवाको

जल ग्रहण कियो जाय है, ऐसें गानकरिकें ही गायकके भावको ग्रहण करिवे को अभिप्राय यहाँ दीखे है, वे सब गायकें तुल्य नहीं हैं किन्तु जितने कूवाके भेद हैं तितने ही गायकनके भेद हैं; इतने जैसें कोउ कूवाको जल खारो होय; कोउको फीको होय, कोउको तिक्त जल होय, कोउ परिणाममें सुख देवेवारे होय और कोउ परिणाममें दुःख देवेवारे–जलयुक्त होय हैं, तैसें गायकहू पुरुषोत्तम, विनकी विभूति, गुणावतार, और अंशादिकनकी लीलाके भेदकरिकें गान करे हैं, तैसें सत्त्वादिक–गुणनके भेद करिकें कोउ अकाम, कोउ मोक्षकाम, कोउ स्वर्गकाम और कोउ लौकिक कामनावारे हैं; तासूँ विनको भाव कूपके जलकी तुल्य है या भावकी हकीकत कपिलदेवजी ने देवहूतीजीकूँ श्रीभागवत–तृतीय स्कन्धमें कही है; तासूँ ही (भावके भेदसूँ ही) भक्तिके हू ८२ प्रकार होय है सो श्रीप्रभुचरणनने भक्ति हंसादिकनमें निरूपण किये हैं—

श्रवणादिनवक हू अधिकारिके भेदसूँ कर्म, ज्ञान, उपासना और भक्तिमार्गीयपनेके भेदसूँ अनेक प्रकारको होय है, अब यहाँसूँ द्वितीयभाव को निरूपण करत हैं—

कुल्याः पौराणिकाः प्रोक्ताः पारम्पर्ययुता भुवि ॥ ३ ॥

भावार्थ कृत्रिम नदी 'कुल्या' नामसूँ प्रसिद्ध है वाकीनांई पौराणिक है सो पारम्पर्ययुक्त हैं; इतने जलाशयसूँ लेयकें क्षेत्र पर्यन्त कुल्या परम्परा-गत–जल प्रवाहयुक्त है, ऐसें पृथ्वीमें पुराणके अर्थ राखिवेमें पौराणिक पर-म्परासूँ अर्थ संग्रह करिवेवारे हैं, सद्गुरूनकी पास उपदेश ग्रहणकरिकें पुराणके अर्थकूँ गुरुके पाससूँ पढे है, ऐसें उपदेश ग्रहण किये बिना और गुरूनकी पाससूँ अर्थ जाने बिना श्रीभागवतादिकमें भाषात्रय और आसुर व्यामोहादि लीला वर्णित है ताके अज्ञानसूँ जो पुराणको अर्थ समझावे तोहू वासूँ कोउ अर्थ सिद्ध न होय तासूँ गुरूपदेशादिककी पौराणिकनकूँ अत्या-वश्यकता है, ता बिना कथा करे सो कथा श्रोताकूँ फल देयवेवारी नहीं होय है, जैसें कृत्रिम नदी–(नेहेर) प्रतिदिन प्रयत्न करिवेसूँ आछीरीतसूँ जलकूँ बहे है, तैसें पौराणिककूँ हू निरन्तर पुराणके पाठ करिवेसूँ भावको उदय होय है ऐसें हू यापेसूँ जान्यो जाय है ॥ ३ ॥

अब तृतीयभावो निरूपण करत हैं--

क्षेत्रप्रविष्टास्ते चापि संसारोत्पत्तिहेतवः ।

भावार्थ--शरीर और स्त्रीको वाचक (क्षेत्र) शब्द है तासूं वे पौराणिक जो देहनिर्वाह अथवा स्त्री कुटुम्बादिकके लिये पुराण वाचवेको कार्य करे तो वेहू संसारोत्पत्तिके कारणरूप होय है; इतने जैसें कुल्या को जल क्षेत्रमें जाय तो धान्य उत्पन्न करिवेमें समर्थ होय है तैसें पौराणिक हू वृत्ति के लिये पुराण वाचन करे और भीतर भाव रहित होय तो संसारकी उत्पत्तिके कारण होय है, जैसें पौराणिक स्त्रीकुटुम्बादिकके पोषणार्थ ही पुराणको उपयोग करे और आप वा प्रमाण चले नहीं तो संसारकी उत्पत्ति के कारण होय। तैसें पूर्वश्लोकमें कह्ये गायक प्रभृति हू स्त्री-पुत्रादिकके लिये जो गान करे तो वेहू संसारोत्पत्तिके कारणरूप होय, ऐसें मूलके (अपि) शब्दसूं सूचित होय है।

अब चतुर्थभावको निरूपण करत हैं—

वेश्यादिसहिता मत्ता गायका गर्त्तसञ्ज्ञिताः ॥ ४ ॥

भावार्थ--गायक जो वेश्यादियुक्त होयकें मदमें मत्त होय विनको भाव गर्त्त (खाडा) के जलकी तुल्य है; इतनें "जैसें वारांगना-स्त्रीके संसर्ग करिवेवारेनके प्रसङ्गसूं मोह और बन्ध होय है तैसें या जीवकूं और के प्रसङ्गमें नहीं होय है" ऐसें श्रीकपिलदेवजीने आज्ञा करी है; तासूं वेश्यादिकनको सङ्ग महाबाधक है, स्त्रीके प्रसङ्ग करिकें हू जो प्रभुको भजन करे तो आछो होय परन्तु भजन (सेवा) हू वे नहीं करे है; क्यों जो मत्त हैं तासूं विनकूं स्वामि सेवकभावको अनुसन्धान नहीं रहे है, ऐसे गायक श्रीकृष्णके गुणको गान करे है सोहू माहात्म्य जानिकें नहीं करे है किन्तु उत्तम स्वर और गीत में वश होयकें कोउ बिरियाँ करे है; तासूं विनको भाव खाडाके जलकीनाँई कलुषित गिन्यो जाय है, और जो निर्मत्सर होयकें गुणगान करिवेवारे हैं विनको भाव तो कूपके जलकी तुल्य जाननो ॥ ४ ॥

अब पञ्चम भावको निरूपण करत हैं—

जलार्थमेव गर्त्तास्तु नीचा गानोपजीविनः।

भावार्थ—गान करिकें ही आजीविका करिवेवारे नीच पुरुष हैं विनको भाव उच्छिष्ट (जूठके) जल समान है; इतनें जूठे वासण प्रभृति खासाकरे तब सब जूठो जल एकखाडामें जमा होय है। तैसें गानोपजीविनीचपुरुषनको भावहू सत्पुरुषनकूं आदरकरिवे योग्य नहीं है।

छट्ठे भावको निरूपण करत हैं—

हृदास्तु पण्डिताः प्रोक्ता भगवच्छास्त्रतत्पराः ॥ ५ ॥

भावार्थ—भगवच्छास्त्र जो श्रीभागवत-गीताजी तामें तत्पर ऐसे जो पण्डितलोग हैं विनको भाव हृद (दह) के जलकी तुल्य है; इतने नदी प्रभृति में जहाँ जल बहोत उंडो निरन्तर रहे वाकूँ हृद कह्यो जाय है वा हृदमें जैसें जल निरन्तर शीतल रहे है और पश्वादिकनसूँ मलिन नहीं होय सके है तैसें पण्डितनको भाव हू सांसारिक तापसूँ तप्त नहीं होय है और कुतर्कादिकसूँ हू संशयवारो नहीं होय है, ऐसो जतायवेके लिये जलके हृदको दृष्टान्त यहाँ श्रीमहाप्रभुजीने दीयो है ॥ ५ ॥

अब सप्तम भावको निरूपण दृष्टान्त पूर्वक करत हैं—

सन्देहवारकास्तत्र सूदा गम्भीरमानसाः ।

भावार्थ—गम्भीर है मन जिनको इतने अन्तर्निष्ठावारे और भगवच्छास्त्रमें सन्देहकूँ मिटायवेवारे जो पण्डित हैं, विनको भाव आछे जलवारे हृदकी तुल्य है; इतनें जैसें बहोत सुन्दर जलको इकट्ठो समुदाय देखतखेमही मनकूँ प्रसन्न करिवेवारो है तैसें या श्लोकमें कह्यो ऐसे पण्डितन हू मनके सर्वसन्देहकूँ मिटायकें मनकूँ प्रसन्न करिवेवारे हैं ऐसें समजनो ।

अब अष्टम भावको निरूपण करत हैं—

सरः कमलसम्पूर्णाः प्रेमयुक्तास्तथा बुधाः ॥ ६ ॥

भावार्थ—पूर्वश्लोकमें कह्यो ऐसे अन्तर्निष्ठावारे और सन्देहकूँ निवृत्त करिवेवारे पण्डितहु जो प्रभुमें प्रेमवारे होयँ तो कमलयुक्त-तलाबके जलके तुल्य विनको भाव जाननो; इतनें जामें कमल प्रफुल्लित होय रह्यो हैं ऐसे तालाबको जल दर्शनमात्रसूँ ही सर्व इन्द्रियनकूँ सुख करिवेवारो है वा जलमें सुगन्ध बहोत होयवेसूँ भ्रमरादिक कमलपें आवे है और बहोत सुन्दर जल होयवेसूँ सारस प्रभृति पक्षी हू सौन्दर्यकूँ बढायवेवारे वहाँ होय हैं तैसें पण्डित और अन्तर्निष्ठावारे और सर्वसन्देहकूँ मिटायवेवारे और प्रभुमें प्रेमवारेको भाव हू वा जलके तुल्य है ॥ ६ ॥

अब नवम भावको निरूपण करत हैं—

अल्पश्रुताः प्रेमयुक्ताः वेशन्ताः परिकीर्त्तिताः ॥

भावार्थ—प्रभुके विषे प्रेमवारे और थोरो शास्त्रको अध्ययनवारे पुरुष वेशंत (छोटे तलाब) जैसे भाववारे है इतने; छोटे-तलाबको जल बहोत पशु प्रभृतिके आक्रमण करिकें कलुषित होय है तैसें वे पुरुष यद्यपि प्रेमवारे हैं तोहु शास्त्राध्ययन बहोत नहीं होयवेसूँ दुःसंगादिक दोष होय जाय तो विनको भाव क्षीण होय जाय है ऐसें जतायवेके लिये छोटे-तलाब जैसो वाको भाव कह्यो है।

अब दशमभावको निरूपण करत हैं—

कर्मशुद्धाः पल्वलानि तथाऽल्पश्रुतभक्तयः ॥ ७ ॥

भावार्थ—कर्मकरिकें शुद्ध परन्तु शास्त्राध्ययन तथा भक्ति जाकी कमती है विनको भाव अति छोटे तलाबके जलके तुल्य जाननो; इतने विशेष छोटे तलाबको जल जैसें प्रथम शुद्ध होय ऐसें वे पुरुष हू कर्म करिकें ईश्वरकूँ अर्पण करे तासूँ विनको चित्त शुद्ध होय जाय है परन्तु छोटे तलाबमें जैसें वराह प्रभृति फिरे तब जल सब कीच युक्त होयकें पान करिवेके लायक नहीं रहे है तैसें विन पुरुषनकूँहू "अग्निहोत्रकूँ होमें" "स्वर्गकी कामनावारो अग्निष्टोम याग करे" इत्यादि श्रुतीनके वाक्यसूँ सकामकूँ यागको अधिकार है। जामे फलको श्रवण न होय वामेहू विश्वजिन्न्यायसूँ फलकी कल्पना होय सके है तासूँ कर्म ईश्वरकूँ अर्पण करिवेके लिये करिवेको नहीं है किन्तु फलके लिये है और "जाकूँ यागकरिवेको अधिकार नहीं है सो ही भक्तिको अधिकारी है", इत्यादिक कर्मजडकी असद् (खोटी) वार्त्ताके अभिनिवेशसूँ वाको भाव कलुषित (अलिन) होय जाय है। परन्तु विनकूँ 'मेरे लिये कर्मकरिवेवारो हो" "मेरे लिये कर्म करिवेसूँ ही तुं सिद्धिकूँ प्राप्त होयगो" "मेरे में मनकूँ धारण कर" इत्यादि प्रभूनके श्रीमुखके वाक्यके अज्ञानसूँ वाको भाव ऐसो होय जाय है। पल्वल और वेशंत ये दोउ 'पर्याय' शब्द है तोहु 'वेशंतेभ्यः स्वाहा पल्वलेभ्यः स्वाहा" या रीतिसूँ वेदमें पृथक् गिने है तासूँ यहाँ श्रीआचार्यजी ने हू पृथक् दृष्टान्तरूप माने है, तासूँ जलके स्वादके भेदसूँ यहाँ विनको भेद समजनो ॥ ७ ॥

अब ग्यारहमे भावको निरूपण करत हैं—

योगध्यानादिसंयुक्ता गुणा वर्ष्याः प्रकीर्त्तिताः ॥

भावार्थ—योगध्यानादि करिकें संयुक्त पुरुषनके भाव वृष्टिके जल समान गिने जाय हैं; इतने वृष्टिको जल जब पृथ्वीमें गिरे है तब सर्वदेशमें व्याप्त होय जाय है, सर्व स्थलनमें सुलभ रीतसूँ मिल सके है और क्षेत्रादिमें पडे तो आछो धान्य उत्पन्न कर सके है, तैसें योगीनकूँ हू योग करती बिरियाँ विनको भाव सकल देह, इन्द्रिय प्रभृतीनकूँ व्याप्त होय जाय हैं तैसें सत्पात्रकूँ योगाभ्यास करावे तो स्वसमान (आपके भावकी तुल्य) भावकूँ उत्पन्न करि सके है।

अब बारहमे भावको प्रतिपादन करत हैं—

तपोज्ञानादिभावेन स्वेदजास्तु प्रकीर्त्तिताः ॥ ९ ॥

भावार्थ–तप इतने पंचाग्नि प्रभृतिकूँ सहन करनो और ज्ञान इतने जीव और ईश्वरके स्वरूपकूँ जाननो इत्यादिक भाव करिकें युक्त पुरुषनको भाव पसीनाके जलकी बरोबर जाननो; इतने कितनेक लोग तपसूँ ही प्रभुकी आराधना करिवेको कहे है, कितनेक "वा ब्रह्मकूँ जानिवेवारे मोक्षकूँ प्राप्त होय है" इत्यादि श्रुतीनको साचो अर्थ (भाव) नहीं जानिवेवारे, ज्ञानसूँ ही मोक्ष मिलवेकी बातें करत हैं, परन्तु श्रीभागवतमें कह्यो "धन, कुल, रूप, शास्त्र, बल, तेज, प्रताप, पुरुषार्थ और बुद्धि प्रभृति प्रभुकूँ प्रसन्न करिवेवारे नहीं है किन्तु गजेन्द्रकी भक्ति देखिकें ही प्रभुने कृपा करी है तासूँ भक्ति करिकें ही प्रभु प्रसन्न होय हैं ऐसें मैं जानूँ हूँ", और "श्रेयकूँ लववेवारी आपकी भक्तिकूँ छोडिकें केवल ज्ञान सम्पादनमें ही जो क्लेशकूँ धारण करें है तिनकूँ, तुष (छिलका) कूटवेवारेकूँ जैसें चोखा कोउ दिन न मिले तैसें वाकूँ भगवान् क्लेश ही देवेवारे होय हैं" इत्यादि वाक्यनमें बिना भक्ति केवल ज्ञान और तप तथा आदि शब्द मूलेमें है तासूँ वर्णाश्रमके धर्म वे सब व्यर्थ प्रयासरूप गिन्ये हैं, केवल वर्णाश्रमधर्म भगवत्सम्बन्धरहित होय ताकी श्रीभागवतमें निन्दा करी है तासूँ मुख्य प्रभुकी भक्ति है वाकूँ छोडिकें तप और ज्ञानमें निष्ठावारे पसीनाके जलकी नांई केवल क्लेशकूँ ही प्राप्त होय हैं। पसीना को जलहू स्नान, आचमनमें, ताप मिटायवेमें और अन्यकार्यमें उपयोगमें नहीं आवे है किन्तु केवल क्लेशकूँ देवेवारो है तैसें विनको भाव ससझनो ॥ ९ ॥

अब तेरहमे भावको निरूपण करत हैं—

अलौकिकेन ज्ञानेन ये तु प्रोक्ता हरेर्गुणाः ।

कादाचित्काः शब्दगम्याः पतच्छब्दाः प्रकीर्त्तिताः ॥१०॥

भावार्थ--महदनुग्रहपूर्वक प्राप्त कियो जो अलौकिक ज्ञान ताकरिकें कदाचित् प्रतीत होयवेवारे और वेदसूँ जानिवेमें आयवेवारे प्रभुके गुणनकूँ जो कहिवेवारे हैं विनको भाव कदाचित् प्रतीतिमे आवे और शब्दसूँ जानिवे में आयवेवारे पर्वतादिमेंसूँ पडते धाराजलके तुल्य है। इतनें धाराको जल निर्मल, शीतल, माधुर्यवारो और स्नान, आचमन और पान करिवेमें मनोहर-और तापकूँ मिटायबेवारो है तैसो भगवद् गुण वर्णन करिवेवारेन को भाव काव्यादिकके विषे प्रतीत होय है ॥ ९ ॥

अब चौदमे भावको निरूपण करत हैं—

देवाद्युपासनोद्भूताः पृष्वाभूमेरिवोद्गताः।

भावार्थ—देवादिकनकी उपासना करिकें जन्मलेवेबारे भाव पृथ्वीपेंसूँ निकसे-जलबुद्बुद (बुद्बुदा) अथवा हिमकण समान है--इतने जो मनुष्य देवादिकके पूजनमेंही 'मैं प्रभुको भजन करूँहूँ' ऐसें मानिवेवारो है और मूलमें आदि शब्द है तासूँ पितृ-मातृ प्रभृतीनकी सेवाकूँहू भगवद्भजनान्तः पातिनी गिनवेवारे हैं विनको भाव हिमकण अथवा जलपें होयववारे-बुद्दुदा जैसो समझनो क्यों जो देवादीनकी उपासनासूं विभूतिको आराधन होय और पिता प्रभृतीनकी सेवाको फल स्वर्गादिक है और प्रभुकी भक्तिको फल तो स्वरूपानन्दरूप है तासूँ देवादिककी भक्तिमें और प्रभु भक्तिमें जो महदन्तर है वाके अज्ञानसूँ वे देवादिककी उपासना करे है, सो विनकी भ्रान्ति है, और जो महापुरुषनको और भक्तनको पूजन करिवेकी श्रीभागवत प्रभृति शास्त्रन में आज्ञा देखिवेमें आवे है सो तो भगवत्प्रीति और शुद्ध प्रवृतिके साधक होयवेसूँ पूर्व कह्यो भाँतिसूँ देवादिपूजन तासूँ भिन्न है क्यों जो जैसें भक्तादि पूजनमें पुरुषोत्तम भक्तिको साधकपनो है तैसें देवादि पूजनमें नहीं होयवेसूँ वाकूं भ्रान्ति कल्पित गिन्यो है, तासूं पुरुषोत्तमकी प्राप्तिकूं इच्छवेवारेनकूं पुरुषोत्तमको भजन (सेवा) ही मुख्य है सो बात प्रमाण-पुरःसर टीका ग्रन्थनमें निरूपित है सो ग्रन्थके विस्तारके भयसूं यहाँ लिखे नहीं हैं। जैसें तुषारकण अथवा जलबुद्बुद स्नानाचमन और पानादिमें उपयुक्त नहीं है तैसें देवादिककूं पूजवेवारेनको भाव हू पुरुषोत्तम प्राप्तिमें अनुपयुक्त होयवेसूं जलबुद्बुदको दार्ष्टान्तिक तथार्थ होय है।

पञ्चदशमे भावको अब निरूपण करत हैं--

साधनादिप्रकारेण नवधाभक्तिमार्गतः ॥ १० ॥
प्रेमपूर्त्या स्फुरद्धर्माः स्यन्दमानाः प्रकीर्तिताः ॥

भावार्थ—साधन है आदि जामें ऐसे जो भक्तिके प्रकार ता करिकें नवप्रकारकी भक्तिरूप मार्गसूँ जिनको प्रेम पूर्ण होयवेसूँ प्रभुके धर्मकी स्फुरती होय ऐसेनको भाव पर्वतादिपेंसूँ गिरते-जलके तुल्य है। याको स्पष्टार्थ यह है जो जाजीवको प्रभुने मर्यादामें अङ्गीकार कियो होय सो सब कामनाकूँ छोडिकें वर्णाश्रम धर्मको आचरण करे तासूँ अन्तःकरण शुद्ध होय तब प्रभुकी भक्ति होय सो पुरुषार्थ रूप है. ऐसी जाकी मान्यता है सो पूर्वोक्त साधनके विचारसूँ ही श्रवणादिमें प्रयास करे है, ऐसेनको भाव प्रस्रवण जलके तुल्य है। इतनें पर्वतके ऊपर वृष्टि होयवेसूँ अथवा तो तलाब प्रभृति जलाशय होयवेसूँ ता पर्वतपेंसें प्रस्रवणको जल बहोत ओर विनके अभावमें कमती पडे तैसें पूर्व कह्यो भाववारेनकूँ शुद्धचादिककी अपेक्षासूँ भावको वृद्धिह्रास होय है ऐसें समजनो, सो बात श्रीप्रभुचरणने भक्तिहंसमें कही है जो "प्राथमिक (पहेलो) तो भक्तिके साधनमें प्रवृत्त होय है क्यों जो वाको मर्यादामें ही अङ्गीकार भयो है सोहू जहाँतांई प्रभुमें स्नेह उत्पन्न न भयो होय तहाँतांई मर्यादामें रहिकें सेवा करे है. प्रभुमें स्नेह भये पीछे तो सब उपचार स्नेह पूर्वक होय तब विधिको अप्रयोजकपनो होय है" ऐसें एकादश स्कन्धमेंहू 'श्रद्धामृतकथायां" यहाँसूँ लेयकें "कोन्योऽर्थोऽस्यावशिष्यते" यहाँतांईमें निरूपण कियो है नवधाभक्ति तो श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेद सो प्रह्लादजीने दैत्य पुत्रनकों सप्तम स्कन्धमें कही है ।

अब सोलमे भावको निरूपण करत हैं—

यादृशास्तादृशाः प्रोक्ता वृद्धिक्षयविवर्जिताः ॥११॥
स्थावरास्ते समाख्याता मर्यादैकप्रतिष्ठिताः ।

भावार्थ—आगें जो कह्यो विनको प्रेम वृद्धिह्रास युक्त कह्यो, ऐसें जिनके प्रेममें वृद्धि और क्षय (न्यूनता) नहीं है ॥११॥ और केवल मर्यादा में ही जिनको अङ्गीकार है ऐसेनको भाव स्थावर (स्थिर) जल तुल्य है, जैसें स्थिर रह्यो बहोत जल ताप पडवेसूँ सूखे नहीं है जैसें स्नानादि-सब कार्यमें उपयोगी होय है तैसें जिनको स्थिर प्रेम है विनको भावहू संसार ताप और कुतर्कादिकसूँ कमती नहीं होय है और शुद्धचादिकको हेतु है।

अब सत्रहमे भावकी स्फुट करत हैं—

अनेकजन्मसंसिद्धा जन्मप्रभृति सर्वदा ॥ १ ॥

सङ्गादिगुणदोषाभ्यां वृद्धिक्षययुता भुवि ।
निरन्तरोद्गमयुता नद्यस्ते परिकीर्त्तिताः ॥१३॥

भावार्थ—अनेक जन्म करिकें आछीरीतिसूँ सिद्ध, और जन्मतेंसूँ लेयँकें सत्सङ्ग और दुःसंगके गुण और दोष करिकें प्रेमकी वृद्धि और क्षीणता वारे और निरन्तर जन्मलेयँवेवारे भाव नदीके तुल्य हैं, इतने नदीको जल वृद्धि और घामकरिकें बढे और घटे है, भूमि और पर्वतादिकके गुण और दोष करिकें जलहू गुणदोष युक्त होय है शुद्धि और तृप्ति प्रभृतिकूँ करे है तैसें ऊपर कह्यो, तिनको भावहू तपध्यान, समाधि करिकें पापक्षयद्वारा शुद्धचादिककों उत्पन्न करे है, सत्सङ्ग करिकें गुणकूँ और दुःसङ्ग करिकें दोषकूँ उत्पन्न करे है और बढे है घटे है, तासूँ नदी प्रमाण गिन्ये है ॥१३॥

अब अठारहमे भावको निरूपण करत हैं—

एतादृशाः स्वतन्त्राश्चेत् सिन्धवः परिकीर्त्तिताः ॥

भावार्थ—पूर्व श्लोकनमें कह्यो भाव जो स्वतन्त्र (उपाधि रहित) होय तो वे आपतें ही समुद्र में जायवेवारी—नदीके तुल्य है, जैसें महानदीके जलमें प्रविष्ट भये—जलचर समुद्रमें हू जाय सके है तैसें ऊपर कह्यो निष्काम—प्रेमवारे हू दयाके समुद्ररूप—प्रभुमें प्रवेश करे है, महानदीके जलकीनांई वे भाव सर्वप्रकारकी शुद्धिकूँ उत्पन्न करिवेवारे हैं ।

अब उन्नीसमें भावको प्रतिपादन होय हैं—

पूर्णा भगवदीया ये शेषव्यासाग्निमारुताः ॥१४॥
जडनारदमैत्राद्यास्ते समुद्राः प्रकीर्तिताः !

भावार्थ—शेष, व्यास, अग्नि, हनुमान्, जडभरत, नारदजी और मैत्रेयप्रभृति जो पूर्ण भगवदीय हैं वे समुद्र कह्यो हैं; इतने समुद्रके जलके तुल्य बिन सबनको भाव है, भक्ति जो सेवा ता करिकें पूर्वनकूँ भगवदीय कह्यो जाय हैं; इतने जिनकूँ प्रभु सेवा व्यतिरिक्त और स्वार्थ नहीं है, जनकूँ प्रभुके लिये ही देहादिककी अपेक्षा है परन्तु देहादिकके लिये प्रभुकी सेवा करिवेकी नहीं है ऐसे भगवदीयें रत्नाकरके तुल्य हैं विनको भाव रत्नाकरके जलके तुल्य समझनो, इन भगवदीयनकी गणना मूलश्लोकमें करी है तामें मुख्य शेष है सो भगवद्गुणगानमें तत्पर हैं, शय्यादि भाव सों प्रभुकी सेवा करे हैं सो विभूतिरूप हैं, सो "सर्पनमें अनन्त मेरो रूप है" ऐसें गीता-

जीमें आपने श्रीमुखसूँ विभूतिरूप गिन्ये हैं, व्यासजी कलावतार हैं सदा भगवद्धर्मके निरूपणमें तत्पर हैं, अग्नि श्रीकृष्णके मुखारविन्दरूप आप श्रीमहाप्रभुजी जो सर्वांशसूँ श्रीकृष्णरूपही हैं, हनुमान् श्रीरामचन्द्रजीके गुणगानमें तत्पर हैं, जडभरतजी अन्तःकरणमें भावपूर्ण होयवेसूँ बहारसूँ जड जैसे दीखे हैं, नारदजी सदा पुरुषोत्तमके गुणगानमें ही एकतान हैं, पाराशरके शिष्य मैत्रेय भगवद्गुणके वक्ता हैं, मूलमें आदि पद है तासूँ उद्धवादिकको भाव हू समुद्रजल तुल्य समजनो। जैसें समुद्रको जल चन्द्रकूँ देखिकें तरंगित होय तैसें पूर्व कह्यो भगवदीयन हू प्रभुके मुखचन्द्रके दर्शनमें प्रवृद्धभाववारे होयकें विनकी सेवा व्यतिरिक्त औरकूँ तुच्छ गिने है सो श्रीकपिलदेवजीने "सालोक्य, सार्ष्टी सामीप्य, सारूप्य और एकत्वकूँ मेरे भक्त नहीं चाहत हैं" ऐसें आज्ञा करी है।

स्वरूपभेद और ज्ञानभेद करिकें विलक्षण ऐसे पूर्ण भाववारेन को निरूपण अब करत हैं—

लोकवेदगुणैर्मिश्रभावेनैके हरेर्गुणान् ॥१५॥
वर्णयन्ति समुद्रास्ते क्षाराद्याः षट् प्रकीर्त्तिताः ॥

भावार्थ—लोकमिश्रभावसूँ, वेदमिश्रभावसूँ और गुणमिश्रभावसूँ कितनेके प्रभुके गुणके वर्णन करें हैं वे क्षारादि षट् समुद्रतुल्य हैं, इतने रामकृष्णादि मनुष्य हैं परन्तु विनमें बलादि बहोत है तासूँ मनुष्यसूँ अधिक मान्ये जाय हैं ऐसें जानिकें वर्णन करिवेवारनको भाव क्षार समुद्रके जलके तुल्यसमझनो जैसें क्षारजल तृषानिवृत्ति और तृप्ति या प्रभृति सुखदानमें अनुपयोगि है तैसें पूर्वोक्तको भाव हू समझनो, कितनेक "सौहाथवारे श्रीकृष्णने वराहरूप धरिकें तुमारो उद्धार कियो है" इत्यादि-वाक्यार्थके भाव करिकें जगत्कर्त्ता ही विविध शरीरनमें प्रवेश करिकें कार्य करे हैं और कायार्थ धारण किये शरीरकूँ छोडदेयँ हैं ऐसें जानिकें हरिके गुणको गान करे है वाको भाव दधिमण्डोदतुल्य है इतने दधिमण्ड साररहित होयवेसूँ पोषण करिवेमें निरुपयोगी है तैसें वाको भाव समझनो, मायाके गुण करिकें ही प्रभुमें कर्त्तापनो है ता विना नहीं है तासूँ मायाके गुण करिकें ही हरि सब करे हैं, ऐसें जानिकें जो भगवद्गुणको वर्णन करे है ताको भाव सुरोदके जलतुल्य है जैसें सुराकों स्वरूपविस्मारकपनो और दोष उत्पन्न करिवेपनो है तैसें प्रकृत भाववारेनको भाव समझनो. प्रभु सबके ईश्वर और सर्वकार्यकरिवेमें समर्थ हैं ऐसें जानिकें जो प्रभुको वर्णन करे है ताको भाव क्षीरोदके

जल जैसो है, दूधके गुणसरीखे वा भाववारेके गुण हैं, प्रभु महाबलत्तर हैं तासूँ आपने भक्तनकूँ हू बलवारे बनाये हैं ऐसें जानिकें वर्णन करिवेवारेने को भाव घृतोदके जलके तुल्य है; इतने बिन भाववारेनको भाव घृतके समान गुणवारो है प्रभु लक्ष्मीजीके पति हैं सेवकनकूँ भोगमोक्ष देवेवारे हैं ऐसें जानिकें वर्णन करिवेवारेनको भाव इक्षुरसोद समुद्रके जलके तुल्य गुणवारो है और शरण आये जीव चाहे जैसें होय तो हू श्रीकृष्ण विनको उद्धार करें ही हैं परन्तु शरणागतकूँ छोडि देत नहीं हैं ऐसें जानिकें वर्णन करिवेवारेन को भाव शुद्धोदके जलके तुल्य गुणवारो जाननो, भगवान् चिद्रूप विज्ञान पूर्ण सर्वसम और मोक्षके लिये सेवन करिवेयोग्य हैं, ऐसें जानिकें वर्णन करिवेवारेनको भाव दधिमंडोदतुल्य है और भगवान् वैराग्यपूर्ण होयवेसूँ कोईके पाससूँ कछु ग्रहण नहीं करे हैं और इच्छा हू नहीं करे हैं मनुष्य पवित्र होयवेके लिये भगवानकूँ भजे ऐसो विधि होयवेसू लोक स्वार्थके लिये भजन, स्तुति और अर्पण प्रभृति करे है ऐसें जानिके वर्णन करिवेवारेनको भाव क्षीरोदके जलके तुल्य अग्राह्य जैसो है।

अब पूर्ण भगवदीयनमें हू उत्तम हैं तिनकी गणना करत हैं—

गुणातीततया शुद्धान् सच्चिदानन्दरूपिणः ॥१६॥
सर्वानेव गुणान् विष्णोर्वर्णयन्ति विचक्षणाः ।
तेऽमृतोदाः समाख्यातास्तद्वाक्पानं सुदुर्लभम् ॥१७॥

भावार्थ—गुणतें पर तासूँ ही सत्, चित् और आनन्दरूप ऐसें प्रभुके सर्व गुण हैं ऐसें जानिकें विचक्षण पुरुषें भगवद्गुण वर्णन करिवेवारे हैं सो अमृतके समुद्रतुल्य हैं तिनके वाणीको पान (श्रवण) अत्यन्त दुर्लभ हैं इतनें ["ताकी स्तुति करिवेवारे" ऐसें वेदके, 'जासूँ क्षरसूँ पर और अक्षरसूँ उत्तम हू" ऐसें स्मृति के, "मेरे में रह्यो सब निर्गुण" ऐसे श्रीभागवतके और लोककी नांई लीला मोक्षरूप है" ऐसे व्याससूत्रके वाक्यसूँ) श्रुति, स्मृति, पुराण और न्याय करिकें प्रभुके नाम, रूप और धर्मनको निर्गुणपनेको निश्चय करिकें, भगवन्नाम सच्चिदानन्दात्मक है, भगवान् अक्षरातीत पुरुषोत्तम हैं, ताकी सब सामग्री निर्गुण है, ताकी लीला हू फलरूपा है, स्मरण करिवेसूँ सोक्षदेवेवारी है, ऐसें निरूपण करिकें प्रभुके सर्व गुण नवनीतचौर्य, वेणुनाद, गोवर्द्धनोद्धरणादिकनकूँ हू गुणातीतपनेसूँ जानिकें (मायासम्बन्ध रहित तासूँ सच्चिदानन्दरूप जानिकें) वर्णन करिवेवारेनको भाव अमृतके

समुद्रतुल्य है वे भगवत्कृत चौर्यादिकनके कारणकूँ जानिवेवारे हैं तासूँ मूलमें विचक्षण कह्यो हैं, तिनको वाक्पान इतने वाणीको मनमें धारण करनो तथा ताके पाससूँ उपदेश ग्रहण करनो, और जो उपदेश दे वाको आदर पूर्वक श्रवण करनो सो बहोत दुर्लभ है; तासूँ ही नामके स्वरूप जानिवेके लिये ऐसे गुरून (उपदेशकनके) शरण जायवेकी वेदादिकमें आज्ञा करी है। ता बिना स्वतः प्राप्त किये, ऐसे ज्ञानकर्मादिककूँ व्यर्थ कह्यो हैं, गुरूपसत्ति पूर्वक भगवदुपदेश ग्रहण करिकें प्रभुमें पुरुषोत्तमपनेको ज्ञान होय तब ही सर्वज्ञता होय सो बात श्रीगीताजी में आपने ही कही है जो "जो विचक्षण मोकूँ पुरुषोत्तम जाने है सो सब जानिवेवारो सर्वभाव करिकें मेरी सेवा करे हैं" ता प्रमाण पूर्वोक्त भक्तहू प्रभुकूँ भजवेवारो होय है ॥१७॥

अब वे विचक्षण-भक्तनके वाणीके महिमाकूँ—कहत हैं—

तादृशानां क्वचिद्वाक्यं दूतानामिव वर्णितम् ।
अजामिलाकर्णनवत् बिन्दुपानं प्रकीर्तितम् ॥१८॥

रागाज्ञानादिभावानां सर्वथा नाशनं यदा ।
तदा लेहनमित्युक्तं स्वानन्दोद्गमकारणम् ॥१९॥

भावार्थ - ऐसे भगवदीयनकी प्रसन्नतायुक्त जो आज्ञा है सो दूतकी बरोबर कही है इनके वाक्यको श्रवण अमृतबिन्दुकी बरोबर है। जैसें अजामिलने भगवद्दूतन के वाक्यको श्रवण कियो हतो ताकीसीनांई वा वाक्य अमृतबिन्दुके पानके तुल्य है और राग (विषयादिकमें प्रीति) और अज्ञानादिक भावको जब नाश होय तब स्वरूपानन्दकूँ प्रकट करे है ताको नाम लेहन कह्यो है; इतने पूर्वश्लोकमें कह्यो पूर्ण-भगवदीयमें कृपा करिकें विना आग्रहसूँ कहत हैं सो वाक्य प्रभुको ही समझनो। जैसें राजा चाकर द्वारा हुकम करे है तैसें प्रभुहू भगवदीय द्वारा उपदेश करत हैं, दूत जैसें राजाके गुण वर्णनमें शङ्कित नहीं होय है तैसें भगवदीयनकूँ हू प्रभुके गुण वर्णनमें शङ्का नहीं होय है; तासूँ प्रभुकी कृपा और भविष्यमें फल मिलवेको योग होय, तब ही ऐसे भगवदीयनको समागम होय है; तासूँ ही तिनके मुखसूँ उपदेश लेनो, श्लोक मात्रको श्रवण करनो, शिक्षा सुननी सो अमृतबिन्दुके पानरूप और अजामिलके श्रवणके तुल्य है, जैसें अजामिलने दूतनके मुखसूँ भगवद्धर्मके बलको श्रवण कियो ता पीछें वाकूँ नरकको सम्बन्ध छूटिकें भगवद्धर्मके श्रवणतें उत्तम फलकी प्राप्ति भई तैसें बिन्दुपान करिवेवारेनकूँ

हू उत्तम–फलकी प्राप्ति होयवेको सूचन या दृष्टान्तसूँ होय है, या विन्दु-पानसूँ अधिक रसास्वाद है सो कहत हैं जो राग (गृहादिमें स्नेह) और अज्ञान (भगवत्स्वरूपकूँ नहीं पहेचाननो अथवा अविद्या) सो जिनके आदि हैं ऐसे जो शोकमोहादिक इन सबनको जब नाश होय जाय इतनें जब रागा-दिककी वासनाहू न रहे, तब रसास्वाद होय है; इतनें पूर्व कह्यो बिन्दुपान जब रागादिककी अस्फूर्तिसूँ कियो जाय ताकूँ लेहन (चाटनो) कह्यो है, सो जीवकूँ भगवदानन्दको अनुभव करायवेवारो है। जब श्रवणादिक में व्यसन होय जाय तब जो कथा रसको आस्वाद अनुभवमें आवे है सो अमृत रूप होय है, तब ही जीवमें जो आनन्दको तिरोभाव भयो है ताको आवि-र्भाव होय है और प्रभुमें क्रमसूँ प्रेम, आसक्ति और व्यसन होयवेसूँ प्रपञ्च की विस्मृति होयकें जीव कृतकृत्य होय है सो बात श्रीभागवत ११ स्कन्धमें "भक्तिलब्धवतः" या श्लोकसूँ और श्रीमहाप्रभुजी ने स्वकृत-भक्तिवर्द्धिनी नामक ग्रन्थमें "स्नेहाद्रागविनाशः" या श्लोकसूँ कही है ता प्रमाण जीवकूँ भक्तिको पूर्ण फल तब (व्यसन होयवेसूँ ही) प्राप्त होय है ॥१८॥१९॥

अब बीसमे भावको निरूपण करत हैं—

उद्धृतोदकवत् सर्वे पतितोदकवत्तथा ।
उक्तातिरिक्तवाक्यानि फलं चापि तथा ततः ॥

भावार्थ--पूर्व कह्यो जो अमृतोदतुल्य—भाववारे हैं विनकूँ छोडिकें और भाववारेनके भाव विनकी अप्रत्यक्षदशामें उद्धृतोदकके तुल्य फलकूँ सिद्ध करे हैं और बिन भाववारेनके वाक्य ऊपरसूँ गिर्ये—जलके बरोबर फलकूँ सिद्ध करिवेवारे हैं, जैसें कूप प्रभृतिनमेंसूँ ग्रहण कियो जल जा स्थानसूँ आयो होय वा स्थानके गुणकी तुल्य गुणवारो होय है; अमृत तो सर्वदा एकरस है ताकूँ वाकू छोडिकें और भाववारेनकी अप्रत्यक्षदशा में वे भाव उद्धृतोदक (कूवादिकनमेंसूँ ल्यायो भयो जल) तुल्य गुणवारो होय है ऐसें कह्यो हैं ॥२०॥

अब ग्रन्थकी समाप्ति करे हैं—

इति जीवेन्द्रियगता नानाभावं गता भुवि ।
रूपतः फलतश्चैव गुणा विष्णोर्निरूपिताः ॥२०॥

भावार्थ—या प्रकार जीव और इन्द्रियमें आय के पृथिवीमें अनेक

विध भावरूप भये ऐसे विष्णु (भगवान्) के गुण, स्वरूप और फलसूँ निरूपण किये हैं, ऐसें श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं, सो जलके भेद श्रुतिमें जो कह्यें हैं ता प्रमाण गुणके भेदको या ग्रन्थमें वर्णन होयवेसूँ याको जलभेद नाम है।

॥ इति श्रीमद्वल्लभाचार्यजीविरचित जलभेदग्रन्थकी गोस्वामि
श्रीनृसिंहलालजीमहाराजविरचित व्रजभाषामें
संक्षिप्तटीका समाप्त भई ॥

—०—

* श्रीकृष्णाय नमः *

* श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः *

अथ पञ्चपद्यनकी व्रजभाषामें संक्षिप्त भावार्थटीकाको प्रारम्भ ।

—★—

जलभेदमें बीस प्रकारके भिन्नभक्त और विनके भाव जलको दृष्टान्त देयकें निरूपित किये हैं सो जैसें जल शुष्कवस्तुकूँ आर्द्र करे है तैसें ऊपर लिख्ये—भक्तनके भावहू श्रवण करिवेवारे मनुष्यनके हृदयकूँ आर्द्र करे है ऐसें जतायवेके लिये जलको दृष्टान्त देयकें निरूपण कियो है, शास्त्रमें जो अष्टादश विद्या लिखो है ता करिकें प्रतिपादित ऐसे भगवान्‌के गुण हू अठारे प्रकारके हैं तासूँ वे भक्त हू अष्टादश विद्या प्रतिपादित गुणमें तत्पर होय-वेसूँ केवल मर्यादा मार्गीय अष्टादश प्रकार के हैं और पुष्टिमार्गीय शुद्ध तथा मिश्र ऐसे भेदसूँ दो प्रकारके हैं इतने अष्टादश प्रकारके मर्यादामार्गीय भक्त और दोइ प्रकारके पुष्टिमार्गीय भक्त मिलिकें भक्तनके बीस प्रकार भये, अथवा सात्विकादिक तीन गुन हैं इनके मिश्री भावसूँ नौ भेद होय हैं और एक निगुण मिलिकें दस भेद भये सो मर्यादा और पुष्टिके दश-दश भेद मिलिकें बीस प्रकारके भक्त भये तिनके भावहू विनमें ही रह्यें हैं तासूँ वीश प्रकारसूँ जलभेदमें निरूपित किये हैं। अब जलभेदमें कह्यें ऐसे बीश प्रकारके भक्तनके वाक्य द्वारा विनके भावकूँ ग्रहण करवेवारे श्रोतानको निरूपण करत हैं, सो पुष्टि तथा मर्यादाके भेदसूँ दोय प्रकार के हैं तामें पुष्टिमार्गीय श्रोता उत्तम हैं सो एक प्रकार के हैं और मर्यादामार्गीय मध्यम, अधम और उत्तम ऐसे भेदसूँ तीन प्रकार हैं ऐसें चार प्रकारके भक्तनको निरूपण करिवेके लिये प्रथम मुख्यपनेसूँ पुष्टिमार्गीय श्रोतानको निरूपण करत हैं ।

श्रीकृष्णरसविक्षिप्तमानसारतिवर्जिताः ।
अनिर्वृत्ता लोकवेदे ते मुख्याः श्रवणोत्सुकाः ॥१॥

भावार्थ—श्रीकृष्णको जो भजनानन्दरूप रस ताकरिकें जिनको मन विक्षिप्त होय गयो है और ताकरिकें भगवानके चरित्र सुनिवेमें अप्रीतिसूँ वर्जित इतने प्रीतिवारे और लोक तथा वेदमें जिनकूँ आनन्द प्राप्त नहीं होय हैं ऐसे जो श्रवणमें उत्साहवारे श्रोताजन हैं सो मुख्य हैं; इतने भगवानके चरित्र नहीं सुनिवेरूप जो अप्रीति है सो मर्यादा और पुष्टि ऐसें मार्गके भेदसूँ दोय प्रकारसूँ निवृत्त होय है; तामें मर्यादामार्गमें जाकूँ श्रवणकरिवेकी इच्छा होय और श्रद्धायुक्त होय ताकूँ महत्पुरुषकी सेवाकरिकें पुण्यतीर्थके सेवनसूँ रुचि उत्पन्न होय हैं ऐसें प्रथम स्कन्धमें कह्यो है तारीतिसूँ अप्रीति निवृत्त होय है और पुष्टिमार्गमें तो रसके स्वभावसूँ हो भ्रमरगीतमें व्रज-भक्तनने कह्यो है जो "विनकी कथाको अर्थ दुस्त्यज है" ताही प्रमाण स्वभावसूँ ही भगवत्कथामें रस उत्पन्न होय है तासूँ जो भगवत्कथामें अरति करिकें वर्जित कह्यो हैं वे पुष्टिमार्गीय हैं ऐसें समजवेके लिये ये लक्षण कह्यो है ऐसें पुष्टिमार्गीय—श्रोतानकूँ भगवच्चरित्रके श्रवणमें अप्रीति नहीं है ऐसो निरूपण करिवेके लिये लोकवेदमें इनकूँ आनन्द नहीं होय है सो कहत हैं जो प्रवृत्तिमार्गको बोधक करिवेवारे अथवा भगवान् बिना और को भजन बताय वेवारे लोक और वेदमें स्वस्थ नहीं है सो भगवाननें उद्धवजीकूँ व्रजमें सन्देश लेयकें पठायें तब कह्यो है जो "जिनने लोकके धर्म छोडे हैं उनको पोषण मैं करूँ हूँ" तासूँ यहाँ लोकवेदमें अनिर्वृत ऐसें समस्तपद कह्यो है सो त्याज्यपनेमें दोयनकी तुल्यता जतायवेके लिये है तासूँ ही पञ्चाध्यायीमें श्रीगोपीजनने कह्यो है जो "दुःखकूँ देयवेवारे पतिसुतादिकन करिकें कहा है ?" और भ्रमरगीतमें कह्या है जो "दुःखके समुद्रमें मग्न भये—व्रजको उद्धार करो। 'इतने दुःख सागरमें निमग्न व्रज है वाको उद्धार आपही करें, परन्तु आपने उद्धृत किये ऐसे वेद करिकें हम उद्धार करिवेयोग्य नहीं है ऐसे अभिप्रायसूँ प्रार्थना करी है, ऐसें पुष्टिमार्गके प्रकारकरिकें अप्रीतिके अभावपूर्वक प्रीतियुक्त हैं ते मुख्य हैं, अथवा मुख्य शब्दको दूसरो अभिप्राय कहत हैं जो मुखरूप जो पुष्टिमार्गीय भक्ति है तामें वे भये हैं इतनें भक्तिरूप जो भगवानको मुखारविन्द है तिनमें संलग्न ऐसे अलकावलीपनेसूँ कहिवेमें आवते ऐसे पुष्टिमार्गीय जीव केवल भक्तिमात्रको आश्रय करिकें रहत हैं ते मुख्य हैं, तहाँ सन्देह होय जो मूलमें तो लोकवेदमें अनिर्वृत हैं ऐसें कह्यो ताकरिकें भगवानमें प्रीतियुक्त ऐसो अर्थ होय हैं श्रवणादिकमें प्रीतियुक्त हैं

ऐसो अर्थ तो गौणरीतिसूँ आवे है तासूँ मुख्य श्रोतापनो कैसें ? ऐसी शङ्का करिकें कहत हैं जो भगवानमें प्रीतिवारे हैं तोहू वियोगमें श्रवणमें ही उत्साह वारे हैं; क्यों जो परोक्षमें विनको सन्देश लायवेवारे में प्रीति दीखवेमें आवत है तासूँ श्रवणमें उत्साह स्पष्ट जान्योजाय है तासूँही भ्रमरगीतके अध्यायमें कह्यो है जो "उद्धवजीकूँ देखिकें ये प्रभुके चरणारविन्दके आश्रयवारे हैं ऐसें जानिकें सब आडिसूँ मिलकें विनकूँ घेर लिये;" इतनें श्रोताजन आप भगवानके रसमें मग्न हैं, भगवानके रससूँ विनको मन विक्षिप्त है, भगवान के चरित्र सुनिवेभे सहज भाववुक्त हैं, भगबानके विप्रयोगकी आतिकरि युक्त हैं और भगवानकी वार्त्ताश्रवण मात्रमें ही एकबुद्धिवारे हैं सो पुष्टिमार्गीय श्रोता हैं ॥ १ ॥

ऐसें पुष्टिमार्गीय भक्तनको निरूपण करिकें मर्यादामार्गीयनको निरूपण करत हैं तामें उत्तम बहोत दुर्लभ है तासूँ मध्यमका निरूपण करत हैं—

विक्लिन्नमनसो ये तु भगवत्स्मृतिविह्वलाः ।
अर्थैकनिष्ठास्ते चापि मध्यमाः श्रवणोत्सुकाः ॥ २ ॥

भावार्थ—विशेषकरिकें जिनको आर्द्र मन है, भगवानकी स्मृतिकरिकें विह्वल हैं और अर्थमें मुख्यनिष्ठा है ऐसे जो श्रोताजन हैं सो मध्यम कह्यो जाय हैं; इतनें भगवानमें परायण होयवेसूँ जिनको मन कोमल होय सो आर्द्र कह्यो जाय है, जैसें आर्द्र (भोज्यो) वस्त्र होय सो सूकेमे धरिवेसूँ सूकेकूँ हू आर्द्र करत हैं तैसें जिनको मन अपने सम्बन्धवारे रुक्षकूँ हू आर्द्र करत हैं सो शुकादि जैसे समजने, मूलमें "ये" कह्यो हैं तासूँ सर्वत्र प्रसिद्ध ऐसे मर्यादामार्गीय कह्यो हैं और "तु" शब्दसूँ पुष्टिमार्गीयनको व्यावर्त्तन कियो है, विक्लिन्नमनपनो तो पुष्टिमार्गीयनमें हू होय है तासूँ पुष्टिमार्गीयन के धर्मसूँ भिन्न धर्म जो है सो कहत हैं जो भगवानकी स्मृति करिकें विह्वल हैं; इतनें श्रवणके समयमें ऐश्वर्यादिषड्गुण सम्पूर्ण ऐसें भगवानकी स्मृति जो होय है ता करिकें विह्वल हैं सर्वदा विह्वल नहीं हैं किन्तु जब स्मृति होय तब ही विह्वल होय हैं, ऊपर लिखे ऐसे दोय धर्मकरिकें उत्तमपनो विनमें भासत है तासूँ स्पष्टरीतिसूँ मध्यमपनो बतायवेवारो धर्म कहत हैं जो अर्थ में ही मुख्य निष्ठावारे हैं; इतनें मोक्षादि पुरुषार्थ अथवा कृतार्थता होय ये ही मुख्य विनकूँ प्रयोजन है वामें निष्ठावारे हैं मुख्यपनेसूँ चरित्रमें निष्ठावारे नहीं हैं' अर्थात् फलकी अपेक्षावारे हैं तासूँ मध्यम गिन्ये हैं, ऐसे श्रोता ही

होय नहीं क्यों जो श्रोतानको अर्थमें तात्पर्य होय नहीं, ऐसी आशङ्का होय तहाँ कहत हैं जों श्रवणसूँ साध्य ऐसो जो फल तामें इनको तात्पर्य है तोहू भगवानके चरित्र में उत्कण्ठावारे हैं तासूँ श्रोतापनेसूँ मध्यमपनो है, जैसें परीक्षितादिकनकूँ दूसरे करतें पूर्णवैराग्य होयवेसूँ उत्तमपनो है तथापि उपाधिसहित प्रवृत्ति होयवेसूँ विदुर तथा उद्धवादिककी अपेक्षासूँ मध्यमपनो है; तासूँ ही गङ्गाजीमें परीक्षित ने प्रायोपवेश कियो सो तीर्थके कारणसूँ कियो है, जो वाके मनमें तीर्थकी अपेक्षा नहीं हती तो भगवानको चरित्र दूसरे साधनकी अपेक्षा नहीं राखिकें जहाँ बैठकें श्रवण करे तहाँ फलकूँ सिद्ध करिवेवारो है; क्यों जो भगवानकूँ जैसें तीर्थकी अपेक्षा नहीं है तैसें उनके चरित्रकूँ हू नहीं है और विदुरजी तो चरित्र सुनिवेके लिये जहाँ मैत्रेयजी हते वहाँ गये हैं; इतनें वक्ताके सन्निधान जायवेको उद्देश हतो गङ्गाजीपें जायवेको उद्देश नहीं हतो; तासूँ उत्तमपनो है, परीक्षित और विदुरजी दोयनकूँ मर्यादापनो तो समान है तथापि मर्यादामार्गमें जितनी शुद्धि होय ततिनी फलमें विशेषता होय; तासूँ विदुरजीमें तीर्थाटन और सत्सङ्ग करिकें श्रवणको अधिकार सिद्ध भयो है और परीक्षित में तो स्पष्ट ही है तासूँ ही सिद्धान्त मुक्तावलीमें मर्यादामार्गीनकूँ गङ्गाजीके तटपें श्रीभागवतमें तत्पर होयकें रहिवेकी आज्ञा करी है ॥ २ ॥

ऐसें मध्यम श्रोताको निरूपण करिकें अधम श्रोतानको निरूपण भिन्नपनेसूँ करिवेको प्रयोजन नहीं है तासूँ उत्तमके निरूपणके मध्यमें ही कोउ धर्मकरिकें अधमनको निरूपण करिवेके लिये उत्तमनको ही प्रथम निरूपण करत हैं—

निःसंदिग्धं कृष्णतत्त्वं सर्वभावेन ये विदुः ।
ते त्वावेशात्तु विकला निरोधाद्वा न चान्यथा ॥ ३ ॥
पूर्णभावेन पूर्णार्थाः कदाचिन्न तु सर्वदा ।
अन्यासक्तास्तु ये केचिदधमाः परिकीर्त्तिताः ॥ ४ ॥

भावार्थ—सन्देह रहित जो श्रीकृष्णरूप तत्व वाकूँ सर्वभावकरिकें जो जानिवेवारे हैं वे आवेशसूँ अथवा निरोधसूँ ही विकल होय हैं और प्रकारसूँ नहीं होय हैं और कोउ बखतपें ही पूर्णभावकरिकें पूर्णअर्थवारे होय परन्तु सर्वदा न होय और अन्यमें आसक्तिवारे हैं वे अधम कह्ये हैं; इतनें सदानन्द-श्रीकृष्णको तत्त्व जो वास्तवरूप रसात्मक कर पादादियुक्त

साकार और मायाकूँ दूर करिकें प्रकट भयो ऐसो जो स्वरूप ताकूँ शास्त्र और अनुभव करिकें सन्देह रहित होयकें जैसो है तेसो जानवेवारे श्रवणके उत्तमाधिकारी हैं, यहाँ शङ्का होय जो ऐसे दृढज्ञानवारेनकूँ श्रवण करिवेकी अपेक्षा न रहे तासूँ उनकूँ श्रोतापनो कैसें ? ऐसी शङ्काके निराकरणमें कहे हैं जो वे ज्ञानवारे हू जब ज्ञान करिकें हृदयमें भगवदावेश होय तब विकल होय जाय हैं तब हम जानिवेवारे हैं ऐसी स्फूर्ति विनकूँ होय नहीं है तब श्रवण करिवेकी उनकूँ योग्यता सिद्ध होय है, तासूँ ही श्रीभागवतके प्रथम स्कन्धमें कह्यो है जो "सतत भगवद्भक्त जिनकूँ प्रिय हैं और प्रभुके गुननमें जिनकी मतिको आकर्षण कियो है ऐसे श्रीशुकदेवजी श्रीभागवतरूप आख्यान पढे" ऐसें पूर्णज्ञानवारेनकूँ श्रवणकी योग्यता कही है, मूल में तु शब्द कह्यो है तासूँ रसावेशवारेनकूँ ऊपर कह्यो प्रमाण मतिविक्षेप न होय ऐसें कह्यो है; क्यों जो उनकूँ तो निरन्तर रसावेश रहिवेसूँ ज्ञान कबहू न होय है; क्यों जो ज्ञान है सो रसके उदयको प्रतिबन्धक है तासूं ही सर्व-व्यापक और अपने हृदयमें बिराजवेवारे—प्रभूनको शोध करिवेकी प्रवृत्ति होय है सोही बात सिद्धज्ञानवारे—श्रीशुकदेवजीनें श्रीभागवत दशम स्कन्ध में फलप्रकरणमें कही है; तासूँ ही श्रीटिप्पणीजी में श्रीगुसाँइजीनें आज्ञा करी है जो बहिर्मुखनकूँ आकाशकीसीनांई सर्वत्र व्याप्त हैं ऐसो प्रभुको ज्ञान होय है और भक्तनकूं तो बाहिर प्रकट प्रभुको ही आनन्द अपेक्षित है; तासूं एकादश स्कन्धमें श्रीभगवाननें आज्ञा करी है जो "ज्ञान, वैराग्य बहोत करिकें भक्तके श्रेयः साधक नहीं है" यहाँ शङ्का होय जो भगवदा-वेशमें तो भगवानकीनांई सर्वज्ञपनो होनो योग्य है तब उनकूं विकलता कैसें होय ? जासूं श्रवणादिकमें प्रवृत्ति होय हैं ऐसी शङ्का करिकें कहे हैं जो उनकूं प्रभुके गुण करिकें निरोध होय है, प्रपञ्चके विस्मरणपूर्वक प्रभु में जो आसक्ति वाकूं निरोध कहत हैं सो केवल गुणश्रवणसूं ही होय है तासूं निरोध करिकें वैकल्य होय जाय है और रीतिसूं नहीं होय है, ऐसें श्रोतापनेको उपपादन करिकें उनकूं कदाचित् मोक्षादिक अर्थमें निष्ठा होय तब अर्थमें निष्ठा होय सो तो मध्यममें गिन्येजाय तासूं मध्यमपनेकी निवृत्ति के लिये अब कहत हैं जो सर्वत्र पूर्ण ऐसो जो भगवद्भाव (भगवदावेश और निरोधसूं भयो भगवानको ज्ञान) इतने सर्वत्र भगवानकी स्फूर्ति ता करिकें ही जाके सब अर्थ समाप्त भये हैं तासूं और स्वार्थ उनकूं नहीं है; तासूं ही (स्वार्थनिष्ठाके अभावसूं ही) उनकों मध्यमपनो नहीं है किन्तु उत्तम-पनो ही हैं; क्यों जो एक भगवानमें ही निष्ठावारे हैं, जब ऐसें भयो तो

पुष्टिमार्गीयनसूँ वामें जुदाई न भई क्यों जो पुष्टिमार्गीय जैसें प्रभुमें ही निष्ठा-वारे हैं, ऐसें वे हू हैं ऐसी शङ्का होय तहाँ कहत हैं जो उनकों ऐसो भाव सर्वदा नहीं रहे है किन्तु कोउ बखत रहे है; इतनें जो भगवद्गुणको श्रवण करे तब ही निरोध होयकें प्रभुनिष्ठ होयजाय हैं और पुष्टिमार्गीय तो सदा ही भगवन्निष्ठ होयवेसूँ सबनसूँ न्यारे ही हैं; तासूँ ही शुकादिकनकूँ सर्वदा लीलानुसन्धान नहीं है जो होय तो "मथुराजीसूँ व्रजपति गये" ऐसें तटस्थ रहिकें कथन असङ्गत होय। पुष्टिमार्गीयनके भावको सार्वदिक्पनो तो एकादश स्कन्धमें प्रभुने ही कह्यो है जो "मेरे विषे ही जिनकी अनुषंग करिकें बुद्धि बँधाई है ऐसे श्रीगोपीजननें अपनो आत्मा, यह जगत् और परलोक उन सबनकूँ न जाने, समाधिमें मुनिजन और समुद्रके जलमें जैसें नदीयें अपनो नामरूप छोडिकें प्रवेश करे हैं तैसें" यहाँ नदीके दृष्टान्त करिकें समुद्रमें प्रवेश करिवेवारी नदी पूर्वरूपकूँ कभी प्राप्त नहीं होय है और स्वरूपसूँ रहे है तो हू भेदसूँ कथन नहीं होय है; तासूँ ही पुष्टिमार्गीयनके विषे भगवदितरे स्फूर्त्तिके अभाववारो भाव, भगवदीयपनो और भगवानमें ओतप्रोत होयकें रहनो है और मर्यादामार्गमें तो श्रवणादिकसूँ भगवदीयपनो है तासूँ पुष्टिमार्गीय और मर्यादामार्गीयमें बहोत भेद है; तासूँ विशेष कहा कहनो? ऐसें बहिः सम्बेदनके अभावकी दशामें मर्यादामार्गीय–उत्तमनको निरूपण करिकें बहिः संवदेनापन्नको निरूपण करिवेके लिये बहिः संवेदनके प्रसङ्गसूँ अधमनको निरूपण करत हैं जो कितनेक अन्यासक्त इतनें ब्राह्मण-त्व क्षत्रियत्वादि करिकें उत्कर्षापकर्षयुक्त और गृहादिकमें आसक्त इतनें वृत्ति सम्पादनके लिये अथवा लोकनकूँ सुनायवेके लिये श्रवण करिवेवारे जलभेदमें "क्षेत्र—प्रविष्टास्तेचापि संसारोत्पत्ति हेतवः" या श्लोकमें कह्ये-भाववारे अधम कह्ये हैं। मूलमें तु शब्द कहेवेको यह अभिप्राय है जो प्रभुके सेवाकरिवेके लियें जो घरमें आसक्त होय सो अधम नहीं है, उनकों तो पुष्टिमार्गीय—मोक्ष रूपपनो करिकें उत्तमपनो है ॥३॥४॥

ऐसें मध्यमें अध्यमनको निरूपण करिकें अब बहिः संवेदनदशाकेविषेहू जिनको अन्यत्र मन नहीं है ऐसे उत्तमनको निरूपण करत हैं—

अनन्यमनसो मर्त्या उत्तमाः श्रवणादिषु ।
देशकालद्रव्यकर्तृमन्त्रकर्मप्रकारतः ॥ ५ ॥

॥ इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितानि पञ्चपद्यानि समाप्तानि ॥

भावार्थ—देश, काल, द्रव्य, कर्तृ और कर्मके प्रकारसूँ जो अनन्य मनवारे हैं सो श्रवणादिकमें उत्तम हैं; इतनें सर्वत्र बहारके पदार्थनको ज्ञान होय तब हू प्रभु सिवाय अन्यत्र जिनको मन न होय वे अनन्य कह्यो जाय हैं. तहाँ शङ्का होय जो प्रभु सिवाय अन्यत्र जिनको मन नहीं है तिनकूँ अन्तः संवेदनमें विशेष कहा ? ऐसी आशङ्का करिकें अनन्य चित्तपनेमें प्रकारभेद कहत हैं जो देश, काल, द्रव्य, कर्त्ता, मन्त्र, और कर्म इतनेप्रकारसूँ अनन्यमनवारे चहियें; इतने अन्तःसंवेदनमें भगवद्रूपसूँ ही देशादिकनकी स्फूर्त्ति होय है देशादिकपनेसूँ नहीं होय है;क्यों जो केवल भगवदाकार अन्तः-करण भयो तब सर्वत्र आवरणको नाश होय जाय है और बाहिरके पदार्थको ज्ञान होय तब तो ये देशादिक सब भगवद्रूप है ऐसी स्फूर्ति होय है तामें देशादिकनमें भावनामात्र करिकें भगवद्बुद्धि होय है; अर्थात् अन्तःसंवेदनमें देशादिकनकी स्फूर्त्ति ही नहीं होय है और बहिः संवेदनमें देशादिकनकी स्फूर्तिके सङ्ग भगवद्बुद्धि होय इतनो अन्तःसंवेदनमें विशेष है, तहाँ शङ्का होय जो अन्तःसंवेदनमें प्रभुपनेसूँ देशादिकनमें स्फूर्त्ति होय और बहिः संवे-दनमें देशादिकनकी स्फूर्तिमें भावनामात्रकी बुद्धि रहे इतनो तारतम्य क्यों रहे ? अन्तः संवेदन और बहिःसंवेदनमें अन्तःकरणको स्वरूप तो एक ही है ऐसी शङ्का करिकें कहत हैं जो ये मर्त्य हैं तासूँ अन्तःसंवेदनमें भावना करिकें भगवद्रूप ही होय जायवेसूँ अन्यस्फूर्त्ति नहीं रहे है और बहिःसंवेदन में तो मर्त्यपनेसूँ देशादिकनकी स्फूर्त्ति रहिवेसूँ शास्त्र करिकें उनमें भगवद्-बुद्धि रहे है. ऐसे जो होय सो मर्यादामार्गमें श्रवणादिकनमें और कीर्तन प्रभृतीनमें उत्तम हैं ॥ ५ ॥

॥ इति श्रीमद्वल्लभाचार्यजीविरचित पञ्चपद्यानकी गोस्वामि
श्रीनृसिंहलालजीमहाराजविरचित व्रजभाषामें
संक्षिप्तटीका समाप्त भई ॥

—०—

* श्रीकृष्णाय नमः *

* श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः *

अथ श्रीसन्न्यासनिर्णयकी व्रजभाषामें संक्षिप्त भावार्थटीकाको प्रारम्भ ।

—★—

अब श्रीआचार्यचरण सन्न्यासनिर्णयग्रन्थको प्रारम्भ करत हैं—

पश्चात्तापनिवृत्यर्थं परित्यागो विचार्यते ।

भावार्थ—पश्चात्तापकी निवृत्तिके लिये परित्यागको विचार कियो-जाय है, यहाँ भक्तिमार्गीय जो परित्याग है तासूँ दूसरे सर्वपदार्थनको विचार करिकें त्याग करनो, ऐसो विचार किये बिना परित्याग कियो होय तामूँ जो पश्चात्ताप होय ताकी निवृत्तिके लिये भक्तिमार्गीय-परित्यागके विचारको प्रारम्भ करत हैं, ऐसें कोउ कहत हैं. दूसरे ऐसें कहत हैं जो कर्म-मार्गीयनकूँ वृद्धपनो होय तो हू संसारसूँ वैराग्य होयवेको सम्भव होय नहीं है तासूँ ऐसे—कर्ममार्गीयनके सङ्ग करिकें कदाचित् भगवदीयन हू ऐसे न होय ताके सुखरूप जाको उपाय है ऐसे—संन्यासके निरूपणकी प्रतिज्ञा है, ऐसें कहिकें शरीर अशक्त होय तब पूर्वदशाको स्मरण करिकें वाके मनमें ऐसो विचार होय जो मैंने प्रथमतें हि भगवानके लिये क्यों यत्न न कियो ? ऐसो जो भगवदीयनकूँ ताप होय सो ही यहाँ "पश्चात्ताप" शब्दसूँ कह्यो जाय है, कितनेक ऐसे कहें हैं जो भक्तिमार्गमें और ज्ञानमार्गमें साधनदशामें और सिद्ध दशामें कर्तव्यपनेसूँ परित्याग कह्यो है तामें साधनदशामें पूर्ण वैराग्य नहीं होयवेसूँ आछी भाँति परित्यागको सम्भव नहीं है तासूँ पाष-ण्डिपनेके प्रसङ्ग करिकें पश्चात्ताप के लिये ही यह परित्याग होय ऐसो तारतम्य नहीं जानते होय ऐसे भगवदीय हू प्रथम परित्याग करिकें पीछे

तापयुक्त होय तैसें ऐसेतप्तभगवदीयनकू देखिकें श्रीआचार्यचरण पश्चात्तापकूं प्राप्त होय ऐसें दोउ प्रकारको पश्चात्ताप नहीं होयवेके लिये यह प्रतिज्ञा है, कितनेक ऐसें कहत हैं जो निबन्धमें आचार्यचरणननें त्रिदण्ड धारण करिवेकी आज्ञा करी है सो वांचिके पुष्टिमार्गीय जीव हू संन्यासाश्रमपनेसूं त्रिदण्डको ग्रहण करिकें पश्चात्तापकूं प्राप्त होय ताकी निवृत्तिके लिये पुष्टिमार्गीय संन्यासके विचारको आरम्भ करत हैं, कितनेक तो ऐसें कहत हैं जो श्रुतिप्रभृति—प्रमाण करिकें सिद्ध ऐसे रसात्मक जो भगवान् ताको विरहात्मक-भावको जो अनुभव सो, सर्वात्मभाव करिकें शरणागति होय तब ही प्राप्त होय सो सर्वपरित्याग बिना होय नहीं ऐसो त्यागको स्वरूप नहीं जानिवेवारे जो पुष्टिमार्गीय जीव हैं तिनकूं ज्ञानादिक मार्गनमें हू परित्याग कह्यो है तासूं सन्देहयुक्त होय इनकूं बिना विचारसूं परित्याग भयो होय सो पश्चात्तापके लिये ही होय ताके अभावके लिये विचारको आरम्भ है ऐसें कहत हैं, और "श्रीपुरुषोत्तमजी महाराजने तो ऐसो अभिप्राय कह्यो है जो अन्तःकरण प्रबोधमें जो पश्चात्ताप और परित्याग पदको लेख है सो जा अभिप्रायसूं है सो ही अभिप्राय यहाँ लेनो चाहियें ऐसे अभिप्रायसूं लिख्यो है जो प्रभूननें देह और देशके परित्याग विषयक श्रीआचार्यचरणनकूं आज्ञा करी ताप्रमाण ऊपर दीखवेमें आवते-विचार-करिकें श्रीआचार्यचरणननें जब कर्यो नहीं तब आपने सेवकपनेको स्वीकार कियो है तासूं पश्चात्ताप भयो तब लोकत्याग विषयक तीसरी आज्ञा भइ तासमय आप विचार करत हैं जो भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हैं किंवा अप्रसन्न हैं ? जो अप्रसन्न होय तो मेरी उपेक्षा ही करें परन्तु आज्ञा नहीं करें और यहाँ तो तोसरी आज्ञा भई तासूं प्रसन्न हैं ऐसो तो निश्चय होय है परन्तु प्रथम दोय आज्ञाको उल्लंघन कियेसूं हू प्रसन्न रहिवेको कहा कारण होयगो ? ऐसो विचार करिवे लगे तब श्रीभागवतको सूक्ष्म-टीका की निवृत्त भई तासूं दानरूप—देशत्याग और माधवभट्ट काश्मीरीकी देह निवृत्तिसूं वृद्धिरूप-देहत्याग प्रभूननेही करवायो है तासूं प्रथमकी दोउ आज्ञा प्रभूननेही सिद्ध करी है, तैसें तीसरी आज्ञाको अभिप्राय हू जानिवेमें नहीं आवत है ऐसो निश्चय करिकें यद्यपि दोय आज्ञा सिद्ध भई है तथापि प्रभूनने सिद्ध करी है कछु आपने नहीं करी है तासूं जो पश्चात्ताप भयो है ताकी निवृत्ति कैसें होय ? ऐसो विचार करिकें तीसरी आज्ञा कहा विषयकी है ? ऐसे विचारसूं ही प्रथमकी दोय आज्ञा नहीं करिवेको पश्चात्ताप भगवान् निवृत्त करेंगे ऐसो निश्चय करिकें अपनी अवस्थाके सूचनपूर्वक परित्यागके निरूपणकी प्रतिज्ञा करत हैं जो

पश्चात्तापकी निवृत्तिके लिये जो परित्याग है ताको विचार किया जाय है, यहाँ विचारको लिख्यो है तासूँ विधिशेषपनो नहीं है जो विधानकी आज्ञा करतें तो विधिशेषपनेसूँ सबनकूँ कर्त्तव्यपनो आवतो तासूँ विधानकी आज्ञा नहीं करतें विचारकी आज्ञा करी है।

स्वरूपसूँ साधनसूँ और फलसूँ ताके विचारमें सामान्य परित्यागको स्वरूप जानिवेमें आवे तो अन्य मार्गीय-त्यागको तथा यहाँ जाको विचार होय है ताको तारतम्य जान्यो जाय ताके लिये अन्यमार्गीय—त्यागकूँ कहत हैं—

स मार्गद्वितये प्रोक्तो भक्तौ ज्ञाने विशेषतः ॥ १ ॥

भावार्थ—सो त्याग भक्तिमार्गमें और ज्ञानमार्गमें विशेष करिकें ऐसें दोयमार्गमें कह्यो है, विशेषसूँ त्याग, पुष्टिमार्गमें रासमण्डल-मण्डनभूत जो व्रजभक्त हैं विननें ही कर्यो है; तासूँ "सब विषयनकूँ छोडिकें हम आपके चरणारविन्दके मूलकी ओर प्राप्तभये हैं"ऐसें फलप्रकरणकेप्रथमाध्याय में कह्यो है और विनकी लीलामें हो चतुर्थाध्यायमें व्रजभक्तनके प्रति प्रभूनने कह्यो है जो "मेरे लिये ही लोक, वेद और सम्बन्धीनको तुमने त्याग कियो है" वहाँ विशेषसूँ त्याग कह्यो है, तैसें ज्ञानमार्गमें हू परित्याग विशेषसूँ कह्यो है; तामें एक विविदिषासन्न्यास और एक विद्वत्सन्यास ऐसे भेदसूँ ज्ञानमार्गके शास्त्र में निरूपण कियो है तासूँ 'विशेषतः' ऐसें कह्यो है ॥१॥

ज्ञान, कर्म और भक्ति ऐसें तीनमार्ग एकादश स्कन्धमें भगवाननें कल्याण करिवेवारे कह्यो हैं, तामें कर्ममार्ग हू गिन्यो है तासूँ कर्ममार्गमें हू परित्यागकी प्राप्ति होय है ऐसी आशङ्का करिकें ताको निषेध करत हैं—

कर्ममार्गे न कर्त्तव्यः सुतरां कलिकालतः ।
अत आदौ भक्तिमार्गे कर्त्तव्यत्वाद् विचारणा ॥ २ ॥

भावार्थ - कर्ममार्गमें परित्याग कर्त्तव्य नहीं है । तामे हू कलिकालसूँ तो कर्ममार्गमें कर्त्तव्य है ही नहीं, अब दोयमार्ग रहे तामें प्रथम भक्तिमार्गमें कर्त्तव्यपनो होयवेसूँ ताको विचार होय है; इतनें कर्ममार्गमें यावज्जीव अग्निहोत्र करिवेको विधि होयवेसूँ संन्यास ग्रहणकरिवेको समय नहीं आवत है, 'यद्यपि आयुष्यको चतुर्थभाग संन्यासाश्रमकरिकें व्यतीत करनो' ऐसें

कोउस्थलमें कह्यो है तथापि कलिदोषकरिकें मनुष्यनको अल्पसामर्थ्य होयवेसूँ और चतुर्थभाग आयुष्यको अतिजराव्याप्त होयवेसूँ आश्रमधर्मकों अतिकष्टसूँ हु सिद्ध करि सके तासूँ विपरीतफल साधकपनो होय, ऐसें ज्ञान-मार्गमें कर्त्तव्यता और कर्ममार्गमें अकर्त्तव्यता जतायकें भक्तिमार्गमें कर्त्त-व्यप्रकारको विचार करत हैं जो भक्ति और ज्ञान ऐसें दोयमार्गमें कर्त्तव्यता कही है तामें प्रथम श्लोकमें प्रथम भक्तिमार्गमें कर्त्तव्यता कही है तासूँ ताको विचार करत हैं; इतनें कब करनो ? कैसें करनो ! और क्यों करनो ? याको विचार करत हैं ॥ २ ॥

भक्तिमार्गमें श्रवणादि-साधनकी सिद्धिके लिए कर्त्तव्यके पक्षको निराकरण करत हैं—

श्रवणादिप्रवृत्त्यर्थं कर्त्तव्यश्चेत् स नेष्यते ।
सहायसंगसाध्यत्वात् साधनानां च रक्षणात् ॥ ३ ॥
अभिमानान्नियोगाच्च तद्धर्मैश्च विरोधतः ।
गृहादेर्बाधकत्वेन साधनार्थं तथा यदि ॥ ४ ॥
अग्रेऽपि तादृशैरेव संगो भवति नान्यथा ।
स्वयं च विषयाक्रान्तः पाषण्डी स्यात् तु कालतः ॥५॥

भावार्थ—श्रवणादिकनकी प्रवृत्तिके लिये त्याग करनो ऐसो पक्ष होय तो सो योग्य नहीं है; क्यों जो श्रवणादिकनकी सिद्धि सहाय और संगसूँ है और त्याग (संन्यास) में तो वाके साधन राखने चहियें तासूँ श्रवणादिकनके साधन होय सके नहीं, आश्रमकी उत्तमताको अभिमान होय और संन्यासके धर्म न करिकें भक्तिमार्गके श्रवणके धर्मको विरोध है तासूँ श्रवणादिक होय के नहीं, और गृहादिकके बाधकपनेसूँ साधनके लिये परित्याग करनो ऐसें जो होय तो त्याग किये पीछें हू ऐसेनको ही सङ्ग होय दूसरेनको होय नहीं और आप कालसूँ पाषण्डी होय; इतनें जो त्यागी होय सो अकेलो निःसंग शान्त होयकें फिरे ऐसो लेख है और श्रवणादिक करिवेमें सहाय तथा संग अवश्य चहियें तब श्रवणादिक होय और त्याग करिवेमें सङ्ग मिले सो अपने-अपने मार्गके अनुसारको श्रवण बतावे पुष्टिमार्गीय-श्रवणकूँ बतावे नहीं, जैसें मायावादी सगरेजगतकूँ कल्पित मानिवेवारे होयवेसूँ जगतमें रह्यो ऐसे वेदनकूँ हू कल्पित मानत हैं और वेदमें ब्रह्मके जो धर्म प्रतिपादित हैं

सो हू व्यवहारोपयोगी है परमार्थमें नहीं है तासूँ भक्तिमार्गसूँ विरुद्ध हैं, नैयायिकनके मतमें तो जगत्के कर्त्तापनेसूँ ईश्वरकी सिद्धि है तथापि ज्ञान, इच्छा और प्रयत्नादिसिवाई दूसरे धर्म नहीं हैं ऐसें मानत हैं तासूँ भक्ति मार्गसूँ विरुद्ध हैं, मीमांसक मन्त्रमयी देवता मानत हैं फल देवेवारो दूसरो ईश्वर है इनकूँ नहीं मानत हैं तासूँ वामें तो श्रवणादिक है ही नहीं, ऐसें भिन्न-भिन्न मतवारेनको संग होयवेसूँ भक्तिमार्गीय श्रवण सिद्ध होय नहीं, तैसें आश्रमधर्म राखने चहियें तामेंही सर्वकाल व्यतीत होय जाय इतनें श्रवणादिक करिवेको समय ही मिले नहीं, तैसें संन्यासाश्रम सबनकूँ आदरणीय है ताके लिये अपनेमें श्रेष्ठताको अभिमान होय सो हू भक्तिमार्गसूँ विरोधी है, तैसें संन्यासाश्रम शास्त्रकी आज्ञाके आधीन है और संन्यासके धर्म तथा भक्तिमार्गीय—श्रवणके धर्मनमें परस्पर विरोध है तासूँ श्रवणादिकनको सिद्धिके लिये संन्यास करनो यह पक्ष योग्य नहीं है, कदाचित् भक्तिमार्गीय – श्रवणादिकके स्वरूपकूँ जो जानतो होय ताकूँ गृहस्थितिमें व्यासंगकरिकें श्रवणादिक होय नहीं है ऐसें जानिकें त्याग करे तो वाकूँ हू साधनदशामें जैसो पूर्णभाव भक्तिमार्गमें चहियें तैसो नहीं होयवेसूँ निरन्तर श्रवणादिक होयसके नहीं और चित्तकी चञ्चलतासूँ एतन्मार्गसूँ जो विजातीय होय विनसूँ ही सङ्ग होय और जिनकूँ भगवद्भाव न होय ताको चित्त विषयाक्रान्त होयवेसूँ ऐसेनको सङ्ग अल्पसमय होय तोहू प्रथमके भावको नाश करिकें अपनेकूँ हू विषयाक्रान्त करिवेको सम्भव होय; इतनें प्रथमके भावको निर्वाह नहीं होयवेसूँ त्याग कियो सोहू मुख्य फलकूँ सिद्ध करिवेवारो भयो नहीं तासूँ भक्तिमार्गके विचारमें त्याग करिवेवारो कालक्रमसूँ पाषण्डी होय ॥३॥४॥५॥

यद्यपि भावकी स्थितिमें दुःसङ्ग बाधक है तथापि भावकी स्थितिके लिये ही त्यागको उपक्रम कियो है तासूँ दुःसंग होयगो तो हू भाव रहेगो ऐसो पक्ष कोउ कहे तो निराकरणके लिये अब कहत हैं—

विषयाक्रान्तदेहानां नावेशः सर्वदा हरेः ।
अतोऽत्र साधने भक्तौ नैव त्यागः सुखावहः ॥ ६ ॥

भावार्थ—विषय करिकें जिनको देह आक्रान्त है तिनकूँ सर्वदा हरिको आवेश न रहे, मूलमें सर्वथा पाठ होय तो हरिको निश्चय आवेश न रहे ऐसो अर्थ समजनो; तासू साधनरूप—भक्तिमार्गमें अथवा भक्तिमार्गमें

साधन दशामें त्याग सुखकूँ देवेवारो नहीं होय है; इतने नेत्रप्रभृति-सर्व इन्द्रियनके रूपप्रभृति सब विषय हैं तिन करिकें जिनको देह व्याप्त है तिनकूँ (विषयको आवेश हृदयमें होयवेसूँ) सर्वदा हरिको आवेश नहीं होय है; क्यों जो इन्द्रियनके विषयमें आसक्ति होय सो प्रभुके आवेश में बाधक हैं तासूँ श्रवणादिक जो साधनरूप भक्ति है तामें त्याग करे सो पुरुषार्थकूँ सिद्ध करिवेवारो न होय, मूलमें एवकार है तासूँ सर्वदा पुरुषार्थको असाधकपनो कह्यो है ॥ ६ ॥

तब भक्तिमार्गमें त्याग कहवेको प्रयोजन नहीं होयवेसूँ त्यागकी व्यर्थता होय है, ऐसी शङ्का होय तहाँ कहत हैं—

विरहानुभवार्थं तु परित्यागः प्रशस्यते ।

स्वीयबन्धनिवृत्त्यर्थं वेषः सोऽत्र न चान्यथा ॥७॥

भावार्थ—भगवानके विरहके अनुभवके लिये तो त्याग उत्तम कह्यो है और त्यागमें काषायवस्त्रादिक वेष है सो अपने सम्बन्धीनके बन्धनकी निवृत्तिके लिये है अन्यथा नहीं है; इतनें पुष्टिमार्गीय परित्याग सम्पूर्ण भगवद्भाव भये पीछे होय; क्यों जो भगवानके विरहको अनुभव करनो सो संयोगसुखको अनुभव भयो होय तब वियोगमें विरह होय तासूँ प्रथम भावपूर्वक भगवानके श्रीमुखको दर्शन करतो होय और श्रीअङ्गकी सेवा करतो होय तामें जो आनन्द प्राप्त होतो होय सो वियोगमें दर्शन तथा सेवाको सुख नहीं मिलवेसूँ विरह होय ताको अनुभव करिवेके लिये गृहादिकको त्याग करे सो उत्तम है, ऐसे त्यागमें शुद्ध —पुष्टिमार्गीय—भाववारो होय सो ही अधिकारी है, ऐसो पूर्णभाववारो जो होय ताकूँ सर्वात्मभाववारे जो भक्त हैं तिनके सम्बन्धवारी जो रासादिकलीला है ताको विचार अवश्य होय ताकरिकें और ये लीला परमफलरूप है ताकरिकें पूर्व कह्यो ऐसे भक्तकूँ हू एतन्मार्गीयपनो होयवेसूँ ऐसो फल मिलवेको अत्यन्त अभिलाषा होय परन्तु या समयमें वाकी अभिलाषा नहीं और पूर्ण करिवेवारेको दर्शन हू होय नहीं तासूँ विरह अवश्य होय और गृहमें जो मनुष्य रह्यो होय सो विजातीय भाववारे होयवेसूँ विनको सङ्ग याके भावकूँ नाश करिवेवारो होय ताकरिकें विरहको अनुभव होय नहीं तासूँ गृहको त्याग करनो आवश्यक है, और वाको त्याग जतायवेके लिये काषायादिक त्यागके वेषकी कल्पना है; इतनें जो संन्यासको वेष न होय तो स्त्रीपुत्रादिक आयकें

प्रतिबन्ध करें और वेष कियो होय तो स्त्री-पुत्रादिक देखिकें यह संन्यासी होय गयो है ऐसें जानिकें दूर रहे तो प्रतिबन्ध करि सके नहीं तासूँ संन्यासीनको वेष है और कछु प्रयोजन नहीं है ॥७॥

मर्यादामार्ग में तथा पुष्टिमार्गमें गृहको त्याग समान है तथापि मार्गके भेदको निरूपण करिवेके लिये त्यागको निमित्त तथा त्यागके वेष करिवेको निमित्त भिन्न बतायकें गुरु और साधनको निरूपण करत हैं—

कौण्डिन्यो गोपिकाः प्रोक्ता गुरवः साधनं च तत् ।
भावो भावनया सिद्धः साधनं नान्यदीष्यते ॥ ८ ॥

भावार्थ—कौण्डिन्यऋषि और श्रीगोपीजन त्यागके गुरु कह्यो हैं और साधन हू वह है जो भावनाकरिकें भाव सिद्ध होय सोही साधन है ओर साधन इच्छित नहीं है; इतनें कौण्डिन्यऋषि अनन्तव्रतके प्रस्तावमें निरूपित है और श्रीगोपीजन प्रसिद्ध हैं तासूँ विशेष प्रकार नहीं कह्यो है, यद्यपि कौण्डिन्यऋषि मर्यादामार्गीय होयवेसूँ वाकूँ एतन्मार्गको ज्ञान नहीं होयवेसूँ उपदेष्टृपनो नहीं है तासूँ गुरुपनो सम्भवे नहीं तथापि दत्तात्रेयकी नांई अपने वैराग्यमें उपयोगी ऐसे विनके धर्म शीखवेसूँ जैसें दत्तात्रेयनें पृथ्वी प्रभृतीनको गुरुपने में अङ्गीकार कियो है तैसें कौण्डिन्यकूँ अनन्तके गुणको श्रवण करिकें विनकूँ मिलवेके लिये आर्त्ति भई तासूँ विप्रयोगभाव भयो ता करिकें विक्लवता होयवेसूँ प्रश्न करिवेकूँ अयोग्य ऐसे वृक्षादिनकूँ हू प्रश्न करिवे लगे। ऐसें कौण्डिन्यको त्याग और एतन्मार्गीय-त्याग समान है तासूँ कौण्डिन्यमें गुरुपनो कह्यो है, और श्रीगोपीजनन हू उपदेश करिवेवारे नहीं हैं तथापि विनको मार्ग प्रकट करिकें और विनके भावके अनुकूल आचरण करिकें और पंचाध्यायीमें दोह प्रभृतीनको विरहसूँ त्याग करिकें प्रभूनके पास गये हैं ऐसो त्याग यहाँ अभीष्ट होयवेसूँ हू विन गोपीजननको गुरुपनो यहाँ कह्यो है, और अपनेमें श्रीगोपीजननके भावके अनुरूप ऐसी भावना करिकें सिद्ध भयो जो भाव ताको साधनपनो उचित है, दूसरे (दानव्रतादिक) को साधनपनो इच्छित नहीं है ॥ ९ ॥

ऐसो भाव उत्पन्न भये पीछें जो अवस्था होयवेवारी है सो बुद्धिकूँ फिराय देय तब दुःखके कारणरूप होय ता करिकें प्राकृतपनो होय जाय, ऐसी आशङ्काको परिहार विनके भावके स्वरूपको निरूपण करिकें करत हैं—

विकलत्वं तथाऽस्वास्थ्यं प्रकृतिः प्राकृतं न हि ।
ज्ञानं गुणाश्च तस्यैवं वर्त्तमानस्य बाधकाः ॥ ९ ॥

भावार्थ—विकलपनो तथा अस्वस्थपनो विकलभावकी प्रकृति है प्राकृतपनो नहीं है, और ऐसे भावमें जो रह्यो है ताकूँ ज्ञान तथा गुण बाधक हैं; इतनें जाकूँ विप्रयोगभाव भयो है ताकूँ विकलता होय और कोउ स्थलमें स्वस्थता न रहे सो हू स्वाभाविक धर्म है लौकिक नहीं है, सो अर्थ युक्त है ऐसें जतायवेके लिये 'ही' अव्यय लिख्यो है; क्यों जो एकादशस्कन्ध में ज्ञानके निरूपणके प्रस्तावमें हू कैवल्यादिक ज्ञाननकूँ हू सगुणपनो है ऐसें निरूपण करिकें "मेरे में जो ज्ञान रह्यो है सो निर्गुण है" ऐसें कहिकें स्वविषक-ज्ञानको निर्गुणपनो कह्यो है, जहाँ मर्यादामार्गमें हू भगवानके सम्बन्धिपनेसूँ वस्तुकों निर्गुणपनो है तहाँ साक्षात् सबनसूँ अधिक ऐसे भक्तिमार्ग सम्बन्धि भगवद्भावसूँ जो धर्म होय है तिनकूँ निर्गुणपनो होय तामें कहा कहेनो ? ऐसो अभिप्राय 'ही' अव्ययसूँ सूचित होय है। तहाँ शङ्का होय जो भगवानके सम्बन्धसूँ निर्गुणपनो भले होय तो हू विप्रयोग भावकों दुःखात्मकपनो होयवेसूँ सबनसूँ उत्कृष्टपनो क्यों ? ऐसी शङ्का होय ताको समाधान ऐसें करनो जो पुरुषोत्तमको स्वरूप रसरूप है और रस संयोग तथा विप्रयोग ऐसें दोय प्रकारको होयवेसूँ विप्रयोगकूँ हू रस-पनो ही है तासूँ जैसें शोकसूँ अश्रु आवे ताकूँ दुःखरूपपनो और आनन्दसूँ अश्रु आवे ताकूँ सुखरूपपनो है तामें अश्रुपनो समान है तथापि फल समान नहीं है तैसें विप्रयोगकूँ दुःखरूपपनो नहीं है, ऐसी विकल अवस्थामें रह्यो, ऐसो जो विप्रयोग भावनावारो है ताकूँ सर्वजगत् भगवानको शरीर है ऐसो ज्ञान और श्रवण, कीर्तन तथा गानके विषयरूप भगवानके गुण बाधक हैं; इतने अन्तःकरणमें विप्रयोग भाव रह्यो होय सो सर्वजगत् भगवानको शरीर है और सर्वत्र भगवान् विराजे हैं ऐसे ज्ञानसूँ जा तरह है तैसें श्रवण कीर्त्तनादिकके विषयरूप जो भगवानके गुण हैं तासूँ भगवानके विरह-करिके जो विह्वलता भई होय सो जा तरह ऐसें ज्ञान और गुणको बाधकपनो है तैसें लौकिक ज्ञान और मनकी स्वस्थाके कारणरूप गुण हूँ विप्रयोग रसके अनुभव तथा फलमें प्रतिबन्धक हैं ॥ ९ ॥

ज्ञानमार्ग में और भक्तिमार्गमें घरको त्याग तो समान है तब ज्ञान तथा मनकी स्वस्थताकूँ ज्ञानमार्गमें साधकपनो है तब भक्तिमार्गमें बाधक-पनो कैसें ? ऐसो शङ्काके समाधानके लिये फलभेद करिकें समाधान करत हैं—

सत्यलोके स्थितिर्ज्ञानात् संन्यासेन विशेषितात् ।
भावना साधनं यत्र फलं चापि तथा भवेत् ॥१०॥

भावार्थ—संन्यास करिकें विशेष भयो एसो जो ज्ञान तासूँ सत्यलोकमें स्थिति होय; इतनें सर्वत्र ब्रह्म व्यापक है ऐसो ज्ञान होय और वाके सङ्ग संन्यास होय तब ब्रह्मलोक में स्थिति होय, वा विषयमें तैतरीय श्रुतिमें कह्यो है जो 'वेदान्तके विज्ञानसूँ जिनने आछी रीतिसूँ अर्थको निश्चय कियो है और संन्यास योगसूँ जिनको अन्तःकरण शुद्ध भयो है ऐसे जो संन्यासी लोक हैं वे ब्रह्मलोकमें जाय हैं और ब्रह्माजीकी मुक्तिके सङ्ग मुक्त होय हैं" ऐसें कह्यो है और छान्दोग्य श्रुतिमें तो 'या लोकमें जैसे यज्ञवालो पुरुष होय है तैसो ही मरणानन्तर होय है' ऐसें कह्यो है तामें तैत्तरीय श्रुतिमें ब्रह्माकी मुक्तिके समयमें मुक्ति होयवेको लिख्यो है और छान्दोग्य श्रुतिमें मरणानन्तर भावनानुसार पारलौकिकफल होयवेको कह्यो है तासूँ जा पुरुषमें भावना साधन है वहाँ ऐसो ही फल होय, अर्थात् ज्ञानयुक्त जो संन्यासी है वाकूँ ही ब्रह्मलोकमें स्थित होयकें ब्रह्माके सङ्ग उनको मोक्ष होय है तासूँ ब्रह्मलोकमें जायवेमें ज्ञानकी ही मुख्यता है और स्वास्थ्य न होय तो ज्ञान स्थिर होय नहीं तासूँ मनकी स्वस्थता सिद्ध करिवेवारो ज्ञान ही है और भक्तिमार्गमें साक्षात् पुरुषोत्तमके सम्बन्धकूँ ही फलपनो है और पुरुषोत्तम रसात्मक हैं ऐसो ही श्रुतिमें कह्यो है तासूँ इनके सम्बन्धमें विप्रयोगरसात्मक भावकूँ ही साधनपनो है ज्ञान और मनकी स्वस्थता प्रभृतीनकूँ तो भावको नाशकपनो है; तासूँ जहाँ भावनारूप साधन है वहाँ फल हू तैसो होय, ऐसो अभिप्राय छान्दोग्य श्रुतिको है ॥१०॥

ऐसें दोउ मार्गमें प्रकारके भेदकरिकें साधन और फलको निरूपण करिकें ज्ञानमार्गमें फल प्राप्तिमें विलम्ब होय है और भक्तिमार्गमें विलम्ब नहीं होय है ताको कारण कहत हैं—

तादृशाः सत्यलोकादौ तिष्ठन्त्येव न संशयः ।
बहिश्चेत् प्रकटः स्वात्मा वह्निवत् प्रविशेद् यदि ॥११॥
तदैव सकलो बन्धो नाशमेति न चान्यथा ।

भावार्थ—संन्यासयुक्त जो ज्ञानी है सो सत्यलोकादिकमें ही रहे हैं वामें संशय नहीं है तासूँ ज्ञानमार्गमें मुक्ति होयवेमें विलम्ब होय है और भक्तिमार्गमें तो जैसें सब काष्ठनमें अग्नि व्याप्त होयकें रह्यो है तथापि

काष्ठकों दहन करिवेमें समर्थ नहीं है तासूँ बाहिरको अग्नि भीतर प्रविष्ट होयकें भीतरके अग्निकूँ मिले तब काष्टकूँ दहन करिकें अग्निरूप करिदेय है ऐसें सर्वत्र व्याप्त जो ब्रह्मको स्वरूप है सो मुक्ति करिवेमें समर्थ नहीं है परन्तु बाहिर प्रकट भयो, ऐसो जो आत्मस्वरूप है सो भीतर प्रविष्ट होयकें भीतरके स्वरूपकी सङ्ग मिले है तबही समग्रबन्धकूँ नाशकरिके मुक्त करिदेत है ता सिवाई मुक्त नहीं होय है; इतनें संन्यासयुक्त ज्ञानीनकी स्थिति-सत्यलोकमें होय है तामें हू जो निष्काम होय सो तो सत्यलोक में रहे और जो सकाम होय सो तो दूसरे लोकमें हू जाय हैं ऐसें जतायवेके लिये मूलमें 'आदि' शब्द कह्यो है, और सत्यलोकमें जितने रहत हैं तिन सबनकी मुक्ति ब्रह्माजीके सङ्ग होय है तासूँ दोयपरार्द्धताईं ब्रह्माजी रहे तबताईं उनकूँ मुक्ति होयवेमें बिलम्ब होय है और भक्तिमार्गमें तो अग्निको दृष्टान्त दियो है तासूँ ऐसें जतायो है जो जैसें काष्ठमें विद्यमान—अग्निकूँ काष्ठको दाह करिवेमें योग्यता नहीं है परन्तु मथन करिकें वामेंसूँ ही अग्नि प्रकट होयके भीतर के अग्निकूँ जब मिले तब वाको काष्ठपनो निवृत्त होयकं अग्निपनो सिद्ध होय है तैसें भक्तनके हृदयमें भगवान् विराजत हैं तथापि विनको भगवद्रूपपनो करिवेमें योग्य नहीं हैं परन्तु विगाढ भाव करिकें बाहिर प्रकट होयके जब भीतरके स्वरूपकूँ दूर करिकें वाको भगवद्रूपपनो सम्पादन करे हैं ऐसो फल सिद्ध करिवेमें दूसरो प्रकार नहीं हैं ॥११॥

तहाँ शङ्का होय जो विगाढ़ भावकूँ साक्षात्सङ्गके अभावके कारणपनेसूँ सङ्गके लिये स्वरूपके अनुसन्धानको हू आवश्यकपनो है तासूँ गुणगान करिकें स्वास्थ्य क्यों न होय ? ऐसी शङ्का होय तहाँ कहत हैं—

गुणास्तु संगराहित्याज्जीवनार्थं भवन्ति हि ॥१२॥

भावार्थ—सङ्ग रहितपनो है तासूँ गुण तो जीवनके लिये होय हैं; इतने जीव जबसूँ भगवानसूँ विच्छुर्यो है तबसूँ वाकूँ भगवानको सङ्ग नहीं है परन्तु जबतांई भगवान्के वियोगकी स्फूर्ति नहीं भई है तबतांईं वाकूँ वियोगको दुःख नहीं है और जब वियोगकी स्फूर्ति होय तब वाकूँ वियोग को दुःख होय ता समयमें वाकी स्वस्थता रहिवेमें भगवान्के गुण सिवाई दूसरो कोउ साधन नहीं है; क्यों जो भगवान् परमानन्द हैं विनको विरह होय तब जीवन रहे नहीं ता समयमें परमानन्दके गुणही जीवनकूँ सम्पादन करि सकत हैं, सोही बात श्रीगोपीजननें गोपिका गीतमें कही है जो "आपकी कथारूप अमृत है सो तप्तको जीवन है" और अक्रूरजीके संग

भगवान् मथुराजी पधारे तब भगवान्के रथकी ध्वजा और रथकी रज देखिवेमें आई तबताई तो चित्रकीसीनांई सब गोपीजन ठाडे रहें और पीछे भगवान् पाछे फिरेंगे ऐसी आशा निवृत्त भई तब विनको गुणगान करिकें ही शोक रहित होयकें दिन व्यतीत करत भयीं ऐसें कह्यो है तहाँ हू गुणगान कों ही जीवन सम्पादकपनो कह्यो है, तासूँ जीवनके लिये गुणगान होय है परन्तु वासूँ स्वस्थता नहीं रहे है ॥१२॥

तहाँ शङ्का होय जो विप्रयोगभावमें जो रह्यो है ताकूँ भगवानके गुण हू भावके बाधक हैं तब जिनकी भावना होय है सो भगवान् हू विलम्ब कूँ सम्पादन करिवेवारे होयवेसूँ बाधक कैसें नहीं ? ऐसी शङ्का होय तहाँ कहत हैं—

भगवान् फलरूपत्वान्नात्र बाधक ईष्यते ।
स्वास्थ्यवाक्यं न कर्त्तव्यं दयालुर्न विरुद्धयते ॥१३॥

भावार्थ—भगवान् फलरूप हैं तासूँ यहाँ बाधक नहीं है और स्वस्थताको वाक्य भगवानकूँ कर्त्तव्य नहीं है क्यों जो भगवान् दयालु हैं तासूँ विरुद्ध नहीं होय हैं अथवा विरोध नहीं होय है; इतनें या मार्गमें भगवान् ही फलरूप हैं और विनकी प्राप्तिमें विप्रयोग भावकों ही साधकपनो है सो न होय तो फलकी प्राप्ति होय नहीं तासूँ भगवान् जो प्रतिबन्धक होय तो फलपनो ही सिद्ध नहीं होय तासूँ भगवान् बाधक नहीं हैं, तहाँ शङ्का होय जो भगवानकूँ फलात्मकपनो है और फल देयवेकी उनकी इच्छा ही है तासूँ कदाचित् स्वरूप करिकें विप्रयोगके दुःखकूँ निवृत्त नहीं करें तो भले परन्तु कछुक-वाक्य कहिकें स्वस्थता क्यों न करत हैं ? इतनें जैसें नारदजीकूँ दर्शन देयकें प्रभु तिरोहित भये तब फिर दर्शनके लिए नारदजी यत्न करत हते ताकूँ जैसें आकाशवाणीसूँ आज्ञाकरी जो "निन्दित-या लोककूँ छोडिकें मेरे जनपनेकूँ तुं प्राप्त होयगो" ऐसें स्वस्थताको वाक्य कह्यो है तैसें यहाँ विप्रयोग भावकरिकें तप्त ऐसे भक्तनकूँ स्वस्थता क्यों नहीं करत हैं ? ऐसी शङ्का होय ताकी निवृत्तिके लिये कहत हैं जो स्वस्थता होय ऐसो वाक्य भगवानकूँ कर्त्तव्य नहीं है क्यों जो भगवान् दयालु हैं तासूँ विरुद्ध न होय इतनें नारदजीके कषाय पक्व नहीं भये हते परन्तु शुद्धभाववारे हते तासूँ स्वस्थता होयवेके लिये तिरोहित होयके ही वाक्य कहिकें स्वस्थ किये हैं, और यहाँ तो अन्तर्गृहगताकीनाई विनको प्रतिबन्ध है सो तत्काल निवृत्त करनो है सो प्रतिबन्ध, विरहके तापके दुःखसूँ और

भीतर आविर्भाव भयेके आलिंगनके सुखसूँ ही निवृत्त करनो है क्यों जो विनके भाव उत्कट हैं तासूँ ऐसे भक्तनकूँ वाक्य कहिकें स्वस्थता करे तो अन्तर्गृहगतानकों जैसें फल मिल्यो तैसें शीघ्र फल नहीं मिले तो दयालुपनामें विरोध आवे तासूँ स्वस्थताको वाक्य भगवानकूँ कर्त्तव्य नहीं है ॥ १३ ॥

दुर्लभोऽयं परित्यागः प्रेम्णा सिद्धचति नान्यथा ।
ज्ञानमार्गे तु संन्यासो द्विविधोऽपि विचारितः ॥१४॥

भावार्थ—ऐसे भक्तिमार्गीय यह परित्याग दुर्लभ है सो प्रेम करिकें सिद्ध होय अन्यथा नहीं होय और ज्ञानमार्गमें तो विविदिषा और विद्वत् ऐसे दोय प्रकारको संन्यास है; इतनें भक्तिमार्गीय संन्यास है सो व्रत दान और तप आदि साधनसूँ हू सिद्ध होय ऐसो नहीं है क्यों जो ऐसे त्यागकों सिद्ध करिवेको साधन कोउ शास्त्रमें कह्यो नहीं है केवल प्रेम करिकें ही सिद्ध होय है भगवानमें प्रेम नहीं होय तो भक्तिमार्गीय त्याग सिद्ध न होय और ज्ञानमार्गमें विविदिषा और विद्वत्संन्यास ऐसे भेदसूँ दोय प्रकारके संन्यास कह्यो हैं ॥१४॥

अब दोय प्रकारके संन्यासको भेद बतावत हैं—

ज्ञानार्थमुत्तरांगं च सिद्धिर्जन्मशतैः परम् ।
ज्ञानं च साधनापेक्षं यज्ञादिश्रवणान्मतम् ॥१५॥

भावार्थ—ज्ञानके लिये और उत्तरांग जैसें सिद्ध होय तैसें दोय प्रकारको संन्यास ज्ञानमार्गमें विचारित है, और यज्ञादिकको श्रवण है तासूँ ज्ञान साधनकी अपेक्षा राखे हैं; इतनें ज्ञानरूप फलकी सिद्धिके लिये विविदिषा संन्यास होय है ताकी साक्षात्काररूप सिद्धि सैंकडेन वर्षनसूँ होय है सो गीताजीमें कह्यो है जो "ज्ञानवान् है सो बहोत जन्मनके अन्तमें यह सर्व वासुदेव हैं ऐसें जानिके मेरी शरण आवत है सो महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है" ऐसें कह्यो है तामें सब वासुदेवरूप है ऐसी शरणागति ज्ञानवानकूँ बहोत जन्मके अन्तमें होयवेको कह्यो है और ज्ञान है सो कर्म, ज्ञान तथा भक्तिरूप साधननकी अपेक्षा राखत है तामें प्रमाण कहत हैं जो "ज्ञानकी उत्पत्तिमें सब साधननकी अपेक्षा हैं जैसें कोउ दूर देशमें प्राप्त होयवेमें अश्वादिककी अपेक्षा है ऐसें ज्ञानकी प्राप्तिमें सब साधनकी अपेक्षा है" क्यों जो निष्कामकूँ हू यज्ञादि करिवेको श्रुतिमें कह्यो है, तासूँ केवल शमदमादिक करिकें ज्ञान

प्राप्त नहीं होय है किन्तु आश्रमके अनुसार कर्म हू संग होय तब ज्ञान प्राप्त होयवेको व्याससूत्रमें कह्यो है, ऐसें विविदिषासंन्यासकी हकीकत कहिकें विद्वत्संन्यासकी हकीकत कहत हैं जो "ज्ञानसूं ही मोक्ष होय है" ऐसें वाक्यसूं ज्ञानकी सिद्धिपीछे मुक्तिरूपफल सिद्ध होय है तासूं विद्वत्संन्यासकूं मुक्तिको अङ्गपनो है, यद्यपि विद्वत्संन्यासकूं मुक्तिके अङ्गपनो है तथापि गीताजीके वाक्यमें ज्ञानवारेकूं बहोत जन्मनके अन्तमें शरणागति होयवेको लिख्यो है और शरणागतिकूं भक्तिपनो है तासूं भक्तिविना केवल ज्ञान मुक्तिको साधक नहीं है और यज्ञ चित्तकी शुद्धिको कारण है सो निष्काम कियो होय तब ही चित्तकी शुद्धि करे है ऐसो निष्काम यज्ञ करे तब ही चित्त शुद्ध होयकें ज्ञान प्राप्त होय है ॥१५॥

अब कलियुगमें संन्याससूं कछु फलसिद्ध नहीं होय सो कहत हैं—

अतः कलौ स संन्यासः पश्चात्तापाय नान्यथा ।
पाषण्डित्वं भवेच्चापि तस्माज्ज्ञाने न संन्यसेत् ॥१६॥
सुतरां कलिदोषाणां प्रबलत्वादिति स्थितम् ।

भावार्थ—तासूं ज्ञानमार्गीय संन्यास कलियुगमें पश्चात्तापके लिये ही होय है अन्यथा नहीं है और पाषण्डिपनो हू होय है; तासूं ज्ञानमार्गमें संन्यास ग्रहण न करे क्यों जो कलिके दोषनकों अतिशय प्रबल पनो है, तासूं ज्ञानमार्गमें संन्यासको अकर्त्तव्यपनो निश्चित ही है; इतनें ज्ञान मार्गमें विविदिषासन्न्यासमें साधननकी अपेक्षा बहोत रहत है ता सिवाय ज्ञानको उदय न होय और संन्यास ग्रहण करे तो पश्चात्तापके लिये ही होय इतनो ही नहीं परन्तु पाषण्डिपनो हू होय है क्यों जो शमदमादिक कछु सिद्ध न भये होय और संन्यास ग्रहण करें तब भिक्षादिककी शुद्धि होय नहीं तासूं अन्तःकरणमें अन्नदोषकी सहायतासूं अन्तःकरणकी मलिनता विशेष होयवेसूं कामक्रोधादिक होयकें धर्मसूं पात होय है और विद्वत्संन्यासको तो कलियुगमें सम्भव ही नहीं होय है तासूं कलियुगमें संन्यासको निषेध करनहारे शास्त्रकारननें ही ऐसो निषेध कियो है जो कलियुगमें संन्यास नहीं करनो क्यों जो संन्यासमें इतनो प्रयत्न है ऐसें जानिके ही अपनी प्रतिष्ठाकी वृद्धिके लिये संन्यास ग्रहण करे तो संन्यासाश्रमके धर्म निभिसके नहीं इतनें वेषमात्रमें संन्यासको पर्यवसान होयवेसूं पाषण्डिपनो होय तासूं ज्ञानमार्गमें संन्यास ग्रहण न करे। ऐसें ज्ञानमार्गमें संन्यास ग्रहण करिवेमें

बाधक है तथापि आग्रहको संन्यास ग्रहण करे तो कलिके दोषनको अतिशय प्रबलपनो होयवेसूँ वाको पात ही होय ऐसें शास्त्रकारनने निर्णय कियो है; इतने श्रीगीताजी तथा श्रीभागवत ११ स्कन्धमें भगवाननें संन्यासग्रहकी आज्ञा करी है तामें ११ स्कन्धमें विस्तारसूँ विवेचन कियो है ताकी कर्त्तव्यताके विचारमें इतनो सिद्ध भयो जो कर्ममार्गमें जैमिनिके परित्यागकी अकर्त्तव्यता है, ज्ञानमार्गमें चतुर्थाश्रमके पक्ष करिकें कर्तव्यपनो है तो हू कलिकालसूँ आश्रमधर्म न निभ सके तासूँ अकर्त्तव्यता है और भक्तिमार्ग में कर्त्तव्यपनेसूँ कह्यो है तो हू संन्यासके स्वरूप तथा धर्मसूँ विरोध होयवेसूँ श्रवणादिककी सिद्धिके लिये संन्यासके स्वरूपसूँ त्याग करिवेकी अकर्त्तव्यता है तैसें प्रभूनमें स्नेह सिद्ध करिवेके लिये त्यागकरिवेमें हू संन्यासके स्वरूप तथा धर्मसूँ विरोध है तासूँ संन्यासकी अकर्त्तव्यता है और प्रभूनमें प्रेम भये पीछे तो स्वतः ही त्याग सिद्ध होय है तासूँ संन्यासकी अपेक्षा नहीं है तब प्रेमकी आरम्भ दशामें परित्याग करनों के नहीं ? ताको विचार प्रश्न की रीतिसूँ करत हैं—

भक्तिमार्गेऽपि चेद्दोषस्तदा किं कार्यमुच्यते ॥१७॥
अत्रारम्भे न नाशः स्यात् दृष्टान्तस्याप्यभावतः ।
स्वास्थ्यहेतोः परित्यागाद् बाधः केनास्य सम्भवेत् ॥१८॥

भावार्थ—भक्तिमार्गमें हू कलिदोष आय जाय तब कहा करनो ? ऐसी शङ्का होय तहाँ कहत हैं जो भक्तिमार्गमें आरम्भमें नाश न होय क्यों जो भक्तिमार्गमें जो प्रवृत्त भयो ताको नाश होय ऐसो दृष्टान्त नहीं मिले है और स्वस्थताके हेतुको परित्याग है तासूँ वाको बाध कौन करिकें संभवे ? नहीं संभवे; इतनें जो दोष ज्ञानमार्गमें कह्यो सो ही दोष भक्तिमार्गमें आवे तब कहा करनो ? ऐसी शङ्का होय तहाँ कहत हैं जो भक्तिमार्गमें त्यागके आरम्भमें नाश नहीं है क्यों जो ज्ञानमार्गमें त्यागके आरम्भ करिवेवारेकूँ दुःसङ्ग और सहायादिक करिकें नाशको सम्भव है और भक्तिमार्गमें तो त्यागको आरम्भ करिवेवारो अलौकिक-भगवद्भाव करिकें पूर्ण है तासूँ दुःसङ्गकी सम्भावना हू नहीं है और दुःसङ्ग जैसो नाशक है तैसो नाशक दूसरो कोउ नहीं है तासूँ वाको नाश नहीं होय है। तहाँ शङ्का होय जो दुःसङ्ग नहीं होयवेसूँ दुःसङ्गसूँ जो नाश होयवेवारो है ताकी तो सम्भावना नहीं है परन्तु काल, कर्म और स्वभाव करिकें नाश होय तो कहा करनो ? ऐसी शङ्काकी निवृत्तिके लिये कहत हैं जो मर्यादामार्गीय—त्याग करिवेवारे

आग्नीध्र और भरतादिकनको कालादिक करिकें नाश भयो है सो जैसें दीखवेमें आयो है तैसें शुद्ध पुष्टिमार्गीयनको नाश भयो होय ऐसो कबहू सुनिवेमें आवे नहीं है; क्यों जो कोउको नाश भयो नहीं है और भक्तिमार्ग को त्याग भगवद्धर्म है सो निमिराजाने श्रीभागवत ११ स्कन्धके द्वितीय अध्यायमें (भगवद्धर्म कहो ऐसो) प्रश्न कर्यो ताके उत्तरमें कवियोगेश्वरनें कह्यो है। जो "भगवानने आपकी प्राप्तिके लिये उपाय नहीं जानिवेवारेनकूँ श्रमविना ही आपकी प्राप्ति होय ऐसे उपाय जो कह्ये हैं ते भगवद्धर्म हैं, ऐसें जानो" ऐसें कहिकें फिर कह्यो है जो 'जिन धर्मनमें रहिकें काहु बिरियाँ जीव प्रमादयुक्त नहीं होय है। नेत्र मूँदिके दोडतो होय तोहू वाकूँ ठोकर न लगे और वो गिरे हू नाहीं" यहाँसूँ आरम्भिके "लज्जा रहित होयकें भगवद्गुणनके गान करत-करत असङ्ग होयकें फिरे" तहाँ ताईं भगवद्धर्म कह्यो है, तहाँ त्यागकोहू बोधन है तासूँ भगवद्धर्मके आरम्भमें हू नाश नहीं है। तहाँ शङ्का होय जो भगवद्धर्मके आरम्भके भलें नाश न होय तथापि देह रक्षाके लिये भिक्षादिककी आवश्यकता होयवेसूँ फलमें विलम्ब होय, ऐसो बाध होयगो सो कैसें निवृत्त होयगो ! ऐसी शङ्का की निवृत्तिके लिये कहत हैं जो त्याग करिवेवारेकूँ स्वस्थताके कारणरूप चार्यो वर्णनमें भिक्षाकोहू त्याग है और मालाचन्दन इत्यादिकनको हू त्याग है तासूँ बाध काहेसूँ होय ! नहीं होय; क्यों जो भगवानके बिप्रयोगके तापसूँ भक्तिमार्गीय त्याग होय है सो तापकी बाह्य पदार्थसूँ निवृत्तिहू नहीं होय है तासूँ काहूसूँ हू वाको बाध न होय ॥१७॥१८॥

ऐसें दृष्ट और अदृष्ट उपायसूँ वाको नाशक कोउ नहीं है ऐसें कहिकें भगवान हू वाको बाध नहीं करि सकत हैं सो कहत हैं—

हरिरत्र न शक्नोति कर्तुं बाधां कुतोऽपरे ।
अन्यथा मातरो बालान् न स्तन्यैः पुपुषुः क्वचित् ॥१९॥

भावार्थ—या मार्गमें हरि बाधा करिवेमें समर्थ नहीं हैं तो दूसरो कैसें कर सके ? और जो हरि बाधा करें तो माता हू स्तन्य करिकें बालकनको पोषण न करें; इतनें हरि सर्वदुःखहर्त्ता हैं सो हू या मार्गमें ईश्वरपनेसूँ बाधा करिवेकूँ समर्थ नहीं होय हैं क्यों जो जाको जैसो स्वरूप है ताको तैसो ज्ञान ईश्वरकूँ ही है तासूँ या भावके नाशमें कारणको अभाव है ऐसें हू प्रभु जानत हैं और आप भक्तनके भावके आधीन हैं सो हू जानत हैं तासूँ आपको अशक्तपनो जानिकें बाध करिवेमें प्रवृत्त हू नहीं होय हैं। जहाँ

भगवानसूँ हू बाध न होय तहाँ औरसूँ तो बाध कैसें होय सके ? तहाँ दृष्टान्त देत हैं जो भगवान् बाधा करे तो माता हू स्तन्य करिकें बालकनको पोषण न करे अर्थात् स्वधर्मकूँ उत्पन्न करिवेवारे तथा वाकी रक्षा करिवेवारे प्रभुही जब बाधा करे तब बालकनकूँ उत्पन्न करिवेवारी तथा विनकी रक्षा करिवेवारी माता हू स्तनके दूधसूँ पोषण न करे। यासूँ ऐसें सिद्ध भयो जो काहूसूँ वाको नाश न होय ।।१६।।

तहाँ शङ्का होय जो काहूसूँ वाको नाश तो न होय परन्तु मोहके कार्यमें नियुक्त भई माया तो वाकूँ मोह करेगी ? ऐसी शङ्काकी निवृत्तिके लिये कहत हैं—

ज्ञानिनामपि वाक्येन न भक्तं मोहयिष्यति ।
आत्मप्रदः प्रियश्चापि किमर्थं मोहयिष्यति ।.२०।।

भावार्थ—ज्ञानीनकूँ माया मोह करे है ऐसो मार्कण्डेय पुराणमें कह्यो है तासूँ भक्तकूँ मोह नहीं करेंगे; क्यों जो प्रभु भक्तनकूँ अपने आत्मा कूँ देयवेवारे और प्रिय हू हैं सो काहे के लिये मोह करेंगे ? इतनें मार्कण्डेय पुराणमें कह्यो है जो "ज्ञानीनके चित्तकों हू समर्थ ऐसी देवी बलसूँ खेंचकें मोहमें डारि देत हैं" ऐसो वाक्य है तासूँ भक्तकूँ मोह नहीं करेंगे; क्यों जो वा वाक्यमें ज्ञानीनके चित्तकूँ मोह करिवेकों लिख्यो है, भक्तनकूँ मोह करिवेको लिख्यो नहीं है, और भगवान् स्वरूपानन्दके देयवेवारे तथा प्रिय हैं सो काहे के लिये मोह करेंगे ? इतनें जो जाकों प्रिय होय सो वाके कार्यमें विलम्ब होय ताकूँ सहन करे तब प्रियपनो ही होय नहीं और जहाँ स्वरूपानन्द देयवेकी इच्छा होय वहाँ ही ज्ञानीनकूँ मोह करिवेवारी माया सूँ रक्षा करत हैं, जहां स्वरूपानन्द देयवेकी इच्छा नहीं है तहां इच्छा नहीं करत हैं। जैसें द्विजपत्नीनको प्रभूनके पास जायकें विनकी सेवा करेंगे। ऐसी बुद्धिसूँ सर्वसामग्री सम्पादनपूर्वक पतिप्रभृति सर्वबन्धूनको त्याग करिकें आगमन भयो हतो तथापि विनकूँ स्वरूपानन्द देयवेकी इच्छा नहीं होयवेसूँ भगवाननें कह्यो जो "यहां मनुष्यनकूँ अङ्गसङ्ग प्रीति और स्नेहके लिये नहीं है तासूँ मेरे में मन लगायवेवारे तुम सब थोरे समयमें मोकूँ प्राप्त होयँगे"। ऐसो वाक्य कहिकें ज्ञानमार्ग जैसो उपदेश दियो, और व्रज भक्तनकूँ स्वरूपानन्द देयवेकी इच्छा विशेष होयवेसूँ घर प्रति पाछे जायवेके वचन वैसें ही कह्यो तथापि विनमें रात्रि घोररूप है, ऐसें कहिकें रात्रिमें स्त्रीयनसूँ पाछो गयो न जाय ऐसें, चन्द्रमाके किरणसूँ रञ्जित ऐसो

वन तुमने देख्यो ऐसें कहिकें उद्दीपनविभावकूँ बतायकें रहिवेको और "लोककी इच्छावारी स्त्रीनकूँ चाहे जैसो पति होय तो हू छोडनो नहीं, वाके बन्धूनको शुश्रूषण तथा प्रजाको पोषण करनो" ऐसें कहिकें लौकिक इच्छावारेनके धर्म बतायकें अपनी इच्छावारीनकूँ पृथक् सूचित किये; तासूँ ही द्विजपत्नीनकूँ मोह भयो सो वे चली गईं और व्रजभक्तनकूँ मोह न भयो तासूं विननें प्रत्येक वाक्यनको भगवानकूं उत्तर दियो। तैसें ही उद्धवजीके सन्देशके प्रश्नमें हू भगवाननें ज्ञानमार्गीय जैसो सन्देश पठायो तथापि व्रजभक्तनकूं मोह न भयो। तब उद्धवजीने श्रीगोपीजननकी श्रीकृष्णके आवेशवारे आत्माकी विक्लवता देखी तब अपने जो सन्देश द्वारा उपदेश कह्यो हतो ताकी निष्फलता और विप्रयोगके तापकी अति प्रबलता देखिकें विनमें सबनसूं अधिक और अनिर्वचनीय उत्कर्ष देख्यो और अपनमें हीनताकी स्फूर्ति भई तब विनके साक्षात् चरणनके स्पर्श करिकें नमन करिवेकी अपनी अयोग्यता जानिकें विनके चरणरेणुको वन्दन कियो। तामें हू बहोतरेणूनकूं वन्दन करिवेमें अपनो अधिकार नहीं जानिकें एक रेणुकूं हो वन्दन कियो है तासूं जहां स्वरूपानन्द देयवेकी प्रभूनकी इच्छा होय वहां ज्ञानमार्गीय वाक्यनसूं मोह नहीं होय है ॥२०॥

ऐसें संन्यासनिर्णयको प्रतिपादन करिकें वाको उपसंहार करत हैं—

तस्मादुक्तप्रकारेण परित्यागो विधीयताम् ।
अन्यथा भ्रश्यते स्वार्थादिति मे निश्चिता मतिः ॥२१॥
इति कृष्णप्रसादेन वल्लभेन विनिश्चितम् ।
संन्यासवरणं भक्तावन्यथा पतितो भवेत् ॥२२॥

॥ इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितः संन्यासनिर्णयः समाप्तः ॥

भावार्थ—भक्तिमार्गीय-संन्यासको प्रकार ऐसो है तासूं प्रभूनके विरहको अनुभव करिवेके लिये ऊपर कह्यो प्रकारसूं त्याग करनो, जो ऐसें नहीं करेंगे तो स्वार्थसूं भ्रष्ट होयँगे ऐसी मेरी निश्चित मति है। ऐसें श्रीकृष्णके प्रसाद करिकें श्रीवल्लभाचार्यजीनें भक्तिमार्गमें संन्यासको वरण निश्चित कियो है। वा रीति बिना दूसरी रीतिसूं संन्यास करिवेवारो पतित होय; इतनें संन्यासके दूसरे सब प्रकार दोष सहित और असम्भवित हैं तामूँ ये ही प्रकार संन्यासको है जो भगवाननें उद्धवजीके प्रति कह्यो है

वाही प्रकारसूँ संन्यास करनो, और जो ऐसो अधिकार न होय तो हू त्याग करे तो स्वार्थसूँ भ्रष्ट होय जाय, ऐसे निश्चयवारी मेरी बुद्धि है। क्यों जो ऐसो त्याग उद्धवजी ने कियो है सो तृतीय स्कन्धके चतुर्थाध्यायमें निरूपित है जो "भगवानके विरह करिकें जाको आत्मा आतुर है ऐसो मैं यहाँ आयो हूँ सो मैं भगवानके दर्शनको आह्लाद और वियोगकी आरती करिकें युक्त हूँ" ऐसें विदुरजीके प्रति उद्धवजी के वाक्यसूँ ऊपर त्यागको स्वरूप कह्यो ता प्रकारको त्याग ही देख परत है, ऐसो त्यागको स्वरूप श्रीकृष्णके प्रसादसूँ ही जान्यो जाय ऐसो बतायवेके लिए मूल में श्रीकृष्णके प्रसादसूँ कहिवेकी श्रीमहाप्रभूनने आज्ञा करी है; तासूँ भक्तिमार्गमें संन्यास भगवानको वरण-रूप ही है और जो भक्ति बिना त्यागकरे तो पतित होय, यापेंसूँ इतनो सिद्ध भयो जो ग्रन्थके आरम्भमें परित्यागको विचार कियो जाय है ऐसें कह्यो है और समाप्ति में उक्त प्रकारसूँ परित्याग करिवेको कह्यो है, ता पीछें श्रीकृष्णके प्रसाद करिकें संन्यासको निश्चय करिवेको कह्यो है तासूँ ऐसो सूचित होय है जो श्रीआचार्यचरणनकूँ देह देश परित्याग विषयक दोय आज्ञा भगवानकी भई हती ताप्रमाण नहीं करिवेको खेद हतो तहाँ जब लोक परित्याग विषयक तीसरी आज्ञा भई तब याके वाक्यार्थको विचार करतें जाप्रमाण आज्ञा भई याही प्रकार करिकें श्रीआचार्यजी ने कियो तब भगवान् विशेष प्रसन्न होयकें श्रीआचार्यजीके मनमें संन्यासके स्वरूपकी स्फूर्ति करी, वाको ही बोध छेल्ले श्लोकमें है, ताको अभिप्राय ऐसो है जो पूर्वोक्त प्रकारसूँ जो परित्यागको विचार कियो ता करिकें भगवानकों प्रिय ऐसो जो मैं वानें भक्तिमार्गमें उद्धवकीसीनाईं संन्यासको अङ्गीकार निश्चित कियो है, और उद्धवजीकूँ "सब छोडिकें मेरे मैं मन प्रविष्ट करिकें पृथ्वीमें फिर", ऐसी भगवानकी आज्ञा भई हती, ताप्रमाण आज्ञा न होय और संन्यास ग्रहण करे तो पतित होय; क्यों जो भक्तिमार्गके और संन्यासके धर्म परस्पर विरुद्ध होयवेसूँ भगवानकी आज्ञासिवाय और अन्तःकरणमें भगवानके विप्रयोगको भाव न भयो होय तो हू सन्यास ग्रहण करे तो भक्तिमार्गसूँ च्युत होय ॥२१॥२२॥

॥ इति श्रीमद्वल्लभाचार्यजीविरचित संन्यासनिर्णयकी गोस्वामि
श्रीनृसिंहलालजीमहाराजविरचित व्रजभाषामें
संक्षिप्तटीका समाप्त भई ॥

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अथ श्रीनिरोधलक्षणग्रन्थकीव्रजभाषामें संक्षिप्त भावार्थटीकाको प्रारम्भ ।

—★—

अब निरोधलक्षणमें प्रथम निरोधके स्वरूपको विचार कर्त्तव्य है तामें ज्ञानमार्गमें तो वैराग्यसूँ, इन्द्रियनको निग्रह कियेसूँ साधन न करिकें और यम नियमादिकनसूँ जब विज्ञान होय तब निरोधको फल मिले है। भक्तिमार्गमें यम नियमादिसाधनके अभावसूँ निरोधकी सिद्धि कैसें होय ? ऐसी शङ्काके समाधानपूर्वक निरोधके स्वरूपसाधनादि और निःसाधनरूप अपने मार्गमें निरोधको फल कैसें सिद्ध होय ? सो श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करत हैं; तामें श्रीभागवत दशम स्कन्धको निरूपण करतीबिरियाँ "निरोधोऽस्यानुशयनं प्रपञ्चे क्रीडनं हरेः" इतने या प्रपञ्चमें प्रभुकी जो क्रीडा वाकों निरोध कह्यो है सो निरोध तो लीला सृष्टिमें स्थित जो भक्त उनकूँ प्रपञ्चविस्मरण पूर्वक सकलेन्द्रियनको प्रभुमें निवेश भयो हतो तैसें होय तब होय है ऐसें दशम स्कन्धमें, भक्तनके चित्तवृत्तिको निरोध ही, भक्तिमार्गीय निरोध कह्यो है; तामें प्राकट्य दशामें जिनको साक्षात् अङ्गीकार भयो है, पुष्टिमार्गीय भावको अंकुर जिनके हृदयमें वर्द्धमान है, परमभाग्यवारे और व्रजके सम्बन्धवारेनको तो स्वरूपसूँ ही प्रभुने निरोध कियो; अब प्रकटित दशा नहीं होयवेसूँ आजकाल आपने अङ्गीकार किये पुष्टिमार्गीय भक्त, निरोधसाधनके अज्ञानसूँ कदाचित् ज्ञानमार्गीय निरोधमें प्रवृत्त होय, ताकी निवृत्ति के लिये स्वमार्गीय निरोधमें जाकी अपेक्षा है ऐसो जो मूलकारण ताको श्रीआचार्यजी निरूपण करत हैं--

यच्च दुःखं यशोदाया नन्दादीनां च गोकुले ।
गोपिकानां च यद्दुःखं तद्दुःखं स्यान्मम क्वचित् ॥१॥

भावार्थ—श्रीगोकुलमें श्रीयशोदाजीकूँ नन्दादिकनकूँ और श्रीगोपीजननकूँ जो दुःख भयो सो मोकूँ कबहू होयगो !!! श्रीगोकुल तो नानाप्रकारके बिहारकी इच्छासूँ उत्पन्न भयो, ऐसी कृपाकरिकें ही साक्षात् प्रभूननें पुष्टिमार्गमें अङ्गीकृत कियो है तासूँ पुष्टिमार्गांगीकाररूप भावांकुर वामें हतो ताभावके स्वभाव करिकें दुःख हू वामें रह्यो है जादुःखरूप कारणसूँ प्रभुको प्राकट्य भयो है, आगें सुखादिक हू भयो है अब हू ऐसो निरोध ढूँढिवेवारे स्वमार्गीयनकूँ ऐसो ही दुःख सम्भावनीय है जो दुःख निरोधकूँ सिद्ध करिकें प्रभुके प्राकट्यको साधक है; तासूँ वा दुःखकी सर्वदा संभावना करिकें श्रीमहाप्रभुजी स्वमार्गीयनकूँ लक्षणावृत्तिसूँ सूचना करत हैं, दुःख ब्रह्मानन्दकूँ तुच्छ करिबेवारो होयवेसूँ सर्वोत्कृष्ट है और अति दुर्लभ होयवेसूँ वाकी संभावनामात्र करी है परन्तु प्रार्थना कीनी नहीं तामें हू सर्वदा नहीं किन्तु कदाचित् जो होय तो फेर कहा कहेनो ! ऐसें सर्वदा उत्कण्ठा ही करनी, ऐसें सूचन कियो है । श्रीमातृचरण और श्रीनन्दादिकनकूँ पुत्रोत्पत्ति और ता पीछें विनके लालन, क्रीडन, अवलोकन प्रभृति नानाप्रकारके मनोरथरूप, और श्रीस्वामिनीजी प्रभृतिकूँ प्रभु प्रकट होयवेकी आशासूँ ताता मनोरथरूप आप प्रकट भये तापीछे हू पूतनादिकनकी क्रूरदृष्टिपतनरूप क्रीडामें आसक्तिसूँ भोजनादिमें विलम्ब करिकें भयो ऐसो दुःख यत्शब्दसूँ लेयवेको अभिप्राय है । ऐसें बहोत दुःख टीकाग्रन्थनमें कह्यो हैं सो विस्तार के भयसूँ यहाँ नहीं लिखसके हैं ॥ १ ॥

ऐसें इनके दुःखकी सम्भावना करिकें तापीछें उत्पन्न भये अनिर्वचनीयसुखकी हू सम्भावना द्वितीयश्लोकसूँ करत हैं—

गोकुले गोपिकानां च सर्वेषां व्रजवासिनाम् ।
यत्सुखं समभूत्तन्मे भगवान् किं विधास्यति ? ॥ २ ॥

भावार्थ—श्रीगोकुलमें श्रीगोपीजननकूँ और सब व्रजवासीनकूँ जो आछी भाँतिसूँ सुख भयो सो वा सुखको दान प्रभु मोकूँ करेंगे ? पूर्वश्लोक में वर्णित दुःख प्रभुके प्राकट्यमें कारण है । कारणरूप दु.ख पहिलें भये पीछें प्रभु प्रकटे हैं ता पीछें सब सुखरूप होय हैं सो सुख बालभावसूँ लेयकें प्रेन्खपर्यंकमें आन्दोलन, रिंगण, दधि-दुग्धादिचौर्यादिकेलि, वत्सगोचारणादि,

वेणुगीत, गोवर्द्धनोद्धरणादि सब लीला भक्तमनोरथ पूर्ण करिवेकेलिये होयवेसूँ सुखरूप है तापीछें विप्रयोग भयेपीछें हू प्रभुकी लीलाको स्मरण करिवेसूँ तादात्म्य भयेसूँ दुःखको भान नहीं रह्यो तासूँ सर्वसूँ विलक्षण विप्रयोगात्मक सुख, श्रीस्वामिनीजी प्रभृतीनकूँ और सब ब्रजवासीनकूँ श्रीगोकुलमें आछी भाँति मिल्यो हतो वाही सुखकी या श्लोकमें आपश्री स्वसम्बन्धमें संभावना करत हैं। या श्लोक में वर्णित सुख अति दुर्लभ है तथापि सर्वसामर्थ्यवान् प्रभूनने आगें जैसें आपतें ही भक्तनकूँ दियो ऐसें अबहू आपके सामर्थ्यसूँ सो सुख देयगें ऐसें जतायवेके लिये मूलमें भगवत् पदको ग्रहण कियो है ॥ २ ॥

ऐसें निरुद्धनके दुःख और सुखके अभिलाषकी अपनमें संभावना करिकें अब ऐसो सुख भये पीछें विप्रयोगजन्य दुःखमें विलक्षण सुख उत्पन्न करिवेवारो काहू प्रकारको उत्सव होय है जाकी तृतीय श्लोकमें संभावना करत हैं—

उद्धवागमने जात उत्सवः सुमहान् यथा ।
वृन्दावने गोकुले वा तथा मे मनसि क्वचित् ? ॥ ३ ॥

भावार्थ--उद्धवजीके आगमनसूँ वृन्दावन और श्रीगोकुलमें जैसें महान् उत्सव भयो ऐसो मेरे मनमें कबहू होयगो ? जैसें पति विदेश गयो होय सो वहाँसूँ अपने सेवककूँ घर भेजे तब वाकी माता प्रभृतिकूँ और विशेष करिकें वाकी स्त्रीके मनमें अपने स्वामीके स्मरणसूँ उत्पन्न भये—औत्सुक्यविशेषसूँ उत्सव होयवेकी लोकमें रीति है। यहाँ प्रस्तुतमें हू भगवद्भाववारे और प्रभुके सन्देश लेयकें आयवेवारे उद्धवजी उत्सवरूप हैं। विनके आगमनसूँ बडो उत्सव भयो। ये भगवदीयको आगमन और प्रभुको सन्देश यह सब अलौकिक होयवेसूँ अनिर्वचनीय उत्सव भयो ऐसें मूलके महत् शब्दसूँ जान्योजाय है, तामें श्रीवृन्दावनमें श्रीस्वामिनीनकों उत्सव भयो और श्रीगोकुलमें मातृचरणादीनकूँ उत्सव भयेको समजलेनो, उत्सव मानसधर्म होयवेसूँ मनमें होयवेकी अभिलाषा राखिवेकी आज्ञा मूलश्लोक में करी है, भगवदीयकूँ प्रभुके सम्बन्धवारे (भक्त) के समागममें साक्षात् प्रभु पधारे, ऐसो उत्साह सर्वप्रकारसूँ राखनो चहियें ऐसें न मानिवेसूँ भगवदीयत्व न रहे ऐसो सिद्धान्त है। श्रीगोकुलवासी सब तथा श्रीस्वामिनीजी प्रभृति तो सर्वथा प्रपन्न हते इनकूँ उत्सवरूप उद्धवजीके आगमनसूँ प्रथम यह भगवद्द्वेषधारी कौन है ? ऐसे विस्मयसूँ उत्कण्ठारूप उत्सव

भयो, तापीछें जब विनकूँ भगवदीयपनेसूँ जाने तब हमारे पतिके सम्बन्धी हमारे घर आये तामें हू परम भक्त हैं और निरन्तर पास रहिवेवारे हैं ऐसें जान्यो, तब तो हमारे बड़े भाग्य जो यह प्रभुके समाचार लेयकें आये और प्रभुनें ही पठाये होयँगे, ऐसे न होय तो सेवक स्वामीके चरणकूँ न छोड़े तासूँ प्रभुकी ही हमारे ऊपर कृपा है, क्यों जो कृपा न होय तो भवदीयको आगमन न होय, और भगवद्भक्त जामें न आवे सो घर ही न बाजे जा घरमें भक्त आवे वामें भक्तके स्नेहसूँ प्रभु हू पधारे हैं, उद्धवजीकूँ जब भगवदीय जाने तब विनको सत्कार करिवेको उत्साह भयो । आधुनिक—निरोधमार्गीयनकूँ हू भगवदीयके सङ्गके अभावको दुःख मनमें राखिवेकी श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करत हैं, ऐसें करते सर्वप्रकारसूँ चित्तको निरोध भयो तो प्रभु प्रकट होयकें सुखको हू दान करेंगे ऐसे भावको यासूँ ज्ञान होय है ॥ ३ ॥

यहां शङ्का करे हैं जो ज्ञानमार्गमें तो चित्त को जब निरोध होय तब ध्यानादि करिकें आत्मसुख होय है और या भक्तिमार्गमें तो दुःख करिकें चित्तको निरोध होय तोहू दुःखही रहे है वामें कौन सो उत्कर्ष है ? ऐसी शङ्काको समाधान अब करत हैं—

महतां कृपया यावद् भगवान् दयियिष्यति ।
तावदानन्दसन्दोहः कीर्त्यमानः सुखाय हि ॥ ४ ॥

भावार्थ—बड़ेनकी कृपा करिकें जबताईं प्रभु दया करेंगे तब लों आनन्दके निधि प्रभु कीर्त्यमान (कीर्तन कराते) होय तो सुखके लिये ही हैं, भगवदीयके दर्शनमात्रसूँ जिनकूँ बड़ो उत्सव होय है और सर्वदा भगवदावेशसूँ आपही उत्सवरूप है ऐसे अन्तरँग भक्त महान् कह्यो जाय हैं उनकी कृपातें प्रभु दया करें हैं तब प्रकट होयकें स्वरूपानन्द देय हैं । तब प्रकटित बहोत भाववारे भगवदीयके सङ्ग जिनको कीर्तन कियो जाय है ऐसे प्रभु साक्षात् उनके अन्तःकरणमें प्रकट होयकें सकल इन्द्रियनकी आसक्ति आपके स्वरूपमें करायकें सुखको दान करत हैं, ऐसें कीर्त्तन करिवेसूँ आनन्द देत हैं तासूँ गुणगान ही करनो । ऐसें या श्लोकसूँ जतायो है, या श्लोक में प्रभुकी दया होयवेमें कारणपनेसूँ बड़ेनकी कृपा कही है । महत्शब्दसूँ श्रीस्वामिनीजी कह्यो हैं ऐसें समजनो, अथवा ऐसे भावात्मक स्वरूप आप (श्रीआचार्यजी) को सूचन करे है तासूँ श्रीमहाप्रभुकी कृपा भयेसूँ ही प्रभु आदन्दको दान करे अन्यथा न करे ऐसो हू सूचन महत्पदसूँ होय है तासूँ

कीर्त्तन द्वारा हू प्रभूनके गुण ता प्रकारके आनन्दकूँ देवेवारे हैं तासूँ गुण-गान ही करनो ॥ ४ ॥

प्रभुके गुणको गान तो सब कोउ करत है तासूँ सबनकूँ सुख होय है तो फेर निरोधवारेनकूँ कहा विशेष है ? ऐसी शङ्काको समाधान अबके श्लोकसूं करत हैं—

महतां कृपया यद्वत् कीर्त्तनं सुखदं सदा ।
न तथा लौकिकानां तु स्निग्धभोजनरूक्षवत् ॥ ५ ॥

भावार्थ—बडेनकी कृपा द्वारा कीर्त्तन जैसें सदा सुखकूँ देवेवारो है ऐसें संसारासक्तलौकिकको कीर्त्तन सुखद नहीं है जैसें स्निग्धभोजन शरीरमें सकलेन्द्रियनको पोषण करे है ऐसोरूक्षसूँ नहीं होय है । प्रथमश्लोकमें कह्यो जो महान्, उनकी अपनो भाव समर्पवेवारी कृपाकरिकें निरोधमार्गीयन, परस्पर गुणगानमें भाव बोहोत बढ़िवेसूँ सकलइन्द्रियनको स्वरूपमें निरोध भयेसूँ प्रपञ्चकी विस्मृतिपूर्वक भगवदानन्दमें मग्न होय जाय हैं, ऐसें लौकिकप्रमाणधर्ममें निष्ठावारे भक्त और ज्ञानीनकूँ ऊपर कह्यो निरोधमार्गीयन के भावको अभाव होयबेसूँ कीर्त्तनप्रभृति सुख देवेवारो नहीं होय है लौकिक और अलौकिकमें जितनो तारतम्य है इतनो निरोधमार्गीय और ज्ञानी प्रभृतिमें तारतम्य है तासूँ निरुद्धनके कीर्त्तनमें बहोत विशेष है ॥५॥

यहाँ शङ्का होय जो कीर्त्तन सुखदेयवेवारो है तो हू दुःख तो सदा मिटत नहीं तब गुणगानमें कहा उत्कर्ष है ? यासूँ तो ज्ञानीनकूँ सकल-इन्द्रिय प्रभृतिको आत्मामें लयभयेसूँ अत्यन्त दुःखाभावरूप सुख होय सो उत्कर्ष प्रमाणसिद्ध दीखे है, याको समाधान अब करत हैं—

गुणगाने सुखावाप्तिर्गोविन्दस्य प्रजायते ।
यथा तथा शुकादीनां नैवात्मनि कुतोऽन्यतः ॥ ६ ॥

भावार्थ—गोविन्दके गुणगानमें निरुद्धभक्तनकूँ जैसो सुख होय है ऐसो आत्मानन्दमें शुकादीनकूँ भी नहीं होय है तो भक्तिरहितकूँ तो कहाँ ते होय ? यद्यपि शुकदेवजी ने ये लीला गाई है और भक्तिरससूँ पूर्ण है तो हू यह आनन्द उनकूँ प्राप्त न भयो है ऐसें कहिवेके लिये मूलश्लोकमें श्री-शुकदेवजीको नाम ग्रहण कीयो है तासूँ यह जान्योजाय है जो यह आनन्द प्रभुकी कृपाकरिकें ही प्राप्त होय है और तरहसूँ नहीं होय है तामें दुःखही

साधक है तासूँ दुःखही परमपुरुषार्थरूप है और नहीं है, जहाँ आत्मसुखकी अपेक्षा, यह दुःख सर्वोत्कृष्ट है तब यह दुःखसाध्य—आनन्दकी उत्कृष्टतामें तो कहा कहेनो ! ऐसें कैमुतिकन्यायसूँ आनन्दको सर्वोत्कृष्टपनो सिद्ध होय है, अथवा शुकादिकनकूँ गोविन्दके गुणगानमें जैसी सुखप्राप्ति होय है तेसी आत्मामेंहू नहीं होय है तो औरसूँ तो कहाँसूँ होय ? तासूँ शुकदेवजीने कह्यो है जो "मैं यद्यपि निर्गुणमें निष्ठावारो हूँ तथापि उत्तमश्लोक [भगवान्] की लीलाकरिकें मेरो चित्त गृहीत भयो है तासूँ श्रीभागवतरूप बडो आख्यान पढ्योहूँ", यापेसूँ ऐसें सूचित भयो जो आत्मसुखसूँ हू भगवद्गुण गानमें अधिक आनन्द है ॥ ६ ॥

दुःख परमपुरुषार्थरूप होयवेसूँ सर्वदा प्रभु निरोध मार्गीयनकूँ दुःख ही स्थिर राखे है वा कोई समय सुखको दान करे हैं ? ऐसी शङ्काको समाधान अब आगें के श्लोकसों करत हैं—

क्लिश्यमानान् जनान् दृष्ट्वा कृपायुक्तो यदा भवेत् ।
तदा सर्वं सदानन्दं हृदिस्थं निर्गतं बहिः ॥ ७ ॥

भावार्थ—जब अपने शरणागततकूँ अत्यन्त क्लेशयुक्त देखिकें प्रभु कृपायुक्त होय तब सदा आनन्दरूप प्रभु हृदयमें बिराजवेवारे आपको स्वरूप बहार प्रकट करें हैं; इतनें साक्षात् स्वरूपको सम्बन्ध होयवेकी अभिलाषा सूँ उत्पन्न भई बहोत आर्ति (विरह) करिकें क्षणक्षणमें जागरणादि अवस्था के भेद करिकें क्लेशकूँ अनुभविवेवारे अपने जननकूँ देखिकें प्रभु कृपा करत हैं तब भक्तनको ताता इन्द्रियनमें सर्वांशकरिकें आनन्दकूँ पोषण करिवेके लिये भावात्मकताकरिकें सर्वांशपूर्ण सदानन्दरूप प्रभुको स्वरूप भक्त के हृदयमें विराजे हैं, सो प्रभु बहार प्रकट करत हैं सो बहार आनन्ददान देयवे केलिये हृदयतें बहार पधारे हैं ऐसें यह आनन्द एक कृपासूँ ही सिद्ध होयवेवारो है तासूँ अत्यन्त दुर्लभ है ॥ ७ ॥

सर्वानन्दमयस्यापि कृपानन्दः सुदुर्लभः ।
हृद्गतः स्वगुणान् श्रुत्वा पूर्णः प्लावयते जनान् ॥ ८ ॥

भावार्थ – सर्वानन्दमयको कृपानन्द अत्यन्त दुर्लभ है । हृदयमें विराजिवेवारे प्रभु अपने गुणको श्रवणकरिकें पूर्ण होयकें अपने जननकूँ स्वानन्दनिमग्न करत हैं, मुक्तिप्रभृतिमें मिलवेवारनको आनन्द हू याको ही अंश है

परन्तु वह साधन करिकें लभ्य है और यह आनन्द तो एक कृपाकरिकें प्राप्य होयवेसूँ प्रभु दान करें; तब ही मिले तासूँ मूलश्लोकमें सुदुर्लभ कह्यो है अथवा दुःखकरिकें जाको लाभ होय सो दुर्लभ कह्यो जाय इतनें संसाधननकूँ नहीं मिलवेवारो किन्तु कृपावारेनकूँ ही सुलभ है ऐसो अर्थ हू होय है और ऐसे प्रभुके सम्बन्धकी अभिलाषाजनित-दुःखसूँ भये-तापसूँ जो भक्त परस्पर गुणगान करे ताश्रवण करिकें हृदयमें विराजवेवारे प्रभु पूर्णकृपाकरिकें बहार प्रकट होयकें अपनेनकूँ वा रसके समुद्रमें तरंगमें तरण करावत हैं, जैसें-जैसें जा-जा इन्द्रियनमें दुःख भयो होय ता-ता इन्द्रियनमें तैसें-तैसें आनन्दपूर्णता करत हैं ॥ ८ ॥

अब ये सब बात कहिवेको प्रयोजन कहत हैं—

अहं निरुद्धो रोधेन निरोधपदवीं गतः ।
निरुद्धानां तु रोधाय निरोधं वर्णयामि ते ॥९॥

भावार्थ—में निरुद्धनके मार्गमें अङ्गीकृत हूँ और सकलेन्द्रियनके रोधकरिकें निरोधकी पदवी इतने फलदशाकूँ प्राप्त भयो हूँ तासूँ आधुनिक निरोधमार्गीयनकूँ निरोधसिद्ध होयवेकेलिये तेरे अर्थ निरोधको वर्णन करूँ हूँ; इतनें साक्षात् प्रभूननें मेरो निरोधमार्गमें अङ्गीकार कियो है तापीछें रोधकरिकें गुणगानद्वारा सकलेन्द्रियनके निरोधकरिकें निरोधके फलकूँ प्राप्त भयो हूँ तासूँ विनप्रभूनकी आज्ञासूँ आधुनिकनकूँ निरोध होयवेके लिये यह तोकूँ कहू हूँ तासूँ मेरे कह्यो प्रमाणकरिवेसूँ सर्वथासिद्धि होयगी, ऐसें श्रीमहाप्रभुजो या श्लोकसूँ सूचन करत हैं, कोउ भाग्यवानको उद्देश करिकें आज्ञा करे हैं जो तेरे अर्थ वर्णन करूँ हूँ, क्यों जो साक्षात् प्रभूननें मेरो निरोधमें अङ्गीकार कियेसूँ ही यह वर्णन करिसकूँ हूँ औरको यह वर्णन करिवेको सामर्थ्य नहीं है ऐसो हू सूचन होय है ।

ऐसें निरोधके स्वरूपको वर्णन करिकें सर्वप्रकारसूँ कर्त्तव्यताको निरूपण करत हैं—

तस्मात् सर्वं परित्यज्य निरुद्धैः सर्वदा गुणाः ।
सदानन्दपरैर्गेयाः सच्चिदानन्दता ततः ॥१०॥

भावार्थ—तासूँ सर्वको परित्याग करिकें सदानन्द श्रीकृष्णमें निष्ठावारे सत्पुरुषनकी सङ्ग निरन्तर गुणगान करनो, ऐसें करिवेसूँ सच्चिदा-

नन्दपनो होय है; इतनें सर्वसूँ उत्कृष्टकृपानन्द मिल्यो है तासूँ और सब बात को त्याग करिकें (इतने वासनायुक्त सब – अहंता ममताको त्याग करिकें) उद्भटभावसूँ निरन्तर गुणगान करनो यह ही सेवकको सहजधर्म है तासूँ भगवदानन्दके अभिलाषीनकूँ यह ही निरन्तर करनों। अब गुणगान करिवेकी आज्ञाकरी परन्तु गुण, लीलाके भेद करिकें अनेक प्रकारके होयवेसूँ कैसे गुणको गान करिवेको है ? ऐसी शङ्काकी निवृत्तिके लिये कहत हैं जो साक्षात् रसात्मक जो श्रीपुरुषोत्तम तामें पर ऐसे रसात्मकरासादिलीलारूप–गुण ही गानकरिवे योग्य हैं, रसात्मक–प्रभुमें निष्ठावारे– भगवदीयनकी ही सङ्ग गुणगान करनें ऐसो हू या पदको अर्थ होय सके है; तासूँ भगवानमें निष्ठा न होय ऐसेंनकी सङ्ग भगवद्वार्त्ता हू नहीं करिवेको सूचन होय है। ऐसें दुःसङ्गीनकी सङ्ग वार्त्तादिक कहिवेसूँ हानि ही होय है, एकक्षण हू अन्यथाभाव नहीं होयवेके लिये सर्वदा पद धर्यो है; तासू एकक्षणहूँ भगवद्-गुणगान नहीं छोडनो, ऐसें करिवेसूँ सच्चिदानन्दता होय; इतनें अन्तः-करणमें साक्षात्पुरुषोत्तमाविर्भावकी योग्यता होय जहाँ ज्ञानमार्गीय–परफल हू गुणगानको आनुषङ्गिक फल है वहाँ परमफलकी तो कहा बात करनी ? ॥ १० ॥

यहाँ शङ्का करे हैं जो निरुद्धनकूँ ही सर्वपरित्याग पूर्वक गुणगान करिवेकी आज्ञा करी परन्तु साधनमें निष्ठावारेनकूँ न करी ताको कहा कारण ? याको समाधान अबके श्लोकसूँ करत हैं—

हरिणा ये विनिर्मुक्तास्ते मग्ना भवसागरे ।
ये निरुद्धास्तएवात्र मोदमायान्त्यहर्निशम् ॥११॥

भावार्थ—प्रभूनने जिनको छोड दिये हैं वे संसार सागरमें मग्न भये हैं और जिनकों निरोध (पुष्टि) मार्गमें अङ्गीकृत किये हैं वे ही निरन्तर (प्रभुके आनन्दकूँ पायकें) हर्षकूँ प्राप्त होय हैं, प्रभु सर्वके दुःखकों हरे हैं तासूँ इनको नाम हरि है इन हरिननें (स्वानन्ददान देयँकें दुःख मिटायवेकी इच्छा नहीं होयवेसूँ) त्याग किये वे सब भवसागरमें डूबे; इतने वहोत अन्य साधनमें प्रवृत्त रह्ये तो हू यह आनन्द प्राप्त नहीं भयेसूँ भवसागरमें डूब-गये, और स्वानन्दको दान देयवेकी इच्छासूँ जिनजीवनको पुष्टिमार्गमें अङ्गीकार कियो है और जिनलों स्वरूप निष्ठामें भावरूपही एक साधन है ऐसे अपने जन प्रभुकृपासूँ ही हर्षकूँ प्राप्त होय है; इतने बाहर और भीतर रसमें पूर्ण होयकें आनन्द समुद्रमें मग्न रहे हैं, सो हू अमुकक्षणमें नहीं

परन्तु रात्रिदिन में क्षणमात्र हू आनन्दविच्छेद नहीं होय है; तासूँ यह सिद्ध होय है जो निरोध मार्गीयनकूँ ही यह आनन्द होय है साधनमें निष्ठावारे-नकूँ नहीं होय है ॥११॥

अब कहे हैं जो निरोधमार्गीयनकूँ हू पूर्वे रह्यो संसार विद्यमान होयवेसूँ ताता-विषयनमें आसक्त-इन्द्रियनकूँ विषयको विस्मरण होनो अशक्यजैसो दीखे है, जब विषयविस्मरण न भयो तब तो गुणगानमें हू प्रवृत्ति अशक्य होय है, ऐसी शङ्काके समाधानपूर्वक कहत हैं—

संसारावेशदुष्टानामिन्द्रियाणां हिताय वै ।
कृष्णस्य सर्ववस्तूनि भूम्न ईशस्य योजयेत् ॥१२॥

भावार्थ—संसारके आवेशसूँ दुष्टभये—इन्द्रियनके हितके लिये सर्व (इन्द्रियसहित ऐहिक, पारलौकिक) वस्तु सुखरूप और सर्वके नियन्ता ऐसे श्रीकृष्णको सम्बन्ध करायकें विनमें लगावे, निरोधको सुख देयवेकी इच्छासूँ जिनको पुष्टिमार्गमें अङ्गीकार भयो है ऐसे जीवनकूँ अन्यसाधन में प्रवृत्ति, निवृत्ति होय नहीं; क्यों जो अङ्गीकारके स्वभावसूँ ही जैसो स्वरूपमें स्नेह होय, ऐसो विषयादिकनमें न होय तो हू सम्बन्ध दोषको निवारण करिवे के लिये आप श्री (श्रीमहाप्रभुजी) आज्ञा करे हैं जो संसारावेश इतने विषय भोगादिकनमें अहंताममतात्मक आवेश ता करिकें दुष्ट भये और अहंताममतासूँ उत्पन्न भये—बन्धनके दुःखके अज्ञानसूँ वाकी निवृत्ति करिवे विमुखतावारी—इन्द्रियनके हितार्थ इन सबनकूँ संसारके अन्यधर्ममें तें छुडायकें श्रीकृष्णमें ही लगावें, और वह ही इन्द्रियनकी सार्थकता है इन्द्रियनकी (प्रभुमें विनियोग होय तब ही) कृतार्थता होयवेको श्रीभागवतमें 'अक्षण्वतां फलमिदं' इत्यादि श्लोकनसूँ कह्यो है, ऐसें इन्द्रियादिककूँ संसारधर्मतें छुडवायकें प्रभुमें योजबेकी आधुनिकनकूँ शिक्षा हू या श्लोकसूँ करी है, ऐसें प्रभुमें विनियोग भये पीछें जहाँ तांई प्रभुको साक्षात्कार न होय तहाँतांई गुणगानमें ही आसक्त रहें ऐसें करत-करत जब विनमेंही आसक्त होय तब भगवदावेश होय और रीतिसूँ न होय ॥१२॥

ऐसें सब पदार्थनको प्रभूनमें विनियोग कियेसूँ हू पूर्वके संसाराध्यास सूँ विषयनमें कछुक अहंताममतारूप-संसार तो रहे ही और बाविषयको त्याग किये सूँ कछुक मनमें हू तज्जनित क्लेश रहे तो गुणगानमें सुखही होयवेको कैसें कह्यो है ? ऐसी शङ्का होय तहाँ कहत हैं—

गुणेष्वाविष्टचित्तानां सर्वदा मुरवैरिणः ।
संसारविरहक्लेशौ न स्यातां हरिवत् सुखम् ॥१३॥

भावार्थ—निरन्तर मुरवैरि (प्रभु) के गुणगानमें आविष्टचित्तवारेनकूँ संसार और विरहको क्लेश न होय किन्तु हरिकीनाँई सुख होय है; इतनें आसक्ति करिकें गुणगान करे तब वामें चित्त आविष्ट होय जाय तब उनकूँ पूर्वोक्त संसारत्याग और तासूँ भये क्लेश नहीं होय है; क्यों जो विनकूँ तो प्रपञ्चके तिरोभावपूर्वक गुणगानमें चित्तको आवेश होय है तब विषयादिक के अध्यासकी सम्भावना हू नहीं होयसके है तो वाके त्यागसूँ भयो क्लेश तो कहांतें सम्भवे ? यह सब बात, वेणुगीतके श्रीसुबोधनीजीमें है" जागृत और स्वप्नावस्था में हू श्रीप्रभुकी क्रीडाकों देखत हैं" ऐसें विवरणमें आप श्रीने वर्णन कियो है तहाँ है। यहाँ शङ्का करे हैं जो आसक्तिजन्य सुख हू विषयजन्य—सुखके तुल्य ही होयगो ऐसी शङ्काको निरास करे हैं जो विषयसुख तो भोगमें आसक्ति बढायवेवारो होयवेसूँ वह संसारजनक सुख है और प्रभूमें आसक्ति तो जैसें प्रभु सकलके दुःख दूरिकरिवेवारे हैं, नित्य, लौकिक-संसार-निवृत्तक हैं तैसें वामें आसक्तिजन्य सुख हू संसारनिवर्त्तक है तासूँ पूर्वोक्त संसारासक्ति और भगवदाशक्तिके सुख में बहोत वैलक्षण्य होयवेसूँ तुल्यताकी सम्भावना हू नहीं होय सकत है; तासूँ हरिवत् सुखम्' ऐसें सुखमें हरिको दृष्टान्त दियो है ॥१४॥

ऐसें सबनकों विषयवासनारहित भगवदासक्ति जब दृढ़ होय तब जो होय सो अब कहत हैं—

तदा भवेत् दयालुत्वमन्यथा क्रूरता मता ।
बाधशङ्काऽपि नास्त्यत्र तद्ध्यासोऽपि सिद्धयति ॥१४॥

भावार्थ—[जब गुणगान सिद्ध होय] तब प्रभुकी दया होय ऐसें न होय तो क्रूरता मानी जाय, यामें बाध की शंका हू नहीं है ऐसें अत्यन्त बिरहज तापरूप आसक्ति करिकें सकल इन्द्रियें प्रपञ्चके अध्यास रहित होय, जब पूर्ण निरोध स्वरूपात्मक सिद्ध होय तब प्रभुको दयालुपनो सिद्ध होय और प्रचुर तापात्मक भावकी आसक्ति होयतब प्रभु नारदजीकीसीनाईं आसक्ति करिकें तापमें प्रतिबन्धक होय तब तो प्रभुकी क्रूरता मानिजाय, यहाँ क्रूरतापदको दूसरो यह अभिप्राय है जो साक्षात् अपनो करिकें जाको अङ्गीकार कियो है ऐसो पुरुष प्रभूकूँ आछो लगे ऐसो स्वधर्मरूप कृत्य जब-

तांई न करे तबतांई प्रभुकोहू क्रोध वा जीवपें रहे हैं ऐसो 'क्रूरता' यह पदसूँ जान्योजाय है। अब शङ्का करे हैं जो सर्वत्यागकरिकें गुणगानमें प्रवृत्ति करे तब तो कालकर्मादिकको बाध आवे? याके समाधानमें कहत हैं जो गुणवानमें बाधकी शङ्का हू नहीं होय है तो बाध तो कहाँ ते होय। सकल इन्द्रियनमें प्रभुकी अविशिष्टिपनेसूँ स्थिति होयवेसूँ कौनसूँ बाध होय सके? स्वयं प्रभु हू बाध न करसके तो औरकी तो कहा बात? यह सब बात संन्यासनिर्णय ग्रन्थमें अत्रारम्भे यहाँसूँ लेयकें 'हरिरत्रनशक्नोति' यहाँ पर्यन्तमें कही है, यहाँ अत्र' (यहाँ) पदसूँ ज्ञानमार्गमें बहोत विघ्न होयवेको सूचन होय है, यहाँ शङ्का करे हैं जो स्वरूपकूँ मिलवेके अभिलाष को विद्यमानपनो है तासूँ प्रभुके सङ्ग भेदज्ञान तो रहे ही है, सो ताके (देहादिकके) अभिमानसूँ होय है तब सर्व बाधही भयो ऐसी शङ्का होय—'तहाँ कहत हैं जो ज्ञानमें जैसें 'सोऽहं' ऐसी स्फूर्ति होय तैसी अपने (देहादि) न में प्रभुको ही अध्यासरूपपनेसों भान सिद्ध होय है परन्तु अपनो भिन्नत्व नहीं स्फुरे हैं, जैसें संसारमें रह्योनकूँ ताको अध्ययन होय ऐसो या अवस्था में साक्षात् पुरुषोत्तमको अध्यास होय है। पूर्वस्वभाव ही पलट जाय है ऐसो 'सिद्धयति' पदसूँ जान्योजाय है। यह बात श्रीभागवतमें 'तन्मनस्का-स्तदालापाः" यह श्लोकके विवरणमें सविस्तार है तासूँ विशेषजिज्ञासूकूँ वापेसूँ जान लेनों ॥१४॥

यहाँ शङ्का करे है जो वैराग्य नहीं होयवेसूँ पूर्वोक्त प्राकृत-विषयको अध्यास कैसें निवृत्त होय? याको समाधान करत हैं—

भगवद्धर्मसामर्थ्यात् विरागो विषये स्थिरः।
गुणैर्हरेः सुखस्पर्शान्न दुःखं भाति कर्हिचित् ॥१६॥

भावार्थ—भगवद्धर्मके बलसों विषयमें दृढ वैराग्य होय है प्रभुके गुणकरिकें सुखरूप—स्पर्शसों दुःखको कदाचिदपि भान नहीं होय है सकल-ऐश्वर्यादिकगुणयुक्त-प्रभुके धर्म गुणगानद्वारा अन्तःकरणमें प्रवेश करे हैं तिनके सामर्थ्यसों प्राकृतविषयमें और प्राकृतपनेसूँ प्रभुमें हू ऐसें धर्मविशिष्ट पुरुषकूँ विराग रह्योही है; इतने विषयपनेसूँ तो सर्वत्र वैराग्यही है परन्तु तिनकूँ पराकाष्ठापन्न अलौकिका नन्दरूप साक्षात् प्रभुमें निरुपधि स्नेह-करिकें केवल तदीयपनेकी ही बुद्धि होय है सो रासपञ्चाध्यायीमें व्रजभक्तन ने प्रभूनप्रति कह्यो है जो "आप हमकूँ घर जायवेकी आज्ञा करत हैं सो कछु लौकिक-विषयादिककी इच्छासूँ हम आये हैं ऐसी संभावना करिकें

करत हैं परन्तु हम तो सर्वविषयनकूँ छोडिकें आपके चरणमूलकी शरण आये हैं" इत्यादिक निरूपणसूँ जान्योजाय है। तासूँ ही प्रभुहू आप कृपा करिकें प्रथम कह्यो ऐसो आनन्द अनुभवावे हैं, यहाँ शङ्का करे हैं जो प्रभु आनन्दको अनुभव करावे हैं, तब दुःख कैसें रहे हैं ? याके समाधानमें कहत हैं जो प्रभुके गुणगान (रूप-साधन) सूँ सुखको स्पर्श होयवेसूँ दुःखको भान रहे नहीं है। अन्तःकरणमें प्रभुके स्वरूपके आनन्दसूँ पूर्ण भये ऐसे उन (निरोधमार्गीयन) कूँ सर्वदा तादात्म्य (अकेता) सूँ दुःख स्वरूपको भान ही न होय है तो दुःखकी संभावना तो कैसें होयसके ? और जो तापरूपता दीखवेमें आवे है ताकूँ सुखरूपता होयवेसूँ सुखरूप ही है ॥१५॥

अब उपसंहार करते हैं—

एवं ज्ञात्वा ज्ञानमार्गादुत्कर्षो गुणवर्णने ।
अमत्सरैरलुब्धैश्च वर्णनीयाः सदा गुणाः ॥१६॥

भावार्थ—ऐसें ज्ञानमार्गतें गुणगानमें उत्कर्ष जानिकें मत्सर और लोभरहित होयकें निरन्तर गुणको ही वर्णन करनो, साक्षात् भगवदानन्दको सर्व इन्द्रियनसूँ स्वाद लियो जाय है और ताके साधनरूप गुणगानको हू सुखरूपपनो होयवेसूँ कष्टसाध्य—ज्ञानमीर्गीय-साधन और अक्षरपर्यवसायि ज्ञानके फलसूँ ज्ञानमार्गसूँ गुणगान को बहोत उत्कर्ष जानिकें निरोधमार्गीय भगवद्भावके अङ्गीकारसूँ लेयकें गुणकोही वर्णन करे और कछु साधन न न करे। गुणगान करतें-करतें दृढासक्ति होय तब तो आपहितें गुणगान होय है परन्तु आजकाल स्वतः प्रवृत्ति न होयवेसूँ गुणगान करिवेको विधि कियो जाय है। तामें प्रतिबन्धक दोषद्वयको निवारण करिवेकी आज्ञा करत हैं जो परको उत्कर्ष सहन न होयसके ताकूँ मात्सर्य कहे है सो मात्सर्य और लोभ इनकूँ छोडिकें गुणगान करनो, सो काहेसूँ छोडने ? ताकी प्रतिबन्धकताको निरूपक करत हैं जो भगवद्भक्तमें मात्सर्य होय तो वामें सौहार्द (मैत्री) न होय तब प्रभुको गुणगानहू न होय सके तासूँ मात्सर्यको त्याग करनो और लोभमें तो अर्थ संचयको ही ज्ञान रहे तो भगवदावेश कहाँ तें होय ? भगवदावेश न होय इतनोही नहीं किन्तु भगवद्-भक्तकूँ तो तासूँ सर्वस्वकी हानि होय तासूँ ताको त्याग करनो ॥१६॥

यहाँ कहे हैं जो सिद्धान्त तो यह है जो प्रभुके मुखदर्शनादिकरिवेसूँ भावकी वृद्धि होय है तापेंसूँ स्वरूपसेवा करिवेको निश्चय होय है और

प्रकृतमें तो मुख्यपनेसूँ गुणगानही कह्यो जाय है सो कैसें ? ऐसी शङ्का होय तहाँ करत हैं--

हरिर्मूर्तिः सदा ध्येया संकल्पादपि तत्र ही ।
दर्शनं स्पर्शनं स्पष्टं तथा कृतिगती सदा ॥१७॥
श्रवणं कीर्त्तनं स्पष्टं पुत्रे कृष्णप्रिये रतिः ।

भावार्थ--सङ्कल्पसों हू प्रभुके स्वरूपको सदा ध्यान करनो ऐसें दर्शन और स्पर्शन स्पष्ट है तैसें कृति और गति सदा करनी, यहाँ ऐसो दीखे है जो प्रभु उद्धारके लिये साधनमर्यादासूँ सबनको अङ्गीकार करे हैं उनकूँ मानसी सेवा फलरूप है ताके साधनरूप मार्गमें निष्ठायुक्त सेवा है सो करनेकी आवश्यक है और जिनको पुष्टिमार्गमें निःसाधनपनेसूँ अङ्गीकार भयो है तिनकों तो अङ्गीकारतें ही प्रभुमें अत्यन्त स्नेहभाव होयवेसूँ स्वरूपको अभिलाष होय है ता करिकें प्रभुके सङ्ग संलापादिरूप भावना होय है सो भावना मनके धर्मरूप हैं तासूँ ता करत-करत मनही भगवत्पर होय जाय तब मानसी सेवा सिद्ध होय है उनकूँ अब सेवाको प्रयोजकपनो नहीं होयवेसूँ ताकी दृढ़ताके लिये गुणमान मुख्य है तासूँ गुणगान करिवेकी की आगें आज्ञा करी है; तासूँ ही भगवद्वरणपीछें ही जिनको बहोत भाव बढ्यो है ऐसें कुमारिका पूजादि सब छोडिकें गुणगान करन लगे। यह सविस्तर बात "भूयान्नन्दसुतः पतिः" या श्लोक के श्रीसुबोधिनीजी में कही है। साधनमार्गमें शरण आये भक्तनहू साधनरूप सेवा करे, तापीछें स्नेह होय, स्नेहान्तर और भाव उत्पन्न होय, तब गुणगान द्वारा ता भावकी दृढताके लिये त्याग करे। ऐसेंकूँहू गृहस्थिति भावनाशक है तासूँ ताको त्याग करिकें प्रभुमेंही मन राखिकें भावकी वृद्धिको यत्न करे ऐसें भक्तिवर्द्धिनीमें 'तादृशस्यापि' यहाँतें लयकें 'त्यागं कृत्वा' पर्यन्त श्लोकमें श्रीमहाप्रभुजीने आज्ञा करी है, और पूर्व कहीं साधनरूप सेवा ताकियेसूँ स्नेहभाव होय तासूँ विरहतापरूप दुःख होय सो विरहके दुःखकी निवृत्ति गुणगानतें ही होय तासों गुणगानकूँ मुख्य कह्यो है, अब कहत हैं जो ताप्रकार पुष्टिमार्गमें अङ्गीकार भयो है ताके स्वभावसूँही उत्पन्न भये भावांकुर, ताकरिकें उत्पन्न भये नानाप्रकारके मनोरथकरिकें प्रभुके स्वरूपको ध्यान करनो सो स्वरूपही भाव करायवेवारो है तासूँ नानाप्रकारके मनोरथजनित तापकी निवृत्तिके अर्थ भावके दार्ढ्यार्थ गुणगान ही करनें, यहाँ शङ्का करे है जो अपने मार्गमें प्रभुके स्वरूपको ध्यान करनो और ज्ञानमार्गमें हू ध्यान होय तामें कहा विशेष ? तहां कहत हैं जो पूर्वकह्यो प्रकारसूँ नानामनोरथ

करिकें स्वरूपमें भावना करनी, ऐसें करत भावात्मक प्रभु बाही भावनामें प्रकट होयकें दर्शन देय हैं, स्पर्श करावे हैं, सो सबनको भक्तकों अनुभव होय है तैसें सब क्रिया, और प्रभुकी निकट गमन, तैसें प्रभुके शब्दको श्रवण, कीर्त्तन, प्रभुके सङ्ग संलाप इत्यादि सबनको अनुभव भक्तिमार्गीय भावनामें ही होय है ज्ञानमार्गमें काहू प्रकार को अनुभव नहीं होय है, और गानमें तो संकल्पमात्रसूँ स्पष्ट अनुभव होय है ऐसें अपि शब्दसूँ सूचित होय है, ऐसें भावनामें प्रकट होयकें सब दुःख मिटावे है ऐसें 'हरिमूत्ति' यह पदसूँ सूचित होय है, यहाँ शङ्का करे हैं जो भगवदङ्गीकारपूर्वक कृपा होय तब यह सब बने ऐसें "कृपायुक्त जब होय" यह श्लोकमें कह्यो परन्तु ताप्रभुकी कृपा तो जब महत्पुरुषनकी कृपा होय तब होय सो "बडेनकी कृपासूँ जब प्रभु कृपा करें" या श्लोकमें कह्यो है; तासूँ बडेनकी कृपा सम्पादन किये बिना प्रभुकी प्राप्ति कैसें होय ? याको खुलासा करत हैं जो पूर्व कह्यो भक्त तो पराकाष्ठापन्न (श्रीपुरुषोत्तम) के रसके भोक्ता और मात्सर्यादि रहित हैं प्रभुके कृपापात्रमें अत्यन्त स्नेहवारे होय हैं तासूँ उनकूँ श्रीकृष्ण जाकूँ प्रिय है अथवा फल देवेमें तत्पर ऐसे श्रीकृष्णकूँ जो प्रिय है ऐसे भक्तमें पुत्र-तुल्य प्रीति होय है तासूँ वे कृपाकरिकें भावको दान करत हैं, और जब विनने भावको दान कियो तब विनको दानगुरुपनो सिद्ध भयो इतनें जाकूँ भाव दियो ताकूँ पुत्रपनो सिद्ध भयो तासूँ पुत्ररूपपनो कह्यो है—और अपने मार्गमें तो भाव देवेवारे श्रीगोपीजनन ही हैं तासूँ इनको गुरुपनो तो संन्यासनिर्णयग्रन्थमें 'कौण्डिन्यो गोपिकाः प्रोक्ताः' या श्लोकमें स्फुट कह्यो है, और जैसें पुत्रकूँ काहू प्रकारको दुःख देखिकें ताके ऊपर प्रेम होयवेसूँ ताकी निवृत्तिको उपचार करे है तैसें यहाँ हू ऐसी आर्त्ति देखिकें वात्सल्यसूँ ताआर्त्तिकी निवृत्तिपूर्वक भावको दान करत हैं. तैसें पुत्रके विषे नाना-प्रकारके ताके अपराध होय तो हू वाको विचार नहीं करतें वात्सल्य ही राखे हैं तैसें तादृशभक्तमें हू प्रीति ही राखें हैं सो उनकी प्रीति हू भावा-त्मिकाही है ऐसें तादृश भक्तनकों भगवदीयके विषे पुत्रभाव है तैसें पुत्रनकूँ हू भगवदीयपितामाताके विषे पितृमातृभावराखनो ऐसो यहाँ सूचित होय है और यहाँ गूढ अभिप्राय अनुमानसूँ जान्योजाय है। श्रीकृष्णकूँ प्रिय तो बहोत ही है परन्तु 'स्फुरत्कृष्णप्रेमामृत' यह श्लोकमें कह्यो आनन्दरसरूप श्रीकृष्णको प्रियपनो तो जैसो श्रीमहाप्रभुजीके विषे विलास पामत है औरके विषे नहीं है ताप्रीतिको हेतुरूप श्रीस्वामिनीजीको प्रियपनोहु श्रीमहाप्रभून के ऊपर ही है औरनके विषे नहीं है; क्यों जो श्रीमदाचार्यनकूँ ही विनके

भावात्मकपनो और विनके भावके मध्यपातिपनो सबनसूँ उत्कृष्ट है तासूँ श्रीआचार्यजीको अभिप्राय ऐसो है जो श्रीप्रभूनकूँ मैं प्रिय हूँ और पुत्रके ऊपर जैसी प्रीति होय तैसी मेरे ऊपर विनकी (व्रजभक्तनकी) प्रीति है तासूँ मेरो अङ्गीकृत जो ऐसो होयगो तो ताके ऊपर हूँ ऐसी प्रीति होयगी, अथवा श्रीकृष्णकूँ प्रिय ऐसो जो मैं ताके ऊपर प्रीति है ऐसें कहिवेसूँ आपकूँ विनके भावात्मकपनो और बिनके अन्तर्गतपनो होयवेसूँ आधुनिकजीवनकूँ आपकी कृपातें ही प्रियपनो होयगो ऐसें हू सूचित कियो है, ऐसें श्रीआचार्यन की कृपाकरिकें रतिरूप जो भाव भयो है सो समग्र प्राकृतांशकूँ छोडायकें क्रमकरिकें अलौकिक साक्षात् भगवदात्मक तातविषयनकूँ इन्द्रियनमें जोडाईदेत हैं सो दृष्टान्तसहित निरूपण करत हैं।

पायोर्मलांशत्यागेन शेषभागं तनौ नयेत् ॥१८॥

भावार्थ-- पायुइन्द्रियको जो मलांशत्याग करिवेको धर्म है सो छोडिकें शेषभाग शरीरको ही है ऐसें समजनो; इतनें मलांशको त्यागकरिकें शरीरकूँ शुद्धकरिवेवारी वा ही इन्द्रिय है ऐसें समझिवेसूँ पायुइन्द्रियको शरीरशुद्धिमें उपयोग भयो और 'वायुर्मलांशत्यागेन शेषभावं तनो नयेत्' ऐसो हू पाठ कोऊ टीकामें अभिप्रेत है ताको अभिप्राय ऐसो है जो सर्वदेह तथा इन्द्रियनमें व्याप्तहोयकें वायु रहित है सो भुक्तभई सकलवस्तूनके मलांशकूँ वहार निकासिकें शेष जो सारांश होय ताकूँ नाडीद्वारा शरीरमें जैसें लेयजात हैं तैसें निरोधवारो भक्तहू सब इन्द्रियनको भाव प्रभूनमें लेयजाय ऐसें पूर्ण निरोधसिद्ध होय है ॥१८॥

सब इन्द्रियनको जोजो भावहै ताके स्वभावसूँही सो-सो कार्य आपसूँ ही होय है तैसें होयगो तामें इन्द्रियनको भाव प्रभूनमें योजवेकी आज्ञा क्यों करत हैं! ऐसी जिज्ञासा होय, तहाँ कहत हैं—

यस्य वा भगवत्कार्यं यदा स्पष्टं न दृश्यते।
तदा विनिग्रहस्तस्य कर्त्तव्य इति निश्चयः ॥१९॥

भावार्थ—जाजाइन्द्रियको भगवत्कार्य स्पष्ट दीखवेमें नहीं आवे ताइन्द्रियको निग्रह करनो, ऐसो निश्चय राखनो; इतनें यद्यपि ऐसो भक्त है ताकी इन्द्रियन तो ताके भावके स्वभावसूँही ऐसी होय हैं तथापि लौकिकमनुष्यनके अनुसरिवेसूँ जा इन्द्रियको भगवत्कार्य स्पष्ट दीखवेमें जब नहीं आवे तब लौकिक सबनको त्याग करिकें भगवदीयनके सङ्ग गुणगान करिकें

ता इन्द्रियको निग्रह करनो; अर्थात् इन्द्रियनकूँ लौकिकमेंसूँ फिरायकें भगवत्सम्बन्धमें लगायवेके लिये ही ऊपर कर्त्तव्यको विधि कह्यो है ॥१९॥

ऐसें पूर्णनिरोधस्वरूपको निरूपणकरिकें गुणगान निरोधकूँ सिद्ध करिवेवारो होयवेसूँ यह विधिको सर्वोत्कृष्टपनो निरूपणकरत हैं—

नातः परतरो मन्त्रो नातः परतरस्तवः ।
नातः परतरा विद्या तीर्थं नातः परात् परम् ॥२०॥

॥ इति श्रीमद्वल्लभाचार्यजीविरचितं निरोधलक्षणं समाप्तम् ॥

भावार्थ—यासूँपर मन्त्र, स्तोत्र, विद्या और तीर्थ कोउ नहीं है; इतने मन्त्रस्तोत्रादि हैं सो लोकवेदमें कह्यो फलकूँ प्राप्त करिवेवारे है तासूँ लोक तथा वेदमें जो कामनावारे हैं इनकूँ मन्त्रादिकनकी बडाई भलें हो परन्तु ताकूँ लोकवेदमें कही ऐसी कामना नहीं है केवल प्रभुस्वरूपमें ही आसक्ति है वाकूँ मन्त्रादिकनकी बड़ाई नहीं है; क्यों जो प्रभूनको गुणगान है सो लोकवेदसूँ विलक्षण फल देयवेवारो है और लोकवेदसूँ अतीत (लोकवेद जहाँ न पहोंचिसके ऐसो) उत्कृष्ट है सो यह जतायवके लिये फलकी स्तुति करी है, यद्यपि मन्त्रादिद्वारा चित्तशुद्धि होयवेसूँ चित्तको निरोध होय है तथापि वामें क्लेश बहोत और फल अत्यन्त अल्प है और गुणगानद्वारा चित्तको निग्रह हू सुखसूँ होय तथा फल सबनसूँ उत्कृष्ट होय है तासूँ गुणगान ही सबनसूँ उत्तम है ऐसें जाननो ॥२०॥

॥ इति श्रीमद्वल्लभाचार्यजीविरचित निरोधलक्षणकी गोस्वामि
श्रीनृसिंहलालजीमहाराजविरचित व्रजभाषामें
संक्षिप्तटीका समाप्त भई ॥

—०—

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अथ श्रीसेवाफलकी व्रजभाषामें संक्षिप्त भावार्थटीकाको प्रारम्भ ।

—★—

अपने मार्गमें स्वतन्त्र—पुरुषार्थपनेसूँ ही सेवा कीनीजाय है ताके फलके निरूपणको यह ग्रन्थ है, तहाँ शङ्का होय जो अपनें सेवा करे हैं सो स्वतन्त्र—पुरुषार्थपनेसूँ ही करे हैं ताको दूसरो फल होय ऐसी अपेक्षासूँ नहीं करे हैं तब सेवाके फलको निरूपण कैसें ? ऐसी शङ्का होय ताको समाधान ऐसें समजनो जो जीवित पर्यन्त ऐसी सेवा जा-जीव ने करी होय ताको देहावसानमें (अन्तमें) जो गति होय सो यहाँ फलपदसूँ कह्यो है; इतने यहाँ सेवाको फल होयवेको कह्यो है सो अन्तमें गति होयवेको समजनो सो फल आजके समयमें जो सेवारूप—भजन होय है तामें अनुस्यूत जो सर्वात्मभाव रहे है ता करिकें प्राप्त होयवेवारो जो विशेष भजनानन्द है जो फल है ताकूँ सेवासूँ अतिरिक्त (दूसरे) पनो नहीं आवे है; इतने श्रीगीताजीमें श्रीकृष्णनं अर्जुनके प्रति कह्यो है जो "अन्तमें जाजा भावको स्मरण करतो-२ शरीरकूँ छोडे है तातभावकूँ प्राप्त होय है" और "अन्तमें जो मति होय सो गति होय" ऐसो न्याय है; तासूँ सेवाको फल सेवाही है ऐसें समजनो; इतने सेवासूँ दूसरो फल होयवेकी शङ्का करिकें विरोध बतायो सो विरोध नहीं है, सो फल कैसो होय ? ऐसें जानिवेकी इच्छा होय तहाँ कहत हैं—

यादृशी सेवना प्रोक्ता तत्सिद्धौ फलमुच्यते ।
अलौकिकस्य दाने ही चाद्यः सिद्धयेन्मनोरथः ॥ १ ॥
फलं वा ह्यधिकारो वा न कालोऽत्र नियामकः ।

भावार्थ—जैसी सेवा (मैंने) कही है तैसी सेवा सिद्ध होय तब वाको फल होय सो या ग्रन्थमें कहत हैं, अलौकिकको दान होय तब आद्य (मुख्य-फलरूप) मनोरथ सिद्ध होय। फल सिद्ध होय अथवा अधिकार सिद्ध होय तामें काल नियामक नहीं है; अर्थात् कालकी अपेक्षा नहीं है। सेवाफलको विवरण श्रीआचार्यचरणननें ही कियो है तामें आज्ञा करी है जो 'सेवा या फलत्रयम्—अलौकिक सामर्थ्यं, सायुज्यं, सेवौपयिकदेहो वा वैकुण्ठादिषु" इतने अलौकिक सामर्थ्य, सायुज्य अथवा वैकुण्ठादिकलोकनमें सेवामें उपयोगी देह मिले, ऐसें सेवामें तीन फल हैं; अर्यात् श्रीआचार्यचरणनन जा-रीतिसूँ स्नेहसहित श्रीव्रजभक्तनके भावपूर्वक सेवा करिवेकी आज्ञा करी है ताही रीतिसूँ जीवित पर्यन्त सेवा करे तो अन्तमें फल होय सो कहत हैं। सोही बात भक्तिवर्द्धिनीमें "सेवायां वा कथायां वा" या श्लोकसूँ जताई है; तामें ऐसो अभिप्राय है जो 'जीवित पर्यन्त सेवामें अथवा कथामें जाकी दृढ़ आसक्ति होय, ताको कोऊ स्थलमें नाश नहीं है' ऐसें कहिकें जीवित-पर्यन्त सेवा करिवेसूँ फल होयवेको ही जतायो है। यहाँ तीन फल होयवे विकल्प कियो है सो भक्तिमार्गमें पुष्टि, मर्यादा और प्रवाह ऐसे भेदकरिकें जीवनमें तीनप्रकारको (भगवानको) अङ्गीकार है; तासूँ अधिकारिके भेद करिकें तीन प्रकारकी सेवा होय है तातें फलहु तीनप्रकारको क्रमकरिकें कह्यो है; तामें प्रथम पुष्टिसेवाको फल कहत हैं जो अलौकिक सामर्थ्य होय इतने केवल सर्वात्मभावसूँ ही प्राप्त होयवेवारो जो भजनानन्द है ताको अनुभव होय सो अलौकिक फल है सो अपने किये भये—कोटि साधनसूँ प्राप्त होय ऐसो नहीं है ताके अनुभवकी योग्यता करिवेवारो जो अधिकार हैं सो अलौकिक सामर्थ्य कह्यो जाय है। भगवानके विप्रयोगकूँ सहन कर सके सो अलौकिक सामर्थ्य ऐसोहु कोऊ टीकाकारको अभिप्राय है। ऐसें दोऊ प्रकारके अलौकिक सामर्थ्यमें दृष्टान्तरूप व्रजभक्त ही हैं दूसरो फल सायुज्य कह्यो है सो मर्यादामें जाको अङ्गीकार ताकूँ होय सो श्रीपुरुषोत्तम में सायुज्य होय अक्षरमें नहीं; क्यों जो अक्षर में सायुज्य तो केवलमर्यादामें ज्ञानादिकनसूँ होय है ताकी अपेक्षासूँ तो पुष्टिमें विशेष फल होनो ही चहियें सो श्रीपुरुषोत्तममें सायुज्य होय सो ही विशेषता समझनी; क्यों जो श्रीपुरुषोत्तममें सायुज्यवारे भक्तनकूँ तो समय पाय बाहिर प्रकटकरिकें*

* जैसे अन्तर्गृहगानकूँ सायुज्य दियो है सो जब बिनके सङ्ग रमण करिवेकी भगवानकी इच्छा होय तब बाहिर प्रकटकरिके विनके संग प्रभु रमण करत हैं और रमण द्वारा भजनानन्दको दान करिकें फिर सायुज्य करत हैं।

भगवान् भजनानन्दके अनुभवरूप फल देत हैं; तासूँ पुष्टिमर्यादामें प्रथम सायुज्य मध्यमें भजनानन्दको अनुभव और अन्तमें फिर वहाँ ही सायुज्य होय है, और तीसरो फल वैकुण्ठादिकनमें सेवौपयिक—देहकी प्राप्तिरूप है सो प्रवाहमें जाको अङ्गीकार होय ताकूँ होय। यहाँ जो वैकुण्ठ कह्यो है सो श्रीलक्ष्मीजी की प्रार्थनासूँ 'रमावैकुण्ठ' लोक सिद्ध कियो है सो समजनो ऐसें कोऊ (टीकाकार) कहत हैं और कोऊ (टीकाकार) अक्षरात्मक व्यापि-वैकुण्ठ कहत हैं तथापि मर्यादामें जाको अङ्गीकार होय ताकूँ अलौकिक-सामर्थ्य देकें फल देवेकी इच्छा करें तब आद्य (प्रथम फलरूप) मनोरथ सिद्ध होय, और प्रवाहमें जाको अङ्गीकार होय ताकूँ अलौकिक सामर्थ्यरूप फल कबहू न मिले यह अभिप्राय तो दोऊ अर्थमें समानही है, आद्य फल है सो केवल स्वरूप करिकें साध्य है ऐसो जतायवेके लिये मूलमें 'ही' अव्यय लिख्यो है। तहाँ शङ्का होय जो आद्यफल होयवेको अधिकार न होय तो प्रभु हू कैसें मनोरथ पूर्ण करें? ऐसो शङ्काकी निवृत्तिके लिये कहत हैं जो फल अथवा अधिकार सिद्ध करें वामें काल नियामक नहीं है—

अब वामें तीन प्रतिबन्धक हैं सो कहत हैं—

उद्वेगः प्रतिबन्धो वा भोगो वा स्यात्तु बाधकम् ॥ २ ॥

भावार्थ—उद्वेग, प्रतिबन्ध और भोग ये तीन सेवाफलमें बाधक हैं; इतनें मनमें उद्वेग रहे तो सेवामें चित्त ही रहे नहीं तब भगवत्प्रवण-चित्त होयवेरूप जो सेवा है सो सिद्ध होय नहीं तब फल कहाँसूँ मिले? दूसरो बाधक प्रतिबन्ध है सो साधारण और भगवत्कृत ऐसे भेदसूँ दोय प्रकारको है ताको बिवेचन आगें आवे है और तीसरो प्रतिबन्ध भोग है; इतनें लौकिक भोगमें आसक्ति होय; तबतांई एकाग्रतासूँ सेवा होय सके नहीं। ऐसें तीन प्रतिबन्ध हैं और भगवत्कृत प्रतिबन्ध है ताकी तो निवृत्ति होयसके नहीं तासूँ उद्वेग, लौकिक भोग तथा साधारण प्रतिबन्ध ये तीन्यो त्याग करिबेकी विवरणमें आज्ञा करी है जो "त्रयाणां साधनपरित्यागः कर्त्तव्यः" इतने तीन्यो प्रतिबन्धनकी उत्पत्तीनके कारणरूपजो होय ताको त्याग करनो', तहाँ शङ्का होय जो सेवा होय तासमय लौकिक अथवा वैदिक कार्य आयपडे तब सेवामें प्रतिबन्ध होय सो साधारण प्रतिबन्ध है परन्तु यह कार्य लोकवेदसिद्ध है तासूँ वाको त्याग तो होयसके नहीं तब कैसें करनो? ऐसी शङ्काकी निवृत्तिके लिये विवरणमें आज्ञा करी है जो लौकिक भोग छोडदेनो और साधारण प्रतिबन्ध है सो बुद्धि करिकें छोडनो; इतनें सेवामें प्रतिबन्धकपनेसूँ लौकिकवैदिककार्यरूप साधारण प्रतिबन्ध आवे तब सेवाके

अनोसरमें करिवेको निश्चय करनो; अर्थात् पुत्रविवाहादिक लौकिक आवे अथवा कछु वैदिक कार्य आवे तब प्रथमसूँ ही बुद्धि करिकें सेवामें प्रतिबन्ध न होय ऐसी रीतिसूँ निर्वाह करनो, और प्रथमसूँ निश्चय होय न सके, ऐसो कोऊ आवश्यक लौकिक, वैदिक कार्य आयपड्यो के तब शरीरादिकसूँ वह कार्य करनो परन्तु बुद्धि भगवत्सेवामें ही राखनी वा कार्यमें राखनी नहीं और अलौकिक भोग तो तीन्यो फलमें जो मध्यम फल है तामें मुख्य है ॥ २ ॥

ऐसें साधारण प्रतिबन्धको निरूपण करिकें भगवत्कृत प्रतिबन्धको निरूपण कहत हैं—

अकर्त्तव्यं भगवतः सर्वथा चेद्गतिर्न हि ।
यथा वा तत्त्वनिर्द्धारो विवेकः साधनं मतम् ॥ ३ ॥

भावार्थ—भगवानकूँ सर्वथा कर्त्तव्य न होय तब तो गति नहीं है तब तो जा रीतिसूँ तत्त्वको निर्धार होय वारीतिसूँ विवेक राखनो येही साधन मान्यो है; इतनें जाजीव ऊपर भगवानकी विशेष कृपा होय ताको द्वेषादिक करिवेसूँ जो भगवान् सेवामें प्रतिबन्धकरें सो भगवत्कृत प्रतिबन्ध जाननो। तब भगवान् हैं सो सर्वसामर्थ्ययुक्त हैं और स्वतन्त्र हैं और विनकी इच्छा वा जीवके पास सेवा करायवेकी न भई तब सर्वथा फलको अभाव ही है ऐसें जाननो। तब मनमें ऐसो विचार होय जो भगवानने प्रतिबन्ध कियो तो दूसरेकी सेवा करिवेसूँ दूसरो फल मिलेगो ऐसे विचारकी निवृत्ति के लिये विवरणमें आज्ञा करी है जो भगवत्कृत प्रतिबन्ध होय तब अन्यकी सेवा हू व्यर्थ है; क्यों जो व्याससूत्रमें कह्यो है जो "सब फल भगवानसूँ ही मिले है" इतनें सर्वफल देयवेवारे प्रभु ही हैं और दूसरे फल देत हैं सो प्रभु के अधीन हैं तासूँ प्रभुके फल देयवेकी इच्छा न होय तब दूसरे हू फल देयसके नहीं तासूँ सर्वथा वाकूँ फलको अभाव ही है, तहाँ शङ्का होय जो सर्वथा फल देयवेकी इच्छा प्रभुकूँ न होय सो तो आसुरजीवन पें है दैवीनपें नहीं है और ये तो भगवन्मार्गमें आयो है सेवा करे है तासूँ दैवी जीव है ताकूँ सर्वथा फलको अभाव कैसे कह्यो जाय ? ऐसी शङ्काकी निवृत्ति के लिये विवरणमें आज्ञा करी है जो "तदा आसुरोऽयं जीव इति निर्द्धारः" इतनें सृष्टिकी आदिमें हू प्रभुकी इच्छासूँ ही आसुरजीव भये तैसें जब प्रभु की इच्छा जीवकूँ आसुर करिवेकी होय तब जीव आसुर होय तासूँ भक्त को अतिद्वेष करे तब वोजीव दैव भयो होय तो हू वाकूँ आसुर करें इतनें

सेवादिकसूँ दैव दीखवेमें आवतो होय और भक्तको द्वेष करतो होय तब तो यह आसुर जीव है ऐसें जाननो; तासूँ प्रतिबन्धके स्वरूपकूँ जानिवेवारे जो वैष्णव है उनकूँ तो दुःसङ्गादिकनमें सावधान ही रहेनो, और जा जीवकूँ सेवामें भगवत्कृत प्रतिबन्ध होय तासूँ पीछें पश्चात् होयकें सेवा नहीं बनिवेको शोक होय तब पूर्वसूँ वह भक्तिमार्गीय है तासूँ शोक न होयवेके लिये तत्त्वनिर्द्धारके उपायभूत विवेकरूप साधन कहत हैं जो जा-प्रकारसूँ शोकको अभाव होय वा प्रकारको ज्ञान राखनो ये ही साधन है, तामें उपनिषद्के ज्ञानकी अपेक्षा नहीं है किन्तु सांख्य करिकें योगकरिकें अथवा अन्य उपाय करिकें तत्त्वनिश्चयकरिकें प्रभूनन ही यह सब कियो है, सर्व जगत् ब्रह्मात्मक है, मैं कौन हूँ, साधन कहा है, फल कहा है, दाता कौन है, भोक्ता कौन है, इत्यादिक तत्त्वको निर्द्धार करनो, तासूँ शोक निवृत्त होय। येही अभिप्राय 'तदा ज्ञानमार्गेण स्थातव्यं शोकाभावायेति विवेकः" ऐसी विवरणमें आज्ञा करिकें जतायो है, यहाँ शोकके अभावके लिये ज्ञानमार्गकरिकें रहेनो ऐसें कह्यो है ताको अभिप्राय ऐसो दीखत है जो ज्ञानमार्गकी स्थितिसूँ शोकको अभाव ही फल होय ज्ञानमार्गीय मुक्ति न होय परन्तु वाको ऐसो अभिप्राय है जो मूलमें जैसो तत्त्वको निर्द्धार होय ऐसो विवेक राखनो ऐसें कह्यो है तासूँ वा आसुरजीवमें हू आवेशी और सहज ऐसे दोय भेद है तामें जो आवेशी है ताकूँ तो आवेश रहे तबतांई भक्तको द्वेषादिक करे और आवेश मिटिजाय तब वाकूँ भक्तके ऊपर द्वेषादिक हू मिटिजाय ऐसेकूँ तो ज्ञानमार्गकरिकें सत्यलोकमें स्थिति अथवा अक्षरब्रह्मकी प्राप्ति होय और सहजासुर होयगयो होय तासूँ सर्वदा भक्त ऊपर द्वेष राखिकें द्रोह कर्योकरे ताकूँ तो ज्ञानमार्गकी स्थितिसूँ हू वामार्गको फल न होय परन्तु शोकाभाव रूप फल होय; इतनें शरण आयवेवारो जीवहू सहजासुर होय जाय तोहू शोकाभावरूप फल तो होय ॥ ३ ॥

अब इन बाधकनको निरूपण जाके लिये कियो है ताको प्रयोजन कहत हैं—

बाधकानां परित्यागो भोगेऽप्येकं तथा परम् ।
निष्प्रत्यूहं महान् भोगः प्रथमे विशते सदा ॥ ४ ॥

भावार्थ—तीन्यो बाधकको परित्याग करनो; तामें भोग जो बाधक लिख्यो है सो लौकिक भोग बाधक है और अलौकिक भोग फलरूप है तासूँ भोगमें हू एक फलरूप है और एक बाधक रूप है ऐसें जाननो और निर्विघ्न

महान् भोग है ताको प्रवेश सदा प्रथमफलो है, इतनें भोगमें हू अलौकिक भोगरूपफलमें प्रविष्ट है तासूँ वाहीप्रकारसूँ भोग करनो और दोउ प्रतिबन्ध में पर नाम भगवत्कृत जो प्रतिबन्ध है ताको तो त्याग होयसके ऐसें नहीं है तासूँ वाकूँ छोडिकें दूसरो प्रतिबन्ध है सो बुद्धिकरिकें छोडनो, तहाँ शङ्का होय जो लौकिक भोग तथा अलौकिक भोगकी तो तुल्यता है वामें तारतम्य दीखत नहीं है ? ताकी निवृत्तिके लिये अलौकिक भोगमें विलक्षणता कहत हैं जो अलौकिक सामर्थ्यरूप प्रथमफलमें भगवत्स्वरूपानन्दकें अनुभवरूप भोग जब कियो जाय है तब वामें कालादिक करिकें हू अन्तराय नहीं होय सकत है ऐसें निर्विघ्न अलौकिक भोग सिद्ध होय है और लौकिक-भोगमें तो सदा विघ्न आयो ही करे है तासूँ निर्विघ्नताको सर्वथा अभावही है ऐसें लौकिक और अलौकिक भोगमें बहोत भेद है, तासूँही संन्यासनिर्णय में आज्ञा करी है जो "वामें बाधा करिवेसूँ हरि हू समर्थ नहीं है तो दूसरो तो कौन करसके ?" तैसें यह भोग स्वरूपसूँ फलसूँ और साधनसूँ बडो है क्यों जो विषयानन्द तथा ब्रह्मानन्दकी अपेक्षाकरिकें भजनानन्द बडो ही है तासूँही तीन्यो फलनमें अलौकिकसामर्थ्यरूप जो प्रथम फल है वामें वाको (भजनानन्दको) प्रवेश है ॥ ४ ॥

ऐसें अलौकिक भोगमें विलक्षणता निरूपणकरिकें लौकिकभोग तथा साधारणप्रतिबन्धकूँ एककरिकें वाके धर्मको निरूपणपुरःसर वैलक्षण्य प्रतिपादन करत हैं—

सविघ्नोऽल्पो घातकः स्याद् बलादेनौ सदा मतौ ।
द्वितीये सर्वथा चिन्ता त्याज्या संसारनिश्चयात् ॥ ५ ॥

भावार्थ - लौकिकभोग विघ्नसहित है तथा अल्प है और साधारण प्रतिबन्ध बलात्कारसूँ घातक है तासूँ ये दोउ प्रतिबन्ध माने है, सो त्याग-करिवेयोग्य है, और दूसरो (भगवत्कृत) प्रतिबन्ध होय तब तो संसारको ही निश्चय है तासूँ सर्वथा चिन्ता छोडनी; इतनें लौकिकभोगमें आधि-व्याधिलक्षण विघ्नें बहोत हैं तैसें कर्म तथा कालादिकनसूँ हू विघ्न होयवेको सम्भव है तथा स्वरूपसूँ फलसूँ और साधनसूँ हू अल्प है और साधारण प्रतिबन्ध सेवा समयमें उपरोधवारो होयवेसूँ घातक है, ऐसें दोय सदा प्रतिबन्धक माने है, सो त्याग करिवेयोग्य है, ऐसे अभिप्रायसूँ विवरणमें आज्ञा करी है जो "एतौ सदा प्रतिबन्धकौ" ये दोय सदा प्रतिबन्धक हैं, ऐसें लौकिकभोग तथा साधारण प्रतिबन्ध त्यागकरिवेयोग्य है, ऐसें जतायकें भगवत्कृतप्रतिबन्धको त्याग होयसके नहीं और ज्ञानमार्गकी स्थितिमें

अधिकार न होय ऐसो मन्दमति होय तब वाकूँ फलकी चिन्ता करिकें शोक होय ताकी निवृत्तिके लिये कहत हैं जो द्वितीय (भगवत्कृत) प्रतिबन्ध होय तब सर्वप्रकारकरिकें अन्यसूँ हू सर्वथा फलके सम्बन्धको अभाव है तासूँ फलविषयिणी चिन्ता छोडनी; क्यों जो अहन्तामममतात्मक जो संसार है सो सर्वथा अनर्थको मूल है ताको निश्चय है इतनें भगवत्कृत प्रतिबन्ध होय तब संसारही फल है दूसरो फल नहीं है ऐसें निश्चय समजनो ।।५।।

ऐसें प्रतिबन्धको विचार अत्यन्त करिवेयोग्य है ऐसें निरूपण करिकें उद्वेगरूप प्रथमप्रतिबन्धकरिकें फलको अभाव होय तब वामें भगवानकी फलदेयवेकी इच्छाको अभाव कारणरूप है ऐसें निरूपण करत हैं—

नन्वाद्ये दातृता नास्ति तृतीये बाधकं गृहम् ।
अवश्येयं सदा भाव्या सर्वमन्यन् मनो भमः ।। ६ ।।

भावार्थ – आद्य (उद्वेगरूप भगवत्कृत) प्रतिबन्ध होय तब भगवानकूँ फलदेयवेकी इच्छा नहीं हैं ऐसें जाननो और तृतीय प्रतिबन्ध जो लौकिक भोग है तामें गृह बाधक है तासूँ सेवामें तीनप्रकारके फल तथा तीनप्रकार के प्रतिबन्ध अवश्य विचारिवेयोग्य है और वासूँ अन्यसर्व है सो मनको भ्रम है, इतनें विवरणमें आज्ञा करी है जो "आद्यप्रतिबन्धकरिकें फलको अभाव होय तब भगवानकी फलदेयवेकी इच्छा नहीं है तब सेवाको आधिदैविकपना सिद्ध नहीं होय है और गृहको परित्याग होय तब ही लौकिकभोगको अभाव होय" ऐसें आज्ञा करी है ताको अभिप्राय ऐसो है जो भगवान् सर्वरीतसूँ समर्थ हैं और अन्तःकरणके सम्बन्धवारे हैं तथापि चित्तके विशेषरूप उद्वेग करे तब मानसी सेवा सिद्ध नहीं होयवेसूँ सेवाको आधिदैविकपनो सिद्ध होय नहीं तब भगवानके फल देयवेकी इच्छाको अभाव है, ऐसें उद्वेग-रूप बाधककूँ कहिकें भोगरूपबाधक में विचार करत हैं जो लौकिकभोगमें गृह ही बाधक है; क्यों जो लौकिक भोग है सो भगवानसूँ बहिर्मुखता सम्पादन करे है सो जबतांई घरमें स्थिति होय तबतांई निवृत्त करो तोहू निवृत्त होय सके नहीं तासूँही श्रीमदाचार्यचरणनने निबन्धमें आज्ञा करी ह जो "गृह सर्वात्माकरिकें छोडनो सो छूटसके नहीं तो श्रीकृष्णके लिये घर जोडिदेनो; क्यों जो श्रीकृष्ण है सो अहतामममतारूप संसारकूँ छाडायवेवारे" हैं ऐसें तीन फल तथा तीन प्रतिबन्धनके निरूपण करिकें अपने सेवकनकूँ विनको रात्रिदिवस विचार कर्तव्य है ऐसो जतायवेकेलिए आज्ञा करत हैं जो ये फलत्रयी तथा प्रतिबन्धत्रयी सदा अवश्य विचारणीय है विनको जो निरन्तर विचार होय तो भक्तिमार्गमें दूसरो प्रतिबन्ध नहीं होयगो ऐसो जतायवेके लिये कहत हैं जो ये तीन फल तथा तीन प्रतिबन्ध छोडिकें दूसरो

सर्व मनको भ्रम है; अर्थात् दूसरे फलके प्रति दूसरे प्रतिबन्धकी कल्पना करनी सो मनकी भ्रान्ति ही है ॥६॥

अब यहाँ शङ्का होय जो फल तथा प्रतिबन्धको जो ऊपर निरूपण कियो सो जो आपके आश्रित हैं विनकूँ घटे नहीं क्यों जो विनके देह तथा इन्द्रियादिक सब प्रभूनकूँ समर्पित है तासूँ सबनकूँ फल रूप प्रभुको संबन्ध है तासूँ विनकूँ तो फल भयो ही है तो विनके लिये फल तथा प्रतिबन्धको निरूपण करनो सो व्यर्थ ही है ऐसी आशङ्का होय तहाँ कहत है—

तदीयैरपि तत्कार्यं पुष्टौ नैव विलम्बयेत् ।
गुणक्षोभेऽपि द्रष्टव्यमेतदेवेति मे मतिः ॥७॥

भावार्थ—तदीयनकूँ हू फल तथा प्रतिबन्धादिककी भावना नहीं, केवल पुष्टिमें अङ्गीकार होय तब तो फलमें बिलम्ब करे नहीं अन्यथा गुण को क्षोभ होय तब हू साधन येही देखनो ऐसी मेरी मती है, इतनें जिननें ब्रह्मसम्बन्ध कियो है विनकों हू फल तथा प्रतिबन्धादिकको भावन करनो क्यों जो जिनको केवल पुष्टिमें अधिकार होय विनकों तो फलदेयवेमें प्रभु बिलम्ब करे नहीं पर आधुनिक जीवनको तो पुष्टिमर्यादामें ही अंगीकार होयवेसूँ प्रसिद्धिमें बिलम्ब होयहै तब प्रोषितभर्तृका कीसीनांई फलके संबन्ध की भावना सर्वदा करनी, तैसें सात्विकादिकगुणकरिकें कारणमें क्षोम होय तब हू फलके प्रतिबन्धादिककी भावना करनी ताकी निवृत्तिके लिये दूसरे साधन नहीं करने ऐसी गति है, यहाँ मेरी मति है ऐसें कहिवेको अभिप्राय यह है जो याविषयमें विचार करतें करतें मेरी बुद्धि यहाँ ही विकृत होयकें रही है दूसरो साधन मेरी बुद्धिमें नहीं आवे है ॥७॥

यहाँ शङ्का होय जो ऐसें करिवेमें दूषणको आभास तब मनमें ऐसो विचार आवे जो अपनें समर्पणकरिकें तदीय भये तब फल होयवे को सम्भव है तासूँ प्रतिबन्धादिकको निरूपण कियो सो व्यर्थ है ऐसी शङ्का होय तहाँ कहत हैं— **कुदृष्टिरत्र वा काचिदुत्पद्येत स वै भ्रमः ।**

॥ इति श्रीमद्वल्लभाचार्यजीविरचितं सेवाफलनिरूपणं समाप्तम् ॥

भावार्थ—यहाँ काहुजातकी कुसृष्टि उत्पन्न होय है सो निश्चय ही भ्रम-रूप होय है; इतनें जो तदीय हैं विनकूँ तो नियमकरिकें फलको सम्भव है तासूँ सत्वादिकगुणनकरिकें मनमें अन्यथाभाव होय सो भ्रम है;क्यों जो प्रभु स्वतन्त्र इच्छावारे हैं ऐसो निरूपण कियो है तासूँ प्रभु फल न देयँगेऐसी अनु-पपत्ति गायकें आवे ताको परिहार तो प्रथम ही कियो ताकी भावना राखनी ।

॥ इति श्रीमद्०विरचित सेवाफलकी गो०कृत ब्रजभा०टी० समाप्त भई ॥

॥ षोडस ग्रन्थ समाप्त भयो ॥